"रघुवीर सहाय के काव्यों में कथ्य और शिल्प"

(हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद को पी. एच. डी. (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत शोधप्रबंध)

1993

प्रस्तुतकर्त्री

कुसुम नेहरा

एम. फिल

अध्यक्ष 27/11/93

डा. शशि मुदीराज

पी एच डी. डी. लिट

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद–500 134

निर्देशक 27/11/93

डा. सी. एच. रामुलु

पी. एच. डी.

रीडर, हिन्दी विभाग,

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद–500 134

Name of the research scholar: KUSUM NEHRA

Department / ~~Centre~~: HINDI

University of Hyderabad

This is to certify that I, KUSUM NEHRA have carried out the research embodied in the present thesis for the full period prescribed under the Ph.D. Ordinances of the University.

I declare that no part of this thesis was earlier submitted for the award of any research degree or diploma to any university.

कुसुम नेहरा
SIGNATURE

DATE: 27-11-93

(RESEARCH SUPERVISOR) 27/11/93

27/11/93
(HEAD OF DEPARTMENT/CENTRE)
Prof. & Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD-500 134

(DEAN OF SCHOOL)
DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES,
University of Hyderabad,
Hyderabad-500 134.

DECLARATION

I have declared that this thesis **"RAGHUVEER SAHAI KE KAVYON ME KATHYA AUR SHILP"** has been written by me under the guidance and supervision of **Dr. CH. RAMULU, Ph.D HINDI** reader of the Hindi Department, University of Hyderabad, in fulfillment of the requirement for the award of Ph.D Degree.

I also declare that this thesis is the result of my own effort and has not been submitted to any other University before this for any Degree.

HYDERABAD.

Date: 27-11-93

कुसुम नेहरा

KUSUM NEHRA

SUPERVISOR'S CERTIFICATE

Dr. CH. RAMULU,
Ph.D HINDI
READER
HYDERABAD UNIVERSITY
H Y D E R A B A D.

This is to certify that **Mrs. KUSUM NEHRA MA. M.Phill** is a bonafide student of Department of Hindi, University of Hyderabad and the thesis entitled **"RAGHUVEER SAHAI KE KAVYON ME KATHYA AUR SHILP"** is a bonafide record of the research work done under my supervision for the award of Ph.D degree is fulfilment of course.

HYDERABAD.

Date : 27.11.93

27/11/93
Dr. CH. RAMULU

27/11/93
Prof. & Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD-500 134

"प्राक्कथन"

आधुनिक हिन्दी कविता में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए हैं। इनके कारण उसे सर्वथा भिन्न एवं स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त हुआ है। आधुनिक युग की इस भिन्नता, विशिष्टता और नवीनता के प्रति मेरे मन में सहज आकर्षण रहा है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता की नवीनता के विशिष्ट प्रतीक रघुवीर सहाय हैं। चूँकि उन पर अभी तक कोई उल्लेखनीय शोधकार्य नहीं हुआ है, अतः उनका काव्य मुझे शोध के लिए उपयुक्त विषय लगा। मेरे लिए यह हर्ष का विषय है कि हैदराबाद विश्वविद्यालय ने मुझे उनकी कविता पर शोधकार्य करने की अनुमति दी।

कवि के रूप में रघुवीर सहाय का आगमन "दूसरा सप्तक" संगृहीत उनकी कविताओं से हुआ। इन कविताओं से उनकी कविता की विशिष्ट पहचान बनी। "नयी कविता" के क्षेत्र में उनका अपना एक अलग स्थान है। उनके कविता-संग्रहों -- "सीढ़ियों पर धूप में", "आत्महत्या के विरुद्ध", "हंसो हंसो जल्दी हंसो", "लोग भूल गये हैं", "कुछ पते कुछ चिट्ठियां", में उनकी नयी कविता की प्रवृत्तियां उभर कर आई हैं। उन्होंने आधुनिक हिन्दी कविता में एक नये प्रकार की कविता को स्थापित किया, जो राजनीतिक कविता है।

मैंने अपने इस शोध प्रबंध को सात अध्यायों में विभाजित किया है। पहले अध्याय में मैंने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का विवेचन किया है, जिसमें प्रयोगवाद, नयी कविता और साठोत्तरी कविता का प्रवृत्तिगत विश्लेषण किया है। दूसरे अध्याय में रघुवीर सहाय का साहित्यिक परिचय, उनके जीवन की अन्य घटनायें और रचनाकार के रूप

में उनके विकास पर प्रकाश डाला है। तृतीय अध्याय में उनके कविता-संग्रहों में आये विशेष कथ्य की पहचान की है। चतुर्थ अध्याय में उनकी राजनीतिक कविता और उनके काव्य-संवेदना के वैशिष्ट्य को रेखांकित किया है। पांचवें अध्याय में उनके शिल्प का अध्ययन किया गया है। और छठे अध्याय में आधुनिक हिन्दी कविता में उनके योगदान को स्पष्ट किया गया है।

मैंने अपना यह शोधकार्य डॉ० सी० एच० रामुलु के सुयोग्य निर्देशन में सम्पन्न किया है। मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती हूं। उन्होंने मुझे अपना अमूल्य समय देकर मेरे इस शोधकार्य को सम्भव बनाया है। मैं हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग की प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डा० शशि मुदीराज के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूं, जिन्होंने मुझे सभी आवश्यक सुविधायें प्रदान कीं।

मैं श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली के हिन्दी-विभाग में रीडर डा० हरदयाल के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूं, जिन्होंने इस शोध प्रबंध को पूर्ण कराने में मेरी सहायता की। मैं अपने पति श्री सुरजेन्द्र सिंह नेहरा एवं श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली के रीडर श्री सी० एम० सविता के प्रति भी आभारी हूं, जिन्होंने समय-समय पर मेरी सहायता की है। हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद के हिन्दी-विभाग के रीडर डा० सुभाष कुमार एवं अन्य सभी विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझती हूं।

इस शोधप्रबन्ध के लिए सामग्री संकलन में मुझे विभिन्न विद्वानों की कृतियों और विभिन्न पुस्तकालयों --विशेषतः हैदराबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी, हरदयाल म्युनिस्पिल लाइब्रेरी, (दिल्ली), और श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली के

के पुस्तकालय --से विशेष सहायता मिली है। मैं इन सबके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं। मैं श्री महेश नेहरा के प्रति भी आभारी हूं। इस शोधप्रबन्ध को मुद्रंकित करके श्री राकेश कुमार गोस्वामी ने मुझे जो सहयोग दिया है, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देती हूं।

कुसुम नेहरा
-- कुसुम नेहरा

"विषय – सूची"

प्रथम अध्याय : भूमिका पृ० 1 – 88

(क)

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की विभिन्न प्रवृत्तियाँ

प्रयोगवाद – नामकरण की समस्या

प्रयोगवाद का विकास

तार सप्तक, दूसरा तार सप्तक, तीसरा तार सप्तक
चौथा सप्तक, नकेन

प्रयोगवाद की परिभाषा

प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ —

बौद्धिकता, व्यक्तिवादिता, दुर्बोधता एवं जटिलता, संकीर्णता, परम्परा-नकारात्मक एवं स्वीकारात्मक, मानवतावादी दृष्टिकोण, व्यंग्यपरकता, उलझी हुई संवेदनाएं, पीड़ा बोध, अभिव्यंजना शिल्प, भाषा, बिम्ब एवं प्रतीक, शैली

प्रयोगवाद की उपलब्धियाँ

प्रयोगवाद और नई कविता

(ख)

नयी कविता —

दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक, चौथा सप्तक

नयी कविता की परिभाषा

नयी कविता की प्रवृत्तियाँ --
आधुनिक भाव बोध, क्षणानुभूतियों की अभिव्यक्ति, और अस्तित्व वाद, सौन्दर्य एवं यौन भावना, पीड़ा बोध, अतिनग्न यथार्थवाद, विद्रूपमयी व्यंग्यात्मकता, व्यापक विषय विस्तार, नवीनता का आग्रह, टूटन एवं यंत्रणा, व्यक्तिवादी चेतना, सांस्कृतिक चेतना, अभिव्यंजना शिल्प

× काव्य रूप, उपमान विधान, प्रकृति विषयक, उपमान, सौन्दर्य विषयक, उपमान, बिम्ब विधान, प्रतीक, विधान, छन्द विधान, भाषा तथा शैली

नयी कविता की उपलब्धियाँ --
नवीन जीवन दृष्टि, व्यापकता एवं गहराई, प्रयोग धर्मिता, प्रकृति और बाह्य जगत के प्रति रागात्मकता,

§ग§
नयी कविता के आन्दोलन में रघुवीर सहाय का उदय --
साठोत्तरी कविता--→
साठोत्तरी कविता की प्रवृत्तियाँ --मोहभंग, आक्रोश
×× एवं विद्रोह, राजनीति से लगाव, व्यंग्य, नयी संवेदना, सपाटबयानी, नूतन शब्द भण्डार, अभिव्यंजना रूढ़ि,

द्वितीय अध्याय : 89 - 156

§क§
रघुवीर सहाय का साहित्यिक परिचय --
काव्य संग्रह --दूसरा सप्तक, सीढ़ियों पर धूप में, आत्महत्या के विरुद्ध, हँसो हँसो जल्दी हँसो, लोग भूल गये हैं, कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ।

कहानी संग्रह --जो आदमी हम बना रहे हैं।

निबंध संग्रह-- दिल्ली मेरा परदेस, लिखने का कारण, ऊबे हुए सुखी, वे और नहीं होंगे, जो मारे जायेंगे, भँवर लहरें और तरंग, यथार्थ यथास्थिति नहीं।

अनुवाद -- शेक्सपियर का ट्वेल्थ नाईट, शेक्सपियर का मैकबेथ नाटक का बरनम वन --तीन हंगारी नाटक, विवेकानंद रोम्यारोला, राख और हीरे, द्रीना नदी का पुल, बिरजीस कदर का कुनबा,

§ख§

रचनाकार के रूप में रघुवीर सहाय का विकास --

कवि के रूप में विकास-

कहानीकार के रूप में विकास

निबंधकार के रूप में विकास

अनुवाद कार के रूप में विकास

पत्रकार के रूप में विकास

§ग§

रघुवीर सहाय के जीवन की मुख्य घटनायें --

तृतीय अध्याय : 157 - 222

§क§

कथ्य की परिभाषा --

कथ्य और अन्य समानधर्मी संज्ञायें

रघुवीर सहाय की कविता का मूल कथ्य-

विभिन्न प्रतिपादित विषयों पर -

§1§ पूंजीवादी वर्ग §2§ मजदूर वर्ग §3§ स्त्री वर्ग

(ख)

रघुवीर सहाय की कविता के प्रेरणा स्रोत--

(1) वैयक्तिक (2) सामाजिक (3) राजनैतिक (4) पत्रकारिता

चतुर्थ अध्याय : 223 - 284

(क)

रघुवीर सहाय की कविता की वस्तु की प्रवृत्ति का अध्ययन--

(1) वैयक्तिक प्रवृत्ति

(2) सामाजिक प्रवृत्ति

(3) राजनैतिक प्रवृत्ति की अवधारणा

(ख)

रघुवीर सहाय की काव्य संवेदना का वैशिष्ट्य --

(1) मजदूर वर्ग के प्रति वैशिष्ट्य

(2) स्त्री वर्ग के प्रति वैशिष्ट्य

(3) राजनीति के प्रति काव्य संवेदना का वैशिष्ट्य

पंचम अध्याय : 285 - 353

(क)

रघुवीर सहाय की कविताओं का शिल्प विधान --

शिल्प की परिभाषा,

रघुवीर सहाय के काव्यों की संरचना--

संरचना का अर्थ, संरचना और काव्य भाषा

(ख)

रघुवीर सहाय की कविताओं की भाषा --

(1) गद्यात्मकता (2) नाटकीयता-सपाटबयानी, विडम्बनाबोध,

(3) व्यंग्यात्मकता (4) विसंगति (5) रोमांटिकता (6) शब्द विधान

(ग)

रघुवीर सहाय की कविताओं में बिम्ब एवं प्रतीक

बिम्ब और प्रतीक

बिम्ब -- चित्र बिम्ब, दृश्य बिम्ब, स्थिर व गति चित्र बिम्ब गतिबोधक बिम्ब, प्रवृत्ति बिम्ब, गत्यात्मक बिम्ब, नाद संवेद्य बिम्ब, अलंकृत बिम्ब, यौन बिम्ब, उपलक्षित बिम्ब।

प्रतीक -- अर्थ एवं परिभाषा

(घ)

रघुवीर सहाय की कविताओं में अलंकार विधान--

(ङ.)

रघुवीर सहाय की कविताओं में छन्द विधान

रघुवीर सहाय के शिल्प विधान की विशेषता

षष्टम अध्याय : 354 - 377

आधुनिक हिन्दी कविता का विकास - एक सर्वेक्षण,

आधुनिक हिन्दी कविता में रघुवीर सहाय का योगदान

सप्तम अध्याय : 378 - 383

उपसंहार--प्रस्तुत अध्ययन के महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष

परिशिष्ठ : 1 - 18

सहायक ग्रंथ-सूची

"प्रथम अध्याय"

(क)

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की विभिन्न प्रवृत्तियां :-

पिछले चालीस वर्षों में आधुनिक हिन्दी साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र काव्य ही रहा है परन्तु यह भी सच है कि कुल मिलाकर इन चार दशकों में हिन्दी कविता ने उतनी क्रान्तिकारी अर्थात् साहित्य में क्रान्तिकारी उपलब्धियां नहीं की हैं, जितनी हम स्वयं मानते हैं या चाहते हैं कि हुई होती। स्वतंत्रता से पूर्व छायावाद, प्रगतिवाद आदि युगों का विकास हुआ और इसके बाद "प्रयोगवाद" का विकास हुआ। कुछ विद्वानों ने प्रगतिवाद, तथा "प्रयोगवाद" की सतही समानता को देखकर इसे प्रगतिवाद का एक रूप या शाखा कहने का भी अनुचित प्रयास किया है। प्रगतिवाद में सामाजिकता की प्रधानता है, जबकि प्रयोगवाद में अहमनिष्ठ घोर-वैयक्तिकता दिखाई पड़ती है। कुछ विद्वानों ने "प्रयोगवाद" को छायावाद की वैयक्तिकता का विकास माना है। परन्तु ऐसा स्वीकार करना नितान्त भ्रामक है। इस प्रकार कविता की प्रयोगवादी धारा छायावाद ह्रासोन्मुख समय में उत्पन्न हुई, जिसमें व्यक्तिवाद की परिणति, घोर अहंवादी, स्वार्थ-प्रेरित असामाजिक और असंतुलित मनोवृत्ति के रूप में हुई है।

(प्रयोगवाद)

नामकरण की समस्या :-

वास्तव में "प्रयोगवाद" के नामकरण की एक समस्या रही है। सभी प्रयोगवादी कवियों ने इस नाम को नहीं माना है, फिर भी उनके काव्य को इसकी संज्ञा दी गई है।

"तार-सप्तक" की भूमिका में अज्ञेय ने कहा है कि "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे न ही हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी प्रकार कविता का भी कोई वाद नहीं है। कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य है। अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना हमें कवितावादी कहना।"[1] परन्तु जिन आधारों पर "तार सप्तक" के कवियों को प्रयोगवादी कहा गया उससे भी कोई इन्कार नहीं कर सकता। वैज्ञानिक युग के परिवेश तथा उनमें आज के युग की जटिल और अस्त-व्यस्त संवेदनाओं की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने नये प्रयोग किये। उन्होंने प्रयोगों को अभीष्ट नहीं माना। इस स्थिति में इनको प्रयोगवादी कहने में कोई बुराई नहीं है। इसके बाद में इन सभी कवियों के शब्दों में "प्रयोगवाद" शब्द उभर कर आता है। अज्ञेय द्वारा "तार सप्तक" की भूमिका में इस प्रकार कहा गया है। कि "उनके एकत्र होने का कारण यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं। किसी एक मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं। अभी राही हैं, राही नहीं, राहों का अन्वेषी"।[2]

यहां पर अज्ञेय जी का यह कथन "राही नहीं राहों के अन्वेषी" को बड़े गूढ़ अर्थ में प्रकट किया है। यहां पर इसका अर्थ यह है कि वे एक राह पर चलने वाले राही नहीं बल्कि राह की तलाश करने वाले भी हैं। इन सभी कवियों के काव्य के प्रति अन्वेषी दृष्टि विद्यमान थी। इसके बाद "दूसरे सप्तक" की भूमिका में अज्ञेय जी ने इस नाम को स्वीकार कर लिया, किन्तु इतना अवश्य कहा कि उन्हें प्रयोगशील कहा जाये।[3] उन्होंने यह भी कहा कि प्रयोगशीलता वह है जो आधुनिकता का समर्थन करते हुए नये भाव बोध को अधिक से अधिक अन्वेषण की ओर अग्रसर करें। इसकी मूल प्रेरणा के बारे में अज्ञेय जी कहते हैं कि "जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे अभीष्ट तक कैसे पहुंचाया जा सकता है। यही उनकी सबसे पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती

है, क्योंकि कवि यह महसूस करने लगता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व अब बिल्कुल नहीं है। "प्रयोगशीलता" केवल प्रयोग तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसका सम्बन्ध उन सभी तत्वों से है जो कवि के अहम् को सुरक्षित रखते हुए उसको अपनी बात कह सकने की शक्ति प्रदान करते हैं। कवि के काव्य और व्यापक सत्य में कोई अन्तर नहीं है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार "व्यापक सत्य या समष्टि सत्य व्यक्ति सापेक्ष है और इसी प्रकार व्यक्ति सत्य या आत्म-सत्य भी समाज सापेक्ष होता है। "प्रयोगशीलता" का समर्थन व्यक्ति सत्य के माध्यम से व्यापक सत्य की उपलब्धि को श्रेयष्कर समझता है"।[3] इस प्रकार अज्ञेय ने अपने आप को प्रयोगशील कवि के रूप में स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात "तार सप्तक" के सभी कवियों ने बिहार के नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार तथा नरेश कुमार ने अपने आपको सही अर्थों में प्रयोगवाद माना। इनके नामों के प्रथम अक्षरों को लेकर "नकेन-वाद" की रचना हुई।

सर्वप्रथम "नकेन वादियों ने अपने पृथक घोषणा की और "प्रयोगवाद" को सर्वतंत्र स्वतंत्र कहकर पूर्ववर्ती परिपाटियों को आधुनिक युग के प्रतिकूल बताया। उन्होंने अज्ञेय के प्रयोग को साधन मानने वाले कथन पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की और प्रयोग को साध्य कहा " जब नकेन की रचना हुई तो प्रयोगवादी कवियों के प्रयोगवाद पर बहुत आरोप लगाए जा रहे थे। जिसके कारण "नकेन" का अन्त हो गया। इस प्रकार प्रयोगवाद के विषय में नाम के कारण बहुत ही समस्याओं का सामना करना पड़ा। किन्तु अन्त में इसे "प्रयोगवाद" की ही संज्ञा से अभिहित किया गया।

"प्रयोगवाद" के नामकरण की समस्या पर आचार्य नन्द दुलारे वाजपेई ने भी अपने वक्तव्य में कहा कि "हम इस कविता को प्रयोगशील नाम भी दे सकते हैं, क्योंकि प्रयोगशीलता मुख्यत: शैली की वस्तु है और यदा-कदा अपरिनिष्ठित वस्तु पक्ष को भी इंगित करती है और अधिक स्पष्टता आने

के लिए इस कविता को शैली के मार्जन और उन्नयन की कविता भी कह सकते हैं। इस शब्द में उसे प्रयोगकाल में ही इसको नया नाम देने की जल्दी की गई। जबकि इस नाम के स्पष्ट स्वरूप को प्रयोगवादी आलोचक समझ भी नहीं पाये। इस प्रकार सभी कवियों ने इसको अलग-अलग नाम दे डाले। जैसे प्रयोगवादी कविता, नई कविता, अकविता, अगली, कविता, आदि।

प्रयोगवाद का विकास :-

अज्ञेय ने "तार सप्तक" की भूमिका में लिखा है कि "संगृहीत कवियों में कोई भी नहीं है जिसकी कविता केवल उसके नाम के सहारे खड़ी हो सके।[5] "तार सप्तक" की भूमिका में अज्ञेय ने "प्रयोग" शब्द की बार-बार आवृत्ति की, जिसके कारण कुछ आलोचकों का ध्यान इस शब्द की ओर गया और इस प्रकार इस काव्य धारा को "प्रयोगवाद" नाम दिया।

"प्रयोगवाद शीर्षक नामक एक लेख में नरेश ने प्रयोगवादी आन्दोलन का "वाद" के बाद के घेरे से मुक्त करने का प्रयास किया है। उन्होंने कहा है कि "सप्तकों में अज्ञेय ने जिस काव्य का शील निरूपण किया वह "प्रयोगशील" का है, "प्रयोगवाद" का नहीं। प्रयोगवाद के लिए प्रयोग साध्य है प्रयोग साध्य है प्रयोगशील के लिए साधन।"[6]

प्रयोगवाद के विकास के सम्बन्ध में समालोचक पत्रिका में प्रकाशित "अति आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थ वाद" शीर्षक अपने लेख में विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने "प्रयोगवाद" के जन्म के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "लेखक के मन में संघर्ष होता है वस्तु और शैली के बीच में। वस्तु चाहती है कि वह जिस रूप में बिना किसी प्रकार के हेर-फेर के या भाव-रंग चढ़ाये अपने अपरिवर्तित रूप में व्यक्त हो जाय। शैली में नवीनता देर से आती है। इन्हीं कारणों को लेकर प्रयोगवाद का जन्म हुआ।[7] प्रतीक नई कविता, आलोचना, धर्मयुग ज्ञानोदय, माध्यम, कल्पना, काव्य वसुधा, नये पत्ते, बिन्दु, शब्द, त्रिज्या, आधार, प्रारम्भ आदि पत्रिकाओं में

भी "प्रयोगवाद" पर विचार किया गया। सन् 1943 ई० में "तार सप्तक" कविता में प्रयोग के महत्व की स्थापना को लेकर आया।

डा० नामवर सिंह के अनुसार "तार सप्तक" के प्रकाशन के चार पांच वर्ष पूर्व "तार सप्तक" के कवियों के अतिरिक्त केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, भवानी प्रसाद मिश्र जैसे अनेक समर्थ कवि नये ढंग की काव्य रचना कर रहे थे। इस बीच नरेन्द्र शर्मा ने भी रूमानियत से अलग हटकर नये काव्य प्रयोग किये। निराला की "अनामिका" में संकलित 1937-38 की कविताओं और आगे चलकर 1941 ई० में प्रकाशित "कुकुरमुत्ता" शीर्षक लम्बी कविता से यह स्पष्ट है कि हिन्दी में "तार सप्तक" के प्रकाशन् से पहले ही नये परिवर्तन की जोरदार हवा बह चुकी थी। रूपाभ, उच्छृंखल जैसी अल्पकालिक एवं, हंस, विशाल, भारती जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकायें इस परिवर्तन का उद्घोष कर रही थी। इनके अतिरिक्त माखन लाल चतुर्वेदी का "कर्मवीर" भी क्षेत्रीय प्रतिभाओं की नयी रचनायें प्रकाश में ला रहा था। "तार सप्तक" इसी जीवन्त परिवेश की उपज और अभिव्यक्ति है।[8] यही शक्ति इतनी प्रभावी हो गई जिससे "प्रयोगवाद" नाम चल निकला और अज्ञेय इसके प्रवर्तक माने गये।

तार सप्तक :-

सर्वप्रथम "प्रयोग" शब्द की अभिव्यक्ति "तार सप्तक" में हुई जिसका प्रकाशन सन् 1943 ई० में हुआ। इस तार सप्तक में सात कवि हैं। जो ये हैं - गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा, सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय। इस सप्तक में सभी कवियों ने "पुनश्च" शब्द लिखकर अपनी कविताओं और मान्यताओं के विषय में अतिरिक्त वक्तव्य दिये हैं। और इसके तीसरे संस्करण में कुछ नई कविताएं जोड़ी गयी हैं। इस प्रकार "तार सप्तक" से ही प्रयोगवाद का आरम्भ मानना चाहिए।

हिन्दी साहित्य कोष में कहा गया है कि "प्रयोगवाद" या प्रयोग की आवश्यकता साहित्य में उस समय उपस्थित होती है जब कविता की प्रेषणीयता इतनी अभिधापूर्ण हो जाती है कि उसमें कोई इस विशेष नहीं मिल पाता अर्थात कोई ज्ञानात्मक सहानुभूति नहीं मिल पाती। प्रयोग की सार्थकता सदैव उसमें ही निहित रहती है कि कवि एक रूढ़ि को त्याग कर नये स्तर पर रागात्मक सम्बन्धों को ढूंढता है और यह प्रयास करता है कि वे माध्यम जो अपनी पेषणीयता नष्ट कर चुके हैं अथवा जो अत्याधिक अभिधात्मक हो गये हैं, उनके अतिरिक्त मान्यताओं को स्थापित करें।[9] इस प्रकार ज्ञान को मान्यता प्राप्त हुई और इसका विकास निरन्तर गति से बढ़ता रहा।

दूसरा सप्तक :-

दूसरा सप्तक का प्रकाशन सन् 1951 ई० में हुआ। इसके सम्पादक सच्चिदानन्द हीरा नन्द वात्स्यान जी हैं। इस सप्तक में कवि ने सात कवियों को चुन कर लिया है।जो इस प्रकार है – भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय, और धर्मवीर भारती। इन सातों कवियों का हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अलग-अलग सुनिश्चित स्थान है। "दूसरा सप्तक" में इन कवियों की अच्छी कविताओं का एक संग्रह है। इस संग्रह मे भी कवियों ने अपनी कविताओं के साथ वक्तव्य भी दिये हैं। "अज्ञेय ने प्रयोग को साधन माना है साध्य नहीं।"[10]

तीसरा सप्तक :-

अज्ञेय जी ने "तीसरा सप्तक" का संपादन सन् 1959 ई० में किया। इसमें भी उन्होंने सात कवियों को लिया है। जो इस प्रकार हैं– प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजय देव नारायण साही, और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

इस सप्तक में भी दूसरे सप्तक की तरह इन सभी कवियों की रचनाओं को लिया गया है और सभी कवियों ने अपने-अपने वक्तव्य भी दिये हैं। अज्ञेय जी ने इस सप्तक में "प्रयोगवाद" के लिए "नई कविता" शब्द का प्रयोग भी बार-बार किया। इस प्रकार "तार सप्तक" से लेकर "तीसरा सप्तक" तक की कविताओं को "प्रयोगवादी नई कविता" कहना ही उचित जान पड़ता है।

"तीसरा सप्तक" में अज्ञेय जी ने "प्रयोग" के लिए आग्रह करते हुए लिखा कि "जहां प्रयोग हो वहां कवि मानता हो कि सत्य का ही प्रयोग होना चाहिए।"[11] इसके बाद "प्रयोगवाद" के विकास के लिए नकेनवादियों ने "नकेन" की रचना की।

नकेन :-

बिहार के तीन कवियों "प्रयोगवाद" शब्द पर बल दिया और प्रयोग को साध्य माना। उन सभी कवियों ने "प्रयोगवाद" शब्द का विस्तृत अर्थ में प्रयोग किया और इसको "नकेनवाद" (प्रपद्यवाद) नाम भी दिया। इसके बाद "नकेन" नाम से एक कविता संग्रह भी हुआ, जिसमें सर्व श्री नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार तथा नरेश कुमार की कविताओं का संकलन था। इन कवियों ने अपनी कविताओं में अति-यथार्थवाद पर अधिक बल दिया। इन कवियों पर एक साथ, प्रयोगवाद, प्रतीकवाद, अस्तित्ववाद तथा वैयक्तिक, नवस्वच्छन्दवाद का अच्छा प्रभाव पड़ा। "नकेन" की भूमिका "पत्रमशा" में इन्होंने एक घोषणापत्र छापा जिसकी धाराएं इस प्रकार है:- इसको प्रयोग दश सूची भी कहा गया है --

....8

1- प्रपद्य भाव और व्यंजना का स्थापत्य है।

2- प्रपद्य वाद सर्वतंत्र स्वतंत्र है, इसके लिए शास्त्र या पूर्वनिर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं।

3- प्रपद्यवाद महान पूर्ववर्ती की परिपाटियों को भी निष्प्राय मानता है।

4- प्रपद्यवाद दूसरों के अनुकरण की तरह अपना अनुकरण भी वर्जित समझता है।

5- प्रपद्यवाद मुक्त काव्य ही नहीं, स्वच्छन्द काव्य की स्थिति अभीष्ट है।

6- प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रपद्यवादी साध्य।

7- प्रयोग का प्रकवावयपदीय प्रणाली है।

8- प्रपद्यवादी प्रयुक्त शब्द और छन्द का स्वयं निर्माता है।

9- प्रपद्यवाद दृष्टिकोणों का अनुसंधान है।

10- प्रपद्यवाद के लिए जीवन और कोश कच्चे माल की खान है।

11- प्रपद्यवाद मानता है कि पद्य में उत्कृष्ट केन्द्रण होता है और यही गद्य और पद्य में अन्तर है।

12- प्रपद्यवाद मानता है कि चीजों का एक मात्र सही नाम होता है।[12]

पहले यह दश-सूत्री था। सन् 1954 ई0 में इसमें दो सूत्रों को जोड़ा गया।

नन्द दुलारे वाजपेयी ने कहा है कि - "वास्तव में नकेन वाद प्रयोग-शीलता का एक अतिवाद था। प्रयोगवाद के प्रवक्ताओं ने जो कुछ नया कहा था। उससे संतुष्ट न होकर उसे एक तार्किक अतिवाद तक पहुंचाने का कार्य "नकेन" की संग्रह पुस्तककी भूमिका "पतझड़ा" में दिखाई पड़ता है। अतिवादी भूमिका यह थी कि वास्तविक कविता किसी पूर्व स्थिति से कोई

सम्बन्ध नहीं रखती है और सारा साहित्य इतिहास काव्य के लिए केवल खाद का काम करता है। दूसरा अतिवाद काव्य को भाव व इसकी भूमिका से हटकर केवल बिम्ब तक सीमित करने का था। बिम्ब निर्माण में भी काव्य प्रक्रिया से भिन्न एवं बौद्धिक प्रक्रिया का पक्ष अधिक जोरदार शब्दों में निरूपित किया गया।"

चौथा सप्तक :-

अज्ञेय जी ने चौथा सप्तक का सम्पादन सन् 1979 ई० में किया। जिसमें पहले सप्तकों की तरह ही सात कवि अपनी कविताओं और वक्तव्यों के साथ संकलित हैं। "तीसरा सप्तक" के बाद यह सप्तक काफी अन्तराल के बाद छपा। इसका मुख्य परिणाम है कि "चौथा सप्तक" में रखे गये कवियों के बीच वयस की दृष्टि से बहुत अन्तर है। कवि ने बहुत सोच विचार के बाद ही इन कवियों का चयन किया है जो इस प्रकार हैं- अवधेश कुमार, राजकुमार कुम्भज, स्वदेश भारती, नन्दकिशोर आचार्य, सुमनराजे, श्रीराम वर्मा एवं राजकिशोर। इस सप्तक की भूमिका में अज्ञेय जी लिखते हैं कि "आज की कविता में जो प्रवृत्तियां मुखर हुई हैं, उनके बीज उससे पहले की कविता में मौजूद थे। इस कविता में भी जिसे प्रयोगवादी कहा जाता है और उसमें भी जिसे प्रयोगशील नाम दिया गया। यह बात वैसी ही सही होगी जैसी यह बात कि प्रयोगवादी अथवा प्रगतिवादी प्रवृत्तियों के बीज छायावादियों में थे, और छायावादियों के उससे पहले के इतिवृतात्मककाव्य में इत्यादि। ऐसा तो होता ही है कि कविता में से ही निकलती है।"[14] इस तरह से प्रयोगवाद का विकास हुआ। इसको कुछ विद्वानों ने आगे चलकर "प्रयोगवादी नई कविता" भी कहना शुरू कर दिया, और फिर आगे नई कविता नाम की प्रसिद्धि हो गयी। सन् 1954 ई० में "नई कविता" पत्रिका साहित्य सहयोग से

प्रकाशित हुई। इसके पहले और दूसरे अंकों के संपादक डा० जगदीश गुप्त और डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी थे। इसके बाद नई कविता और प्रयोगवाद का द्वन्द शुरू हो गया। (वैसे "नई कविता" प्रयोगवाद के बाद ही हिन्दी क्षेत्र में आया। इसलिए यह प्रयोग वाद की ही देन है।

प्रयोगवाद की परिभाषा :-

ज्यादातर विद्वानों ने प्रयोगवाद और नई कविता को एक ही माना है। उन्होंने कहा है कि प्रयोगवाद में प्रौढ़ता है और नई कविता में सुनिश्चितता।

गिरजा कुमार माथुर जी कहते हैं—कि "प्रयोगों का लक्ष्य है व्यापक सामाजिक सत्य के खण्ड अनुभवों का साधारणीकरण करने में कविता को नवानुकूल माध्यम देना, जिसमें व्यक्ति द्वारा इस व्यापक सत्य का सर्वबोधगम्य प्रेषण सम्भव हो सके। सभी विद्वानों ने प्रयोगवाद से सम्बन्धित कविताओं को "प्रयोगवादी नई कविता" का नाम दिया है।

अज्ञेय जी कहते हैं कि "सहजमानव एवं सहज परिवेश तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक यथार्थ जन्म संकुलताओं की तदनुरूप समर्थ शिल्पमय अकुण्ठ अभिव्यक्ति जो कवि की अनुभूति के पटल से छनकर आई हो "प्रयोगवादी नई कविता" है।

श्री सिद्धेश्वर प्रसाद का प्रयोगवाद के विषय में कहना है कि :-

1– काव्य के अन्तरंग दृष्टि से किसी सिद्धान्त विशेष का आग्रही नहीं है।

2– काव्य के बहिरंग की दृष्टि से वह कविता को जड़ाउ बनाने का विरोधी है।[15]

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेई जी ने कहा है कि --"प्रयोगवादी साहित्यिक से साधारणत: उस व्यक्ति का बोध होता है जिसकी रचना में कोई व्यक्ति अनुभूति कोई स्वाभाविक क्रम-विकास या कोई सुनिश्चित व्यक्तित्व न हो।" [16]

इस प्रकार कुछ विद्वानों ने प्रयोगवाद और नई कविता में कोई अन्तर ही नहीं माना है और कुछ ने कहा है कि प्रयोगवाद में प्रौढ़ता है, और नई कविता में सुनिश्चितता। इस प्रकार "प्रयोगवाद की परिभाषा स्पष्ट नहीं हो पाई है। और इसके बाद जल्दी ही नई कविता का विकास हो गया।

प्रयोगवाद की प्रवृत्तियां :-

प्रयोगवाद की कुछ प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं :-

1- बौद्धिकता :-

प्रयोगवाद कवियों का लक्ष्य रस के स्थान पर बौद्धिकता का है। जहां पर बुद्धितत्व का पूर्ण रूप से समर्थन होने से भावुकता और तुकान्तता की उपेक्षा होने लगती है। वहां पर कविता गद्य वत हो जाती है। फिर भी इन कवियों को कोई चिन्ता नहीं होती है। काव्य में बौद्धिकता का समावेश भावुकता के स्थान पर कई कारणों के द्वारा होता है। आज के युग में वैज्ञानिक आविष्कारों की इतनी भरमार हो रही है कि इन्होंने जीवन को इतना गरिमायुक्त बना दिया कि नया कवि पुरानी कविताओं की भाव संकलित शैली और भावुकता को छोड़कर बौद्धिकता की ओर अग्रसर होगया। इस कविता में कवि ने उत्तेजन पर विश्वास करना छोड़ दिया है। यह कार्य अब केवल हृदय या भावनाओं म के सहारे बिल्कुल नहीं हो सकता। सबसे पहले बुद्धि को संतुष्ट करना पड़ेगा। इसी प्रकार कविता में एक वैज्ञानिक या बुद्धिवादी दृष्टिकोणों को अपनाया जाता है। इसके बाद कविता में यह तत्व इतना प्रबल हो गया कि धर्म और ईश्वर पर

विश्वास करना छोड़ दिया। ईश्वर के विरुद्ध वैज्ञानिक विचारधारा का कार्य प्रगतिशील रहा जो पुर्नजागरण के युग से ही शक्ति ग्रहण करती थी। उन्नसवीं शताब्दी में आते-आते ही बौद्धिकता ने अपना पूर्ण रूप ग्रहण कर लिया। मार्क्सवादी विचारों वाले कवियों ने तो ईश्वर और धर्म के पुराने रूपों का पूरी शक्ति के साथ विरोध किया। इसके बाद वैज्ञानिक बुद्धिवाद ने युगों से स्थापित मूर्ति को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। रघुवीर सहाय ने अपने काव्य में बौद्धिकता का प्रयोग किया है:-

जैसे :--

मरने की इच्छा समर्थ की इच्छा है,
असहाय जीना चाहता हूं
आओ सब मिलकर उसे बस जीवित रखें
सब नष्ट हो जाने की कल्पना
शासक की इच्छा है
आओ हम सब मिलकर,
उसे छोड़ बाकी सब नष्ट करें।
सुन्दर है सर्वनाश
वही सर्वहारा के कष्टों को सार्थक करता है।[17]

2- <u>व्यक्तिवादिता :-</u>

प्रयोगशील धारा का मूल स्वर व्यक्तिवादी भी है। प्रयोगवादियों को व्यक्तिवाद समाज से कटने और कोई भी कार्य न कर पाने की असमर्थता से उत्पन्न हुआ है। इसी व्यक्तिवाद की चरम परिणति को इन्होंने अहमवाद की संज्ञा से अभिहित किया है। इसी

व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण निराशा, कुंठा, घुटन और पराजय के स्वर सामने आते हैं। "प्रतीक" में भारत भूषण अग्रवाल का कथन इस प्रकार है --"मेरी कविता अजीब तरह से व्यक्तिगत कविता है। वह जन-साधारण से दूर है, उसमें केवल अपने मन की निराशा और व्यथा का ही क्रन्दन और सोच है"।[18] वैयक्तिक कुंठा और बौद्धिकता के समावेश ने मानवीय संवेदनाओं और अनुभूतियों को अन्तर्मुखी बना दिया है। इसलिए कुछ परम्परावादी आलोचकों ने इस कविता पर असामाजिकता का आरोप भी लगाया। किन्तु यह आरोप आंशिक रूप से ही सत्य है। अंध जड़ता के युग में प्रयोगवादियों ने समाजव्यापी कुंठा, निराशा व अवसाद को अभिव्यक्ति किया वे उसके निजी परिवेश, जो व्यापक सन्दर्भ में सामाजिक परिवेश ही था। रघुवीर सहाय ने अपने काव्यों में व्यक्तिवाद का प्रयोग किया है। मांग रहे हैं जीवन कविता में :--

अपनी उन्मद जीवन आशा से हम दण्डित
माथे मुकुट व्यथा का बांधे
इस क्षण की महिमा से मंडित
हम वैज्ञानिक हैं, हम पंडित हैं, हम खंडित
शरणागत हम

विह्वल भोगी विकल विलासी हम नर-नारी
उद्वेलित आन्दोलित आड़ोलित संसारी
निश्चल पीड़ा आज हमारी
डाल दिये हैं हमने कांधे.[19]

3- दुर्बोधता एवं जटिलता :-

प्रयोगवादी काव्य की एक प्रवृत्ति जटिलता भी है। वैसे तो यह प्रवृति बहुत पुरानी है, क्योंकि "रीतिकाल" और "भक्तिकाल" में काफी रचनाएं ऐसी मिल जाती हैं जैसे सूरदास के कूटपद और केशव का काव्य आदि। अज्ञेय के अनुसार "प्रयोगों के द्वारा भाषा एवं अभिव्यक्ति को इस प्रकार समर्थ बनाता है है कि वह आज के जीवन की जटिलता से उत्पन्न समाज के विभाजित सत्य को समूचा प्रदर्शित कर सके।"[20] नकेनवादियों ने इस जटिल भाषा का प्रयोग किया है। रघुवीर सहाय की भाषा में कहीं-कहीं दुर्बोधता आ गई है- जैसे :-

भाषा की उष्मा से फूटते नहीं है शब्द,
भीगी पोटली में अब
कविता बनाकर मैं मोड़कर रख देता रहा हूं
दो दिन में खोलकर पढ़ लेता रहा हूं
आड़े तिरछे अखुएं चिटखी दरारों में झांकते मिले हैं
आज यह नहीं हुआ
सावधान।
क्या खड़ी बोली में अनजाना शब्द
अब नहीं रहा
जिसको परम्परा देती थी?[21]

4- संकीर्णता :-

प्रयोगवादी कवियों ने संकीर्णता का भी जगह-जगह पर प्रयोग किया है। इनके काव्यों में जनवादी चेतना का अभाव भी है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने अपने शब्दों में लिखा है कि "काव्य के क्षेत्र में कुछ कवियों ने अतिवादी दृष्टिकोण अपनाकर काव्य धारा को

सीमित कर दिया है और काव्य की प्रशस्त भूमि पीछे छूट गई। कुछ कवियों ने जानबूझ कर विद्रूप काव्य-रचना का बीड़ा उठा लिया और नैसर्गिक परिणाम के रूप में रचना में व्यक्तित्व का विद्रूपकपन भी दिखाई देता है।"[22] प्रयोगवाद वैसे काव्य के सभी उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सका। इस प्रकार "प्रयोगवाद" जल्दी ही लुप्त हो गया। रघुवीर सहाय के काव्य में भी कहीं-कहीं संकीर्णता है--जैसे:-

अब चंगे होने पर हंसने का मन लौट आया है
पर लम्बे रोग-रोग में शरीर खो चुका है
हंसी रोकने पर वश।[23]

5- <u>परम्परा</u> :-

नकारात्मक एवं स्वीकारात्मक-प्रयोगवादी काव्य में कर दिया है। प्रयोगवादी कवियों ने नवीनता को अपना कर परम्परा के मूल्यों को नकार दिया है। डा० देवराज सिंह ने प्रयोगवादी काव्य में ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव भी बताया है। "युगचेतना" में उन्होंने अपने एक लेख में इस प्रकार कहा है कि --"प्रयोगवाद भी ज्ञात या अज्ञात रूप में एक नया दर्शन लेकर आया है, वह दर्शन है सौन्दर्यवाद और परम्परा त्याग का विरोध।"[24] प्रयोगवादी काव्य में नवीनता के प्रति आग्रह है और पुरातन के प्रति उपेक्षा आज के जटिल जीवन के लिए अनुकूल है। आजकल पुराने जीवन मूल्यों के ग्रहण का प्रयत्न कवि करते रहते हैं। नवीनता के आग्रह के लिए परिस्थितियों भी आज के युग के अनुकूल पाई जाती हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय देश में ऐसी परिस्थितियों का सामना कवियों ने किया था। जिसमें आर्थिक संकट के साथ अनैतिकता, अहंकार, असंतोष का आवेग उभर कर सामने आ रहा था। इन्हीं परिस्थितियों में जन-मन में व्याप्त गांधीवाद की परिणति व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के साथ हुई।

नकेनवादी कवि केसरी कुमार सिंह ने परम्परा का भार ढोने की अपेक्षा नवीनता की ओर संकेत मात्र इस प्रकार किया है कि "प्रयोगवाद में परम्परा को ढोने की प्रक्रिया नहीं है अतः प्रयोगवाद जीवन के प्रतिष्ठित तंत्र को नहीं जीवन के प्रति जागृति को, भाषा के आर्य प्रयोग को नहीं भाषा के प्रति जागरूकता को आवश्यक समझाया है।"[25] इस प्रकार कुछ प्रयोग वादियों ने परम्परा को नकारात्मक समझा है और कुछ ने सकारात्मक प्रयोग भी किये हैं। रघुवीर सहाय ने भी अपनी कविता में परम्परा का प्रयोग किया है, जैसे :—

शक्ति दो, बल दो, हे पिता! जब दुखः के भार से
मन थकने को आये
पैरों में कुली की सी लपकती चाल छटपटाय
इतना सौजन्य दो कि दूसरों के बक्स बिस्तर
घर तक पहुंचा आये, कोट की पीठ मैली न हो
ऐसी दो व्यथा। शक्ति दो और यह नहीं दो तो
यही कहो, यही कहो, अपने पुत्रों और मेरे छोटे भाइयों
के लिए यही कहो, कैसे सहा होगा
पिता कैसे तुम बचे होगे ?[26]

6— प्रयोगवादी कवियों ने अपनी कविताओं में परम्परा के प्रति अनास्था के भाव को अधिक महत्त्व दिया है। लगभग सभी कवियों ने नवीनता के लिए अधिक प्रयास किया है।

6— मानवतावादी दृष्टिकोण :-

प्रयोगवादी हिन्दी कविता में मानववाद एक प्रमुख प्रवृत्ति है। मानव की सृष्टि में सर्वोत्तम कृति माना गया है परन्तु साहित्यकारों

ने इसको आदर्शवादी रूप में पहचाना है। प्रयोगवादी कविता में मानव के यथार्थवादी दृष्टिकोण को समझने की पूर्ण रूप से कोशिश की है। उसकी समस्त इच्छाओं आकांक्षाओं, भूख और मूलभूत एषणाओं को भी स्थान दिया है। मनुष्य के लिए सामाजिकता का बहुत महत्व है जिसकी देन को भूलना असम्भव कार्य है। धर्मवीर भारती ने अपने शब्दों में मानववादी दृष्टिकोण के विषय में इस प्रकार कहा है कि —"साधारण, छोटे महत्व-हीन, नगण्य मनुष्य की मुक्ति, उसकी निहित सम्भावनाओं का विकास उसकी चेतना पर जकड़ी हुई राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक, मनो - वैज्ञानिक जंजीरों को खोलकर उसे अपने विवेक, अपने जीवन पद्धति से व्यापक सत्य की निजी उपलब्धि करने का अवसर देना, उसके यथार्थ के सारे जटिलतम ताने-बाने को ठीक-ठीक समझना और किसी काल्पनिक भविष्य नहीं वरन् इसी कटुतम वर्तमान में सामान्य मानव की नियति को संस्कार दे सकने की क्षमता यही नये साहित्य की मानवतावादी प्रवृति है।"[27] इसी प्रवृति को ध्यान में रखते हुए लघु मानव के जागरूक व्यक्तित्व को देखा गया है।

मानवतावादी दृष्टिकोण हिन्दी के प्रयोगवादी कवियों की एक नई देन है किन्तु लघुता और अपूर्णता को सब कुछ मान लेना ही उचित नहीं है। मानव की अपूर्णता, कमियों और सीमाओं का भी विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है। पूर्ण रूप से अहमवाद को दिखाने में अहम् को अत्याधिक महत्व मिलेगा जो मानव मन के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। प्रयोगवादियों ने मानव की संवेदनाओं के संवहन के साथ-साथ उसकी शक्ति, संघर्ष, दैन्य, मूल्य, स्वास्थ्य, समाज परिवेश, मानवता की प्रतिष्ठा आदि की ओर भी अधिक ध्यान दिया है। रघुवीर सहाय की एक कविता इस प्रकार है :-

बाकी रह जायेगा
क्योंकि यहीं से हमें त्रस्त मानवता को संदेश देना है
हरियर पहाड़ी पर युद्ध के नक्कारे तूती के साथ
पदक वर्दी धारे हुए वादक स्वरलिपि को देख-देखकर बजाते हैं
वहां प्रकट होती है प्रायोजित स्मृति सभा
लेखक, समाजविद और नई जाति के विचारक आमंत्रित हैं।"[28]

7- व्यंग्यपरकता :-

समकालीन मूल्यों के विपर्ययों पर प्रयोगवादी कवि व्यंग्य करता है। उन्होंने युगीन संक्रान्ति, विरोधाभास, असंगतियों और विकृतियों को व्यंग्य विपर्यय के रूप में अभिव्यक्त किया है। तार सप्तक के कवि भारत भूषण अग्रवाल व अज्ञेय की कविताओं, गीत फरोश व "सांप" में इनका प्रयोग देखने को मिलता है। सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक धार्मिक आदि अनेक क्षेत्रों में व्यंग्य देखा जा सकता है। नये कवियों ने व्यंग्य के द्वारा जीवन की विषमताओं पर बहुत प्रहार किये हैं। वह यथार्थ को बढ़ावा दे रहा है लेकिन उसे चारों तरफ शोषण, कटुता ही कटुता व घुटन दिखाई पड़ता है। तो वह तिलमिला उठता है और अपने व्यंग्य बाण छोड़ने लगता है। प्रयोगवादियों में काफी हद तक व्यंग्य के उदाहरण मिल जाते हैं- हमारी हिन्दी कविता में स्त्रियों पर व्यंग्य किया गया है जैसे :-

हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीवी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली
गहने गढ़ाते जाओ
सर पर चढ़ाते जाओ
वह मुटाती जाये
पसीने से गंधाती जाये घर का माल मैके पहुंचाती जाये।[29]

8– <u>उलझी हुई संवेदनायें :-</u>

प्रयोगवाद में उलझी हुई संवेदनाओं को भी स्थान दिया गया है। इन उलझी हुई संवेदनाओं के बारे में अज्ञेय का एक कथन इस प्रकार है–"इस उलझी हुई संवेदना के दो कारण हैं आन्तरिक संघर्ष और बाह्य संघर्ष। आन्तरिक संघर्ष के फलस्वरूप आज के मानव का मनयौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और ये कल्पनायें सब दमित और कुंठित हैं। इनकी सौन्दर्य चेतना भी इससे अक्रान्त है। उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं और इस आन्तरिक संघर्ष के ऊपर जैसे काठी कसकर एक बाह्य संघर्ष भी बैठा है, जो व्यक्ति का नहीं, व्यक्ति समूह और व्यक्ति का, वर्गों और श्रेणियों का संघर्ष है। व्यक्तिगत चेतना के ऊपर एक वर्गगत चेतना भी लदी हुई है और उचितानुचित की भावनाओं को अनुशासन करती है, जिससे एक-दूसरे की वर्जनाओं का पुल खड़ा होता है।"[30]

इन उलझी हुई संवेदनाओं के अतिरिक्त, भावतत्व, बुद्धितत्व, और मुक्त चेतना प्रवाह के ऐसे कारण उपस्थित थे जिसके कारण यह काव्य स्वच्छन्दतावादी कवियों को बहुत ही कठिन एवं जटिल दिखाई पड़ा। इस काव्य पर फ्रांस के प्रतीकवादियों का प्रभाव पड़ा जिसके कारण इसमें जटिलता और अधिक गहनता आ गई। इस प्रकार प्रयोगवाद में उलझी हुई संवेदनायें भी दिखलाई पड़ती हैं।

9– <u>पीड़ा बोध :-</u>

पीड़ा बोध भी प्रयोगवाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। इसमें अनास्था, कुंठा, निराशा, मृत्युबोध, के स्वरों की अधिक प्रचुरता मिलती है। जैसे :-

पीड़ा की इस पद्धन्ति में
हम तो कुछ भी नहीं रहे
वह सब दुखड़े भूल गये
जो तुम से अब तक नहीं कहे
दरद हमारा क्या था?
कोई भूख? या कि था बदहजमी.[31]

मृत्यु-बोध का एक उदाहरण इस प्रकार है—

आज का पाठ है- मृत्यु के साधारण तथ्य
अनेक मुख्य लिखो ।[32]

10- <u>अभिव्यंजना शिल्प</u> :-

हिन्दी कविता में "प्रयोगवाद" को शिल्प के क्षेत्र में सबसे अधिक योगदान दिया गया है। इसी प्रकार "प्रयोगवाद" एक कला और शिल्प सम्बन्धी आन्दोलन के रूप में बदल गया। प्रयोगवादी कवियों में शिल्प के धरातल पर उद्देश्य की एकता बलवती रही। यह उद्देश्य दोहराया जो भाषा और अभिव्यक्ति के लिए नये-नये आविष्कार कर रहा था, और काव्य सम्बन्धी सम्पूर्ण परम्परागत बन्धनों और निषेधों का त्याग कर रहा था। नयी कविता का शिल्प भी प्रयोगवाद से मिलता-जुलता रहा है।

भाषा :-

प्रयोगवादियों ने भाषा की अमित सम्भावनाओं का अन्वेषण किया। प्रयोगवादी कवि भाषा में कितना अर्थ ग्रहण कर सकते हैं, और कितनी गहराई ला सकते हैं वे इसको अपना लक्ष्य मानकर चले।

शब्द शक्ति के क्षेत्र में इन्होंने परम्परागत काव्य शास्त्रीय आयामों को विस्तृत रूप से प्रकट किया।" तीसरा सप्तक" में अज्ञेय जी ने भाषा के विकास के विषय में इस प्रकार लिखा है कि "प्रत्येक शब्द की अपने वाच्यार्थ के अलावा अलग-अलग लक्षणायें और व्यंजनाएं होती हैं, अलग संस्कार और ध्वनियां।"[33]

प्रयोगवादियों कवियों कहीं-कहीं पर भाषा के अच्छे प्रयोग भी किये हैं, किन्तु कहीं-कहीं पर कवि ने अपनी विलक्षण स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति के कारण खड़ी बोली के व्याकरण सम्मत रूप की अवहेलना भी की है। रघुवीर सहाय की कुछ इस प्रकार हैं :-

शक्ति दो बल दो हे पिता
जब दुःख के भार से मन थकने को आय
पैरों में कुली की सी लपकती चाल छटपटाये
तुमसे मिला है जो विक्षत जीवन का हमें दाय
उसे क्या करें ?

यहां पर कवि ने थकने आप में व्याकरण की दृष्टि से चिन्त्य बताया है। खड़ी बोली के अनुसार कहीं दमित वासनाओं और कुंठाओं के वर्णनाग्रह से इनकी भाषा में ग्राम्य दोष भी आ गया है। भाषा के क्षेत्र में इन्होंने नवीन प्रयोग किये हैं और अपनी हठवादिता के कारण इन्होंने अपने काव्यों में भूगोल, विज्ञान, दर्शन, मनोविश्लेषण शास्त्र एवं बाजारू बोली का प्रयोग करने में संकोच नहीं किया है।

नये शिल्प, नई भाषा और नई अभिव्यक्ति के प्रति बेहद आत्म-सजगता प्रयोगवादी कवियों में देखने के लिए एक कविता "सूर शिल्प" में भी उन्होंने अपने मन की बात को कह लेने का विश्वास प्रकट किया है। प्रयोगवादी कवियों ने अलग-अलग तरह से सूक्ष्म, मौलिक और सहज प्रयोग निरन्तर किये हैं।

गद्यात्मकता :-

हिन्दी कविता में प्रयोगवादी कवियों ने गद्यात्मकता का भी प्रयोग किया है। वैसे छन्द के बंधन से मुक्त करने का कार्य निराला जी ने किया है। परन्तु मुक्त छन्दकों अथवा लयात्मक गद्य को काव्य के स्तर पर पूरी तरह प्रतिष्ठित करने का कार्य प्रयोगवादी कवियों ने ही पूरा किया।

गद्यात्मकता की प्रवृति पर काफी विवाद हुआ। पुराने कवियों ने इस प्रवृति का जमकर विरोध किया। "साहित्य संदेश" में उदय शंकर भट्ट ने कहा है कि "आज के कवि की रचना का कलापक्ष पुष्ट नहीं हो पा रहा है। कविता गद्य बनती जा रही है। रचना का शिल्प-विधान एकदम उच्छृंखल हो उठा है। प्रयोग और प्रयोगशीलता के पचड़े में जो सिवा एक विचार धारा के प्रोपेगैण्डा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है या विदेश की एक नकल मात्र है, हिन्दी कविता का स्तर जैसे नीचे गिर रहा है यह कविता न हो कर विशृंखलित गद्य हो गया है।"[34]

इस प्रकार पुराने कवियों ने गद्यात्मकता का पूर्ण रूप से विरोध किया और नये कवियों ने इसको महत्व दिया। उनकी अधिकतर कविताओं में मुक्त छन्द दिखाई पड़ता है। रघुवीर सहाय की कविताओं में गद्यात्मकता का प्रयोग किया गया है जैसे :-

"सुन्दर सुगठित पद्य सहृदय के हाथों लिखा
पढ़ते-पढ़ते चित, यात्राएं करने लगा
स्मृतियों का इहलोक, किसी और ने था रचा
भूले बिसरे चित्र, किन्तु मुझे मिलने लगे
उनका अपना कथ्य, वही गद्य कहने लगा।"[35]

इस प्रकार रघुवीर सहाय, अज्ञेय, भारत भूषण अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि की रचनाओं में गद्यात्मकता का प्रयोग किया गया है।

बिम्ब एवं प्रतीक :-

प्रयोगवाद में बिम्बों और प्रतीकों का नया से नया अन्वेषण और आविष्कार किया गया और उनके माध्यम से अपने भाषा को अभिव्यक्त किया गया। गणेशदत्त त्रिपाठी के शब्दों में "भारतीय समाज की अनिश्चित दिशा से उसका मन अनेक जटिल संवेदनाओं में उलझ चुका था। उन्हें लगा कि इन उलझी हुई संवेदनाओं को प्रकट करने के लिए अब तक प्रचलित सभी उपमान घिस-घिस कर प्रभावहीन हो चुके हैं । अतः कुछ नये उपमान नये प्रतीक और नये ढंग की अभिव्यक्ति की शैली की उद्भावना करनी चाहिए। इसके लिए भारत के विभिन्न स्थानों पर कुछ कवियों ने अपने-अपने ढंग से प्रयोग किये हैं।"[36] इन्होंने प्रयोगवादी कवियों की नई प्रतीक योजना और नई शैली की खोज के कारणों को स्पष्ट किया है। प्रयोगवादी कवियों ने प्रतीकों व बिम्बों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।

शैली :-

प्रयोगवाद के योगदान को हमेशा संकुचित दृष्टि से देखा जाता है। अधिकतर लोग उसे मुक्त छन्द या स्वच्छन्द छन्द के प्रयोग और शैली के चमत्कार की दृष्टि से देखते हैं, जो आंशिक रूप से ही सत्य की पुष्टि करता है। प्रयोगवादी कविता ने हिन्दी में पहली बार हिन्दी काव्य परम्परा के बाहर के छन्दों और अभिव्यक्ति कौशल को ही नहीं बल्कि नई पद्धति को आजमाने का कार्य किया है। प्रयोगवादियों ने लोक-धुनों और लोकगीतों के भी प्रयास किये हैं। लम्बी कविता के रचना विधान में प्रयोगवादी कवियों में विशेष रूप से मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय के अधिक प्रयास हैं।

इन कवियों ने मुख्य रूप से प्रतीकात्मक शैली, व्यंगात्मक शैली, गद्यात्मक शैली, बिम्बात्मक और रोमानी शैली की कविताएं लिखी। प्रतीकात्मक शैली में पूर्ण रूप से प्रतीक कविता पर छाया रहता है। और कवि उसके माध्यम से अपनी संवेदना को अभिव्यक्ति देता है। कविता में मुख्य प्रतीक के अन्तर्गत अन्य छोटे प्रतीक और बिम्ब जुड़े हुए हैं। यह शैली अज्ञेय की कविता "नदी के दीप" में देखने को मिलती है। व्यंगात्मक शैली में भी काफी कवितायें इन कवियों ने लिखीं हैं। प्रगतिवादी कवियों ने इस शैली की पहल की। इसका मुख्य कारण है समाज के प्रति अन्याय की भावना और सामाजिक अन्तर्विरोधों के प्रति प्रगतिवादियों की जागरूकता और भारतीय समाज में व्याप्त शोषण और उत्पीड़न तथा अनैतिकता के प्रति कवि की तीखी घृणा आदि ।

व्यंगात्मक शैली की रचनाओं का ढांचा दो तरह का बना होता है। कभी-कभी कवि विदूषक की भूमिका अपनाकर अपने कथ्य को विरोधी बिम्बों के माध्यम से कविता को आइने में उल्टा कर देखता है और कई बार उसमें बातचीत की शैली को अपनाता है। इस प्रकार कवि कविता में तरह-तरह से व्यंग्य करता है। रघुवीर सहाय की "हमारी हिन्दी" कविता में व्यंग्य किया गया है।

गद्यात्मक शैली का प्रयोगवादी कवियों ने वर्णन किया है। इस प्रकार शैली में रचनाकार की अभिव्यक्ति, सहज, सरल और बनावटी होती है। इस शैली की कविताओं को गद्य कविता भी कहा जा सकता

है। इस प्रकार गद्य कविता के नाम पर लिखी जाने वाली कविता नहीं बल्कि गद्य का ही रूप धारण कर लेती है।

रघुवीर सहाय की एक कविता – आज फिर मैं :-

यह सही है कि गांव में लगातार रहकर भी अपने इंसान को जाना जा सकता है। मगर एक गांव से, एक पंचायत से, घुटन से, मुक्ति से, दूसरी में जाना जाति के घेरे में रहकर सम्भव नहीं।"[37]

प्रयोगवादी कवियों ने रोमानी शैली को भी अपनी कविता में स्थान दिया है। जिन कविताओं में कवि ने प्रणय और रागात्मकता की युवा सुलभ भावनाओं का चित्रण हुआ है उनमें लोक भाषा और लोक शैली का गहरा प्रभाव दृष्टिगत होता है।

प्रयोगवाद की उपलब्धियां :-

प्रयोगवाद की कुछ उपलब्धियां भी हैं। प्रयोगवादी आन्दोलन लगभग एक दशक तक चलता रहा और थोड़े दिनों में ही अपनी चरम सीमा तक पहुंच कर समाप्त हो गया। इसके बाद ही "नई कविता" का विकास हुआ जिसने प्रयोगवाद को भी अपने में समाहित कर लिया। कुछ प्रयोगवाद कवियों को तो नई कविता के कवि माना जाने लगा। अभिव्यंजना और शिल्प के क्षेत्र में ही नहीं विषय वस्तु के क्षेत्र में भी प्रयोगवादियों ने नवीन प्रयोग किये। प्रयोगवादियों का प्रभाव उनके काव्य के बाद के काव्यों पर भी बहुत गहरा दिखाई पड़ता है। जिसे कोई भी नकार नहीं सकता। प्रयोगवादियों मे नवीनता के प्रति गहरा आग्रह केवल शिल्प पक्ष पर ही नहीं बल्कि वस्तु पक्ष पर भी है। केदार नाथ सिंह ने नई कविता का नया मोड़ में लिखा है कि प्रयोगवाद ने हमें आधुनिक मानव मन की दुविधा रहस्य, एकान्त

अनुभाव, चिन्तन की विभिन्न दिशाओं का बोध कराया है और मनोवैज्ञानिक चेतना दी है और इसके साथ ही उसने विशिष्टभाषा दी, जिसके द्वारा आधुनिक मन की परस्पर - संस्पर्शी अनुभूतियों को काव्य में मूर्त रूप देना सम्भव हो सका।[38] प्रयोगवाद ने भाषा को नया तेवर और कला को नये आयामों के रूप में प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपनी भाषा में अरबी, फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी के अनेक शब्दों को स्थान दिया है। कहीं-कहीं पर मुहावरों का भी प्रयोग किया। मुक्त छन्द और उक्तियों को भी इन्होंने निसंकोच अपनाया है। हिन्दी में गद्य कविता की देन प्रयोगवाद ही लेकर आया।

प्रयोगवाद ने काव्य वस्तु के क्षेत्र को बहुत ही विस्तृत बना दिया। इसलिए प्रयोगवाद के लिए कोई भी विषय वस्तु ऐसी नहीं रही जिसे प्रयोगवादी कवि ग्रहण नहीं कर सके हैं। विषय वस्तु के लिए इन्होंने सीमा का भी उल्लंघन किया। इन्होंने न केवल, शोषण, पीडा, निराशा, कुण्ठा, आदि को ही विषय नहीं माना, बल्कि व्यक्ति मन के गुहांधकार के औरांग उटांग को भी कविता में स्थान दिया। स्वतंत्रता के प्राप्ति के बाद तो प्रयोगवाद ने भारतीयों के मन को असीम उपलब्धियों का उत्साह और उमंग सामने जागृत कर दी, जिससे प्रयोगवाद की अभिव्यक्ति हुई। प्रयोग वाद ने जीवन-जगत में विकसित होते हुए नये मूल्यों को काव्य में स्थापित किया। सामाजिक यथार्थ के क्षेत्र में इन कवियों ने आगे बढ़कर मार्ग प्रशस्त किया। सेक्स और प्रणय-निवेदन की परम्पराओं का तिरस्कार करके इन्होंने आधुनिकता को पूरी तरह से प्रश्रय दिया। प्रत्येक व्यक्ति के मन में बौद्धिकता का संचार किया।

प्रयोगवाद ने हिन्दी काव्य में नये सौन्दर्य बोध को जन्म दिया। पूंजीवाद विकास की फलस्वरूप पश्चिमी देशों की आधुनिकता रूचि तथा आधुनिकता बोध को प्रयोगवादी काव्य में स्थापित कर दिया। साधारण मनुष्य की सामान्य, अभिलाषाओं, आकांक्षाओं को इस कविता में स्थान प्राप्त हुआ। इन कवियों ने जटिलता, गद्यात्मकता दुरूहता आदि परम्परागत काव्य समीक्षा के दोषों को काव्य गुणों के रूप में स्वीकार किया और उसकी परिभाषा भी की। इस प्रकार प्रयोगवाद की उपलब्धियाँ सामने आती है।

प्रयोगवाद और नई कविता :-

प्रयोगवाद और नई कविता के सम्बन्ध में कुछ मत इस प्रकार हैं:- "प्रयोगवाद" उस काल की देन है जब हमारा देश क्रान्तिकारी परिस्थितियों में जकड़ा हुआ था। जिसकी भूमिका सन् 1942 के आन्दोलन और 1945 ई0 के विद्रोह व मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव और आजादी के परिप्रेक्ष्य में व्यापक जन-आन्दोलन से तैयार हुई थी।

"प्रयोगवाद" और नई कविता के सम्बन्ध में शिवकुमार मिश्र का कहना है कि सन् 1955 ई0 के पश्चात लिखी गई कविताओं को ही "नई कविता" मानना चाहिए। मिश्रा जी प्रयोगवाद, प्रगतिवाद के साथ नई कविता का कोई आन्तरिक सम्बन्ध नहीं मानते और उसे एक स्वतंत्र प्रवृति समझना इतिहास सम्मत समझते हैं।[39] इस प्रकार प्रयोगवाद नई कविता से एकदम भिन्न है।

एक दूसरा मत इस प्रकार है कि हिन्दी काव्य में प्रयोगशीलता के साथ, आधुनिकता का समारम्भ हुआ और सन् 1940 ई0 के काव्य विकास को प्रयोगवाद और नई कविता के कृत्रिम वर्गों में बांटकर देखने के बदले उसे आधुनिकता की प्रक्रिया और उसके उन्मेष के एक समूचे दौर में देखना चाहिए। यह मत गिरीजा कुमार माथुर का है।

जो यह मानते हैं कि "आधुनिकता की प्रक्रिया के विकास के दूसरे चरण को "नई कविता" के नाम से ही अभिहित करने के बदले उसे आधुनिकता की विभिन्न प्रवृत्तियों के रूप में ही देखना संगत है।"[40] गिरिजा कुमार माथुर प्रयोगशीलता को "आधुनिकता" का एक धर्म मानते हैं और आधुनिक कविता के समूचे परिदृश्य को जिसे वे "अकविता" तक विस्तृत मानते हैं इसको प्रयोगशीलता का ही प्रसार कह कर पुकारते है।

"प्रयोगवाद" और "नई कविता" के विपरीत में भी कुछ मत हैं। कुछ कवि समझते हैं कि नई कविता और प्रयोगवाद दो भिन्न-भिन्न काव्य प्रवृत्तियां हैं, परन्तु इनका घनिष्ठ ऐतिहासिक सम्बन्ध है।

विद्यानिवास मिश्र कहते है कि प्रयोगवाद विरोध तथा विकास का मिला-जुला रूप है, जबकि नई कविता एक सहज विकास के क्रम में है। और यद्यपि प्रत्येक ऐसी कविता का प्रत्येक युग में उस कविता से संघर्ष रहा है, जो लीक से बंधी होने के कारण दुर्वह हो जाती है।

नयी कविता का संघर्ष अपनी पूर्ववर्ती कविता से नहीं के बराबर है क्योंकि इसका प्रारम्भ एक ऐसी रिक्तता से होता है जिसे पूर्ववर्ती कविता छोड़ कर गयी थी।

तीसरा मत इस प्रकार है कि "नई कविता और प्रयोगवाद एक दूसरे के पूरक हैं या यों कहे कि आरम्भ में जिसे प्रयोगवादी कविता कहा गया वह आरम्भिक नई कविता ही थी। जिसे काव्य प्रवृत्ति को विरोधी आलोचना के एक गलत नाम प्रयोगवाद दे दिया गया। उसे नई कविता कहकर ही पुकारना चाहिए था। अज्ञेय ने भी इस मत को स्वीकार किया। यह माना जाता है कि प्रयोगवाद ने नई कविता के लिए भूमि तैयार की और एक ऐसी विभाजन रेखा खींची जो नये काव्य

संसार को साफ-सुथरे रूप से प्रदर्शित करती है। जगदीश गुप्त द्वारा प्रयोगवाद की परिणति को हम नई कविता के रूप में देख सकते है। उनके शब्दों में "नयी कविता के उन्मेष और वाद रहित मानवीय जीवन दृष्टि तथा विकसित एवं परिष्कृत सौन्दर्यबोध ने प्रयोगदवाद को दुर्गति तक पहुंचने का विचार जाने से रोक लिया। यही नहीं उसने इसके सार्थक तत्वों को नई भूमिका-प्रदान की तथा कला चेतना और शिल्पगत सजगता के अनेक पक्षों का उद्घाटन करते हुए उसे पूरी तरह आत्मसात कर लिया।"

इसके अलावा एक मत इस प्रकार है कि जिसके अनुसार "नई कविता" प्रयोगवाद का विकसित रूप नहीं है बल्कि जैसा कि बालकृष्ण राव मानते हैं। इसने प्रयोगशाला को नहीं अपनाया बल्कि समय के विभिन्न आयामों का उदघाटन भी किया। मानवीय संवेदनाओं के गहन स्तरों को प्रतिष्ठापित किया, मानव मूल्यों को सशक्त अभिव्यक्ति दी।"

डा० रघुवंश भी नई कविता को प्रयोगशील नई कविता का विकसित रूप मानते हैं। उनके शब्दों में प्रयोगशील कविता ने परम्परा से विद्रोह के रूप में प्रयोग तथा मार्ग का अन्वेषण प्रारम्भ किया था। परन्तु नई कविता के सन्दर्भ में प्रयोग मार्गान्वेषण उसकी प्रवृति के रूप में स्वीकृत है।[44]

इस प्रकार प्रयोगवाद और नई कविता को भिन्न भी माना है। और कुछ विद्वानों ने एक ही समझा है। लेकिन प्रयोगवाद और नई कविता वास्तव में अलग नहीं है।

....30

खण्ड - (ख)

"नयी कविता"

"दूसरा सप्तक" के बाद की कविता को "नयी कविता" के नाम से ही जाना जाता है। यह मुख्य रूप से "प्रयोगवाद" का ही परिवर्तित एवं विकसित रूप है "तीसरा सप्तक" ने "प्रयोगवाद" का अन्त और "नयी कविता" का श्री गणेश किया। "प्रयोगवाद" ने ही नयी कविता के लिए भूमि तैयार की। शम्भूनाथ सिंह ने अपने एक लेख "नयी कविता में लिखा है कि "नयी कविता "प्रयोगवाद" की विरासत है। "तार सप्तक के सम्पादकीय तथा कवियों के वक्तव्यों में "प्रयोग" शब्द के बार-बार व्यवहार को देखकर कतिपय आलोचकों ने इस नयी काव्यधारा को नाम ही "प्रयोगवाद" रख दिया। इन कवियों में नवीन प्रयोग की प्रवृत्ति अवश्य बड़ी तीव्र थी। इधर कुछ दिनों से इन कवियों ने अपनी कविताओं के साथ "प्रयोगवादी" विशेषण न लगाकर उसे "नयी कविता" कहना शुरू कर दिया। इस प्रकार नयी कविता या नयी कही जाने वाली कविता "प्रयोगवाद" की ही विरासत है।"[45] आज के अर्थों में "नयी कविता" नामकरण अज्ञेय द्वारा किया हुआ है।

नयी कविता को सीमित फलक पर रखते हुए शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि " सन् 1955 के पश्चात लिखी हुई कविताओं को ही "नयी कविता" मानना चाहिए।"[46]

स्वातंत्र्योत्तर काव्य प्रवृत्तियों ने प्रवादों की अग्नि में तपकर ही अपना नया रूप प्राप्त किया है। नयी कविता की अधिकांश अभिव्यक्ति और उपलब्धि "प्रयोगवाद" पर ही प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार प्रयोगवादी कविता से लेकर नयी कविता तक चलने वाले काव्य आन्दोलनों को समान अधिकार

प्राप्त है। इस प्रकार "नयी कविता" का प्रारम्भ "नये पत्ते" 1953 ई0 के प्रकाशन से माना गया है। जगदीश गुप्त द्वारा सम्पादित "नयी कविता" पत्रिका ने इसकी आधार भूमि तैयार की। नयी कविता का विश्वास भी आधुनिकता पर ही है।

नयी कविता के संदर्भ में डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपने को नयी कविता का दावेदार माना। उनका कहना है कि --" कविता की प्रथम अनुभूति पहले पहल उनके माध्यम से हुई, इसके पश्चात लक्ष्मीकान्त वर्मा के सहयोग से प्रकाशित "नये पत्ते" के द्वारा हुई। श्रीकांत वर्मा ने कहा है कि- देश को आजादी की प्राप्ति हुई उसी समय से हिन्दी में एक नयी काव्य प्रवृत्ति का विकास हुआ और इसके बाद उसी का नाम नयी कविता रखा गया। इस प्रकार "नयी कविता" ने अपना सम्पूर्ण रूप ग्रहण कर लिया।

जगदीश गुप्त ने अज्ञेय को ही "नयी कविता" का बाल्मीकि माना है। उन्होंने कहा है कि अज्ञेय जी को इसका अधिष्ठित प्रवक्ता होने का गौरव मिला है। वह एक ओर कविता को अहम् विलियन का साधन भी मानता है और दूसरी ओर यह भी याद दिलाता है कि इस कविता के लिए "नयी कविता" नाम उसी के द्वारा सुझाया हुआ है।

"नयी कविता" पत्रिका के प्रथम अंक में सुमित्रा नन्दन पन्त ने भी नयी कविता का आरम्भ छायावाद को माना है। उन्होंने लिखा है कि नयी कविता ने मानव भावना को छायावादी सौन्दर्य के छड़कते हुए पालने से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन समुद्र की उत्ताल तरंगों में पेंग भरने को छोड़ दिया है, जहां वह साहस के साथ सुख-दुख, आशा-निराशा के घात- प्रतिघातों में बढ़ती हुई जग-जीवन के आंधी-तूफानों का सामना कर सके, अन्तर्वेदना से मुक्त होकर सामाजिक व्यथा के अनुभवों से परिपक्व बन सके।" [47] इस प्रकार नयी कविता ने अपने रूप को प्राप्त किया और अपनी जड़े मजबूत बनाई।

जब नई कविता प्रकाशित होकर सामने आई थी तो इसकी कवियों पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। जगदीश गुप्त के अनुसार "नयी कविता के पहले अंक की अकल्पनीय और असाधारण प्रतिक्रिया हुई जिसने सारे हिन्दी जगत की जड़े हिला दी।"[48]

जगदीश गुप्त जी का कहना है कि "नयी कविता के साथ मैं अपनी सीमाओं से अपरिचित होकर नहीं आया और न यह सोचकर कि मुझ से अधिक समर्थ लोग उसके साथ नहीं है। नयी कविता ने स्वयं मुझे अपने नवोन्मेष से आकर्षित कर लिया और मेरे सहज काव्य प्रेमी व्यक्तित्व के आगे अपने स्वरूप को अनेकशः उद्घाटित कर दिया। धीरे-धीरे उसी ने अपनी अंतरंग समस्याओं के निकट ला दिया। नई रचनाओं की शक्ति ने मुझे स्वतः मुझे अपना प्रवक्ता बना लिया।"[49]

नयी कविता को स्थापित करने में अनेक पत्रिकाओं ने भी बहुत सहयोग दिया। जैसे प्रतीक, पाटल, नयी कविता, निकष, कवि, कविता, कल्पना, आजकल, आदि इन सभी पत्रिकाओं ने एक प्रबुद्ध पाठक वर्ग तैयार कर लिया था। "नयी कविता" नाम किसी प्रतिक्रिया में दिया हुआ नाम नहीं बल्कि "नयी कविता" एक व्यापक काव्यान्दोलन की रचनात्मक उपलब्धि का नाम है। जिसका नामकरण 1956 ई० तक स्थिर हो चुका था। नयी कविता में "नयी" शब्द को लेकर भी चर्चाएं हुई। जगदीश गुप्त को महादेवी वर्मा ने सुझाव दिया कि "नयी कविता" में से "नयी" शब्द निकाल देना चाहिए और इसका नाम सिर्फ "कविता" ही रखना चाहिए।

"नयी कविता" अर्थ की लय शीर्षक लेख में जगदीश गुप्त ने "नयी कविता की सबलता पर विश्वास किया है। "नयी कविता" किस प्रकार विरोधियों से सामना करती हुई ऊंचे- नीचे, आड़ी-तिरछे राहों को भेदती हुई आगे बढ़ी। उन्होंने कहा कि "उगती हुई हर अरुणाभ किरण को मरोड़ते हुए जो

सूरज मुंह में दबा रखने के लिए कटिबद्ध हो रहे हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि अब सूरज प्रभात का नहीं रहा, इसके ललाट से मध्यान्ह का तेज फूटने लगा है। और अब इसको छूने मिटाने का साहस संकट मोचन पवन पुत्र ही बनाएगा, वह वर्षों तक गुफावास करने के लिए झुलसे पंखों वाला क्षुधा-जीर्ण संकटग्रस्त संपाती भी बनाकर छोड़ सकता है।[50]

दूसरा सप्तक :-

दूसरा सप्तक के वक्तव्य में श्री हरिनारायण व्यास जी ने कहा है कि-- जब व्यक्तित्व इतना विस्तृत हो जाता है तो उसमें फिर से साहित्यिक नवीनता को प्रोत्साहन मिलता है। नये अर्थों वाले नये शब्द और नयी भावनाओं वाले नये छन्द आत्माभिव्यक्ति के आभूषण बन जाते हैं।[51] दूसरा सप्तक ने प्रयोगवाद का अन्त किया और एक नयी धारा को लेकर आया जिसका नाम नई कविता पड़ा। दूसरा सप्तक की भूमिका में "नयी कविता" के बारे में अज्ञेय जी ने कहा है कि-- "कवि के लिए नया करने को क्या रह गया है? क्या है जो कविता को आवृत्ति नहीं, सृष्टि को गौरव दे सकता है? कवि नये तथ्यों को उनके साथ नये रागात्मक सम्बन्ध जोड़कर नये सत्यों का रूप दे, उन नये सत्यों को प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करे, यही नयी रचना है। इसे नई कविता का कवि नहीं भूलता।"[51] दूसरे सप्तक के प्रमुख कवि हैं--भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती आदि। इन कवियों ने अपने काव्यों में "नयी" शब्द का प्रयोग किया और नयी कवितायें लिखीं। दूसरे सप्तक के कवि धर्मवीर भारती ने "नयी कविता" शीर्षक निबंध लिखकर "नयी कविता" नाम का समर्थन किया।

तीसरा सप्तक :-

"तीसरा सप्तक" में "नयी कविता" नाम की अभिव्यक्ति हुई। इस सप्तक के सभी कवियों ने "नयी कविता" के नामकरण को स्वीकार किया और नये काव्यों की रचना की। तीसरा सप्तक एक समीक्षात्मक लेख में xxxxx भगीरथ मिश्र

ने लिखा है कि प्रयोगवादियों को प्रयोगवादी कहलाना अच्छा नहीं लगता, इसलिए "तीसरा सप्तक" के साथ इस कविता को "नयी कविता" नाम दिया। लेकिन यह नाम चलने का नहीं, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से बीस-पच्चीस वर्ष बाद यह प्रवृत्ति पुरानी पड़ेगी, तब इसका नाम "नयी कविता" इक कितना भ्रामक होगा।[52] "नयी कविता का जन्म 1950-51 से ही माने जाने लगा था। कुछ विद्वानों ने "नयी कविता" पत्रिका के प्रकाशन काल 1954 से इसका जन्म माना है। तीसरा सप्तक सन् 1959 ई० में प्रकाशित हुआ।

अज्ञेय ने तीसरा सप्तक में अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए लिखा कि "प्रत्येक शब्द का प्रत्येक समर्थ उपभोक्ता उसे नया संस्कार देता है उसी के द्वारा पुराना शब्द नया होता है, यही उसका काव्य है। इसी कि प्रकार शब्द वैयक्तिक प्रयोग भी होता और प्रेषण का माध्यम भी बना रहता है। रूढ़ भी होता है बोध-गम्य भी, पुराना परिचित भी होता है और स्फूर्तिप्रद अप्रत्याशित भी। नये कवि की उपलब्धि और देन की कसौटी इसी आधार पर होनी चाहिए। जिन्होंने शब्द को कुछ नहीं दिया वे लीक पीटने वालों से कुछ अधिक नहीं भले ही वे जो लीक पीट रहे हैं अधिक पुरानी न हो। जिन्होंने उसे नया कुछ देने के आग्रह में पुराना बिल्कुल मिटा दिया है वे ऐसे देवता हैं जो भक्त को नया रूप दिखाने के लिए अन्तर्धान हो गये हैं।"[53] इस प्रकार अज्ञेय जी ने तीसरा सप्तक में "नयी कविता" के नाम की सार्थकता पर जोर दिया जिससे इसका नाम "नयी कविता" पड़ा। तीसरे सप्तक के प्रमुख कवि- प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजय देव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि हैं। इन सभी कवियों को नयी कविता के कवि माना गया है।

चौथा सप्तक:-

चौथा सप्तक के कवि अवधेश कुमार कुम्भज, स्वदेश भारती, नन्द किशोर आचार्य, सुमन राजे, श्रीराम वर्मा व राजेन्द्र किशोर आदि हैं।

इस सप्तक में आपातकाल के दौर की कविताओं को अधिक महत्व दिया गया है।" अज्ञेय जी कहते हैं कि "उस दौर के कवियों को भी नये चिन्तन से प्रेरणा मिली और उनकी काव्य रचना ने ली। राजनैतिक आन्दोलन को बल दिया।"[54] चौथा सप्तक के कवियों की कविताओं में एक विशेष गुण मिलता है वह है एक अच्छी कविता का गुण। उस समय इन कवियों ने आपातकालीन राजनैतिक स्थितियों के तीखे प्रहार भी सहन किये लेकिन अपने मार्ग पर अग्रसर रहे और कविताओं का लेखन करते रहे।

अज्ञेय जी ने नयी कविता के बारे में एक कथन में इस प्रकार कहा है कि यों नयी कविता का आरम्भ तो छायावाद के युग से ही हो गया था। उसके बीज तो प्रसाद की मुख्य वृत्तात्मक कविताओं में मिल जायेंगे। पंत और प्रसाद में जो चीज शुरू से थी वही बाद की कविताओं में उभर आई। यों तो नयेपन के कई लक्षण जो पड़ताल से उभर आयेंगे, पर साधारण बोलचाल की भाषा, मुहावरे और पद-विन्यास की ओर उसकी एक मुख्य प्रवृत्ति थी, साथ ही कविता के प्रति एक अवज्ञा भाव भी। माना कवि चाहता हो कि "कवि मनीषी स्वयंभू वाली बात ढकोसला हो। वाक् कोई शब्द नहीं कविता यानी छन्द निरा माध्यम ही तो है।[55]

सप्तकों और बाह्य सप्तकों के कवियों ने नयी कविता को सार्थकता प्रदान की। उन सभी ने यह भी स्वीकार किया कि "प्रयोगवाद" की काव्य धारा शब्दों में विकसित काव्य धारा ही नयी कविता का रूप है। प्रयोगवाद के परिप्रेक्ष्य में नयी कविता का आकार बढ़ा है। और उसका दृष्टिकोण भी उदारवादी है। "नयी कविता" में "-नई" शब्द" को लेकर शुरू संवेदना हुई। नयी शब्द स्त्री लिंग के रूप में प्रकट हुआ। नयी कविता से विकसित हुई अकविता, अस्वीकृत कविता और साठोत्तरी कविता। सप्तकों में जिन कवियों को स्थान नहीं दिया गया वे कवि अस्वीकृत कवि कहलाये। आज

का मनुष्य यौन कुण्ठाओं का आगार है इसकी अभिव्यक्ति का संयोग अकविता को माना है। सन् 1960 ई0 के बाद समाज में फैली राजनैतिक निराशा और वर्गभेद से उत्पन्न कवियों को साठोत्तरी कवि कहा गया। इस प्रकार "नयी कविता" का प्रचलन हो गया।

दूसरे सप्तक के कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने नयी कविता का जन्म सत्य और युग यथार्थ से माना है। "नयी कविता आज के लघुमानव के परिवेश की अभिव्यक्ति है क्योंकि नया कवि स्वयं एक मध्यवर्गीय परिवेश में जन्मा और पनपा है। अतः अब वह उस परिवेश से कटकर किसी काल्पनिक जीवन की अभिव्यक्ति नहीं करना चाहता। जिन्दगी की कड़ुवाहट या विषमताओं के बीच आज वह अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने का प्रयास कर रहा है। जीवन के सारे दायित्वों को ओढ़कर वह आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा है। इससे अभिप्राय: यह है कि आज कवि जो भी कर रहा है उसी की अभिव्यक्ति "नयी कविता" है।[56]

इन सभी विचारों पर विचार करने के बाद हमारी धारणायें इस प्रकार हैं--

(1) छायावादोत्तर समस्त कविता नई कविता है।

(2) छायावादोत्तर प्रयोगशील काव्यधारा कविता की मुख्य धारा है जो काव्यत्तर में चलकर नई कविता कहलाई।

(3) छायावादोत्तर काव्य धाराओं में एक काव्य धारा प्रयोगवाद की है जिससे नई कविता उद्भूत हुई।

(4) छायावादोत्तर समस्त काव्य का मुख्य रूप प्रगतिशील कविता है जिससे नयी कविता का जन्म हुआ।

(5) इसके तत्व निराला में 1936 के आस-पास उत्पन्न हुए और वही विद्रोही तत्व प्रयोगवाद से होते हुए नयी कविता तक पहुँचे।[57]

"नयी कविता" पत्रिका में नया सन्तुलन नामक एक महत्वपूर्ण निबंध लिखा जिसमें नये काव्य सम्बन्धी अपनी धारणायें इस प्रकार व्यक्त की।

§1§ कविता के लिए मैं लय को अनिवार्य मानता हूं। लय से ही संगीतात्मकता उत्पन्न होती है और छन्द की भी सृष्टि होती है। आज जब कविता इस अर्थ की लय को पकड़कर चलती है तो छन्द का स्थूल रूप पीछे छूट जाता है। जो उसके लयात्मक अर्थ पर ध्यान नहीं देते उन्हें यह गद्य में ही लिखी प्रतीत होने लगती है।"[58]

§2§ मैं कविता को मानवीय चेतना की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम रूप मानता हूं।[59]

§3§ सहज एवं प्रकृत व्यक्तित्व को परखना या उपलब्ध करना ही आधुनिक साहित्य का लक्ष्य है, उसकी लघुता का निरन्तर गुणगान नहीं।"[60]

नयी कविता कविता तो है ही नाम की आत्यंतिक चेतना भी है। साथ ही लय प्रधान भी है। जिसमें वैज्ञानिक परिवेश की नवीनता, ~~xxx~~ परिप्रेक्ष्य की विविधता तथा अभिव्यक्ति की नवीनता भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

नयी कविता की परिभाषा :-
====================

कुछ कवियों ने "नई कविता की परिभाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है।

§1§ अज्ञेय के अनुसार--"नई कविता सबसे पहले एक मन, स्थिति का प्रतिबिम्ब है एक नये मूड़ का एक नये राग सम्बन्ध का।"[61]

§2§ गिरिजा कुमार माथुर के अनुसार--"नयी कविता § से हमारा अर्थ उस कविता से है जो पुरानी धारा की प्रतिक्रिया स्वरूप काव्य क्षितिज पर उदित हुई। कविता में वस्तु और शैली की हम कोई वर्णाश्रम व्यवस्था मानने के पक्ष में नहीं हैं, शैली या विचार वस्तु से श्रेष्ठ तत्व, चाहे वह काव्य के किसी निकाय से आये हों हमारे लिए अछूत नहीं।"[62]

§3§ सुमित्रा नंदन पन्त के अनुसार--"नयी कविता नये युग की भाव भूमि की कविता है।"[63]

§4§ दिनकर के अनुसार--"नई कविता का प्रवर्तन पिछली शताब्दी में फ्रांस में हुआ था। अंग्रेजी में क्रमबद्ध रूप में यह आन्दोलन प्रथम विश्वयुद्ध के आसपास प्रारम्भ हुआ और भारतवर्ष में यह द्वितीय विश्वयुद्ध के आस-पास पहुंचा है।"[64]

§5§ इन्द्रनाथ मदान के अनुसार--"नयी कविता आधुनिकता की देन है और यह एक प्रक्रिया है।"[65]

§6§ मुक्ति बोध के अनुसार-"नई कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेत व्यक्ति की प्रतिक्रिया है। नई कविता का स्वर एक नहीं विविध हैं।"[66]

§7§ लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार--"नई कविता आज की मानव विशिष्ठता से उद्भूत उस लघु मानव, लघु परिवेश की अभिव्यक्ति है जो एक ओर आज की समस्त तिक्तता और विषमता को तो भोग ही रहा है, साथ ही उन समस्त तिक्ताओं के बीच अपने व्यक्तित्व को भी सुरक्षित रखना चाहता है।"[67]

§8§ कीर्ति चौधरी के अनुसार--" नई कविता पहले के विचारों को नये ढंग से कहना चाहती है। यह लयात्मक तथा मुक्त छन्द में होती है। समाज और व्यक्ति की जटिल समस्याओं का अंकन करती हुई प्रगतिशील अथवा सिद्धान्त प्रधान होती हुई भी अपने को भावनात्मक दिखाना चाहती है। उथकत सरीखी लगती है। कभी जटिल और कभी बिल्कुल सरल हो जाती है। नगर की पृष्ठभूमि में लिखी गई है पर गंवई गांव के शब्दों का उपयोग करती है। भग्नता अथवा विषाद व्यक्त करती है पर आस्था और निष्ठा का संदेश देती है।"[68]

§9§ धर्मवीर भारती के अनुसार -- "नई कविता प्रथम बार समस्त जीवन को व्यक्ति या समाज, इस प्रकार के तंग विभाजनों के आधार मानकर मूल्यों की सापेक्ष स्थिति में व्यक्ति और समाज दोनों को मापने का प्रयास कर रही है। यदि हम उन गहन आन्तरिक मूल्यों को समझने के चेष्टा नहीं करते तो हम नई कविता की प्रकृति को समझने में भूल कर सकते हैं।" 69

§10§ डा० जगदीश गुप्त के अनुसार--"नयी कविता प्रगतिवादी यथार्थ के आघात से उत्पन्न छायावाद के स्वप्न भंग के बाद की कविता है, जिसमें व्यक्त भावनाएं कुहासे के बीच पनपने वाले तन्द्रालस से युक्त न होकर दिन की तेज रोशनी के बीच विषमताओं से घिरे जागृत मनुष्य की भावनाएं हैं।" 70

"भावना को नया स्तर प्रदान करते हुए नयी कविता का लक्ष्य आधुनिक चेतना एवं संवेदना से सम्पन्न व्यक्तित्व की प्र तिष्ठा करना है।" 71

"नयी कविता अन्तर्बाह्य दोनों प्रकार के मानव जीवन की अन्धी गलियों में प्रवेश करके उसेके उपेक्षित से उपेक्षित पक्ष को भी सहानुभूति प्रदान करने के लिए तत्पर है।" 72

§11§ डा० विद्यानिवास मिश्र के अनुसार--"नयी कविता की पहली विशेषता है जीवन के आस्वादन में विश्वास।...नयी कविता का दूसरा लक्ष्य है पार्थिव जगत को समग्रता का ग्रहण। नयी कविता की तीसरी विशेषता अपनी भाव प्रश्नाकुलता। नई कविता की चौथी विशेषता अपनी भाव संकुलता के अनुरूप लय तथा भाषा का अन्वेषण है।" 73

§12§ डा० देवराज सिंह के अनुसार--"बहुत दिनों तक एक मार्ग या लोक में चलते - चलते पुरानी कविता रूढ़िग्रस्त एवं अरोचक हो जाती है इसलिए

काव्य भाषा को जनभाषा के निकट लाने के लिए अथवा काव्य निबद्ध अनुभूति को जन-जीवन के सम्पर्क में लाने के लिए बदले हुए जीवन की नई सम्भावनाओं के उद्घाटन के लिए अथवा नये मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए नये काव्यान्दोलन सामने आते हैं। इस प्रकार काव्य में जीवन की नयी सम्भावनाओं की अभिव्यक्ति ही नवीनता की जननी है। इस मत को जगदीश गुप्त के एक निबन्ध नयी कविता: नया सन्तुलन में स्पष्ट किया है। डा० गुप्त ने पं० पद्मसिंह शर्मा के एक कथन को इस प्रकार दोहराया है "यह परिवर्तन और क्रान्ति का युग है। सब विषय में नित्य नये परिवर्तन हो रहे हैं, कविता में क्रान्ति हो रही है और बड़े वेग से हो रही है। हिन्दी कविता का तो एकदम काया-कल्प हो रहा है।"[74]

इस प्रकार नयी कविता की इन परिभाषाओं को विद्वानों ने स्पष्ट किया है। पहली परिभाषा अज्ञेय के शब्दों में मन स्थिति का प्रतिबिम्ब, दूसरी पुरानी धारा की प्रतिक्रिया तीसरी नये युग की नई भावभूमि, चौथी फ्रान्स और इंगलैण्ड के काव्य से प्राप्त प्रेरणा, पांचवी आधुनिकता की देन, छठी आत्मचेत, व्यक्तिकी प्रतिक्रिया, सातवी, लघुमानव और लघु परिवेश की अभिव्यक्ति, आठवी समाज और व्यक्ति की जटिल समस्याओं का अंकन, नवी व्यक्ति और समाज दोनों को मानने के प्रयास, दसवीं विषमताओं से घिरे जागृत मनुष्य की भावनाओं, ग्यारहवीं जीवन और जगत की भाव संकुलताओं के अनुरूप लय तथा भाषा के अन्वेषण पर बल देती है और बारहवीं नयी सम्भावनाओं की अभिव्यक्ति को दर्शाती है।

यदि हम इन परिभाषाओं को लेकर चलें तो प्रयोगवाद से लेकर नई कविता तक की कविता धारा की सभी भाव और शैली शिल्पगत विशेषताएं इनमें आ जाती हैं। वैयक्तिक यथार्थ और सामाजिक दोनों

ही उभर कर सामने आ जाती हैं। प्रयोगवाद में पहले की प्रधानता थी जबकि नई कविता में दूसरे की प्रधानता रही । इस प्रकार "सहज मानव एवं सहज परिवेश तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक यथार्थ जन्य संकुलताओं की तदनुरूप समर्थ शिल्पमय अकुण्ठ अभिव्यक्ति जो, कवि की अनुभूति के पटल से छनकर आई हो प्रयोगवादी नई कविता है।" 75

नयी कविता के स्वरूप विश्लेषणकरते हुए तार सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने कहा है कि --प्रयोग सभी कालों में कवियों ने किये हैं यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। नयी कविता के "आमुख" में सुमित्रानन्दन पन्त ने "नयी कविता" के नाम की सार्थकता और आवश्यकता के बारे में लिखा कि "इस भूकम्प और इन विस्फोटों के परिणाम स्वरूप जो नई काव्य धारा फूट चली है वही आज के युग की वास्तविक नई कविता है। यह किसी एक देश, एक समाज साहित्य एवं संस्कृति की नहीं, समस्त मानवता की जीवन भूमि में बह निकली है। सभी साहित्य को प्लावित करती है। हिन्दी में हम उसे देखते हैं और अन्य भाषाओं के साहित्य में भी। यह इस युग की देन है, अतएव यह सच्चे अर्थ में नयी कविता है।" 76

आजकल पत्रिका में बालकृष्णराव ने अपने एक लेख में नयी कविता क्या है? में लिखा कि "नयी कविता अनास्था और अनिश्चय की कुंठा और कटुता की कविता नहीं है, वह आज के युग की कविता है। यह "प्रगतिवाद और प्रयोगवाद" का सुन्दर संश्लेषण रूप है।" 77 इस प्रकार नयी कविता का स्वरूप विश्लेषण किया गया है और "नयी कविता" के नाम को सार्थकता प्रदान की गयी है। वास्तव में प्रयोगवाद को वैयक्तिक यथार्थ की संज्ञा प्रदान की गई है और नयी कविता को सामाजिक यथार्थ की है।

नयी कविता के प्रमुख कवियों में अज्ञेय, मुक्ति बोध, भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, शमशेर, नरेश मेहता रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बालकृष्णराव, विजयदेव, नारायण शाही, कुंवरनारायण, लक्ष्मीकान्त वर्मा

जगदीश गुप्त, विपिन अग्रवाल, अनन्तकुमार पाषाण, धर्मवीर भारती, अजित कुमार, कीर्ति चौधरी, मनुज, श्री कान्त वर्मा आदि की गणना की जा सकती है।

नयी कविता की प्रवृत्तियां :-

प्रयोगवाद की तरह ही "नयी कविता" की भी कुछ प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं।

§1§ आधुनिक भाव बोध
§2§ क्षणानुभूतियों की अभिव्यक्ति और अस्तित्ववाद
§3§ सौन्दर्य एवं यौन भावना
§4§ पीड़ा बोध
§5§ अतिनग्न यथार्थवाद
§6§ विद्रोही भावना
§7§ विद्रूपमयी व्यंग्यात्मकता
§8§ व्यापक विषय विस्तार
§9§ नवीनता का आग्रह
§10§ टूटन और यंत्रणा
§11§ व्यक्तिवादी चेतना
§12§ सांस्कृतिक चेतना
§13§ अभिव्यंजना शिल्प

1- आधुनिक भाव-बोध :-

आधुनिकता अनिवार्यतः बौद्धिक होती है जो सहज ज्ञान और संवेदनाओं को भी बौद्धिक स्तर पर स्वीकार करती है। आधुनिक दृष्टि भी आधुनिकता के बिना विचारहीन है। आधुनिकता मानव चेतना की एक सम्पूर्ण दृष्टि है जो

प्रत्येक मनुष्य को समकालीन यथार्थ बोध से अवगत करके उसे दायित्वपूर्ण सक्रियता और सर्जनात्मकता प्रदान करती है। नयी कविता जिस आधुनिकता पर विश्वास करती है वह मुक्त यथार्थ से सीधे साक्षात्कार पर आधारित है। यह साक्षात्कार अपनी जागरूकता से सम्पन्न है और मानवीयता से इसका सीधा सम्बन्ध है। नयी कविता अपने परिवेश से सीधा सम्बन्ध रखती है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में यथार्थ की स्वीकृति के साथ-साथ यथार्थ प्रेरित अस्तित्व के प्रति जागरूकता है। ये कवि मानवतावाद से किसी न किसी रूप में अवश्य ही सम्बन्ध रखते हैं। आधुनिकता के आग्रह के कारण "नयी कविता" में युग जीवन की कुण्ठा ,विघटन, नग्नता और खोखलापन दिखाई देता है। रघुवीर सहाय की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं:-

सच क्या है ?
बीते समय का सच क्या है ?
क्रूरता जो कुचल कर उस दिन की गई
वही सच है उसे याद रख, लिख अरे लेखक
दस बरस बाद बचे लोग समझते होंगे
युग नया आ गया
तब हुकुम होगा कि दस बरस पहले का वह दमन
वास्तविक यथार्थ में क्यों हुआ था समझ !
क्यों गला बच्चे का घोंटा गया था
यह उसकी घुटन से अधिक अर्थवान है!
यह बता ![78]

इस प्रकार नयी कविता में नये युग के विघटन, कुण्ठा आदि का वर्णन किया गया है।

2- क्षणानुभूतियों की अभिव्यक्ति और अस्तित्ववाद :-

नयी कविता में क्षणों की अनुभूति को बहुत महत्व दिया गया है। क्षणवाद प्रत्येक क्षण में कौंधने वाले भावों को व्यक्त करता है। इसके बाद बिम्बों के माध्यम से उन्हें व्यक्त करता है। इस प्रकार क्षणवाद में नया कवि क्षण की समस्त अनुभूतियों, संवेदनाओं, विचारों और भावों को अभिव्यक्त करता है। वैज्ञानिक आधार पर नये कवि ने क्षण को लघु होकर भी विराट रूप प्रदान किया है। जिससे यथार्थ को गति प्राप्त होती है।

क्षण भी कवि ने दो प्रकार के माने हैं:-

स्थूल और सूक्ष्म ।

सूक्ष्म क्षण में कवि सत्य से साक्षात्कार कराता है और क्षणानुभूतियों को व्यक्त करता है। यह क्षण मुक्ति का क्षण हो सकता है। सत्य भी दो प्रकार के कवियों नेx बताये हैं व्यक्ति सत्य, और समष्टि सत्य। सूक्ष्म क्षण में समष्टि सत्य की अभिव्यंजना होती है। रघुवीर×सहाय जबकि स्थूल क्षण में असत्य, भौतिक, आसक्ति युक्त कालखण्ड की अभिव्यक्ति होती है। रघुवीर सहाय की एक कविता "आमार सोनार दिल्ली" में क्षण के महत्व को दर्शाया है—

जो लड़की वह खड़ी है कमजोर
सांस लेती भारी बस्ता लिये
काने पांवों ठिठक कर
क्या तुम उसके सिर पर लदी
उसके मां बाप की तरसती
जिन्दगी देख सकते हो
एक क्षण में ?[79]

यहां पर कवि ने लडकी के माध्यम से क्षणवाद का वर्णन किया है।

"अस्तित्ववाद" का आरम्भ इस अनुभूति से होता है कि जब व्यक्ति अपने अहम् में डूब जाता है इसके बाद उसकी आत्ममग्नता की स्थिति से वह क्षण भर के लिए सचेत होकर जीवन के बारे में विचार विनिमय करता है उसी क्षण अस्तित्ववाद का विकास होता है। व्यक्ति की आत्मचेतनात्मक स्वतंत्रता अस्तित्वाद की नींव का एक पत्थर माना गया है। इसी प्रकार इस विचारधारा का अनुसरण करते हुए कवि को क्षण बोध और अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति करने की ओर अग्रसर किया है।

अस्तित्ववाद के बारे में डा० श्यामसुन्दर मिश्र का एक कथन इस प्रकार है--"अस्तित्ववाद अधुनातम जीवन के विभिन्न विरोधों सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियों की यांत्रिकता के बीच आबद्ध व्यक्ति इकाई की आकुल चिन्ता का वैज्ञानिक और समीचीन विश्लेषण है।[80]

3- <u>सौन्दर्य एवं यौन भावना:-</u>

नई कविता में नवीन सौन्दर्य बोध को विशेष स्थान दिया गया है और यौन-भावना को भी मुख्य रूप से सम्मान दिया गया है। सौन्दर्य बोध की नवीनता को युग के साथ-साथ ढाला गया है। आधुनिक युग की जटिलताओं, संवेदनाओं और यथार्थ ने इस सौन्दर्य बोध को जन्म दिया है। आज के युग में जीवन सर्वथा अव्यवस्थित है। राजनैतिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक उलझनों ने मिलकर बहुत सी गुत्थियों को सामने ला खड़ा किया है।

डा० नगेन्द्र के अनुसार--"राजनीति में हिंसा, अहिंसा, प्रजातंत्रवाद साम्यवाद, सर्वाधिकारवाद का और अर्थनीति में पूंजीवाद और समाजवाद का, दर्शन के क्षेत्र में आदर्शवाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का और मनो-

विज्ञान में चेतन और अवचेतन आदि का ऐसा कुहराम मचा हुआ है कि आज के मानव की चेतना एकात्र धूमिल और तमसाच्छन्न हो गई है। ऐसी अवस्था में किसी स्थिर रोमानी सौन्दर्य बोध को ग्रहण कर लेना असम्भव है।-81 नयी कविता के सौन्दर्यबो में, यथार्थता, ऐन्द्रिकता, स्थूलता और अनगढ़ता, भदेसपन, लौकिकता के साथ-साथ ऐ सौन्दर्य बौद्धिकता भी सामने आती है। भज कविता में रघुवीर सहाय ने सौन्दर्य का वर्णन किया है।

कितनी सचमुच है यह स्त्री
कि एक बार इसके सारे बदन का एक व्यक्ति बन गया है
उसके बाल अब घने काले नहीं
दुख उसके केसों का नहीं
वह उदास नहीं डरी हुई अधेड़ है औरत है
सुन्दर है।-82

नई कविता में यौन भावना की दृष्टि से कवि मुक्त और स्वच्छन्द प्रेम को अधिक महत्व प्रदान करता है। नयी कविता का कवि यौन भावना पर अधिक बंधनों को स्वीकार नहीं करता, क्योंकि इससे मनुष्य के मन में अनेक कुण्ठाओं का जन्म हो जाता है। जो साहित्यिक क्षेत्र में बहुत ही कुप्रभाव डालती है।

अज्ञेय के अनुसार पुरूष स्त्री का सम्बन्ध पति-पत्नी का सम्बन्ध न होकर एक गतिशील सम्बन्ध है। पुरूष और स्त्री की परस्पर अवस्थिति एक कर्षण की स्थिति है । जिसमें कोई बाह्य गति एवं प्रेरणा नहीं है, किन्तु किसी न किसी प्रकार आन्तरिक खिंचाव अनिवार्य है। नाटकीय भाषा में हम उसे पुरूष और स्त्री का चिरन्तन कह सकते हैं।-83 रघुवीर सहाय ने

भी सीढ़ियों पर धूप में, अपनी एक कविता "गले हमारे डाल सखी" में यौन भावना का इस प्रकार वर्णन किया है।

"बाहें" ये गले हमारे डाल, सखी
मेरे कन्धों पर आ जायें ये बिखरे बाल, सखी
ओठों पर ओंठ दहकते हों
आंखों पर आंखें मुंद जाये
भुजबंधन कसता जाये-
यह आतुर तन उस तन में धसता जाये
थक जाये
थक जायें तेरे कुच मेरे सीने पर धकधक कर के
फड़के
फिर रह जाये गुम्फित जंघाएं
हो जायें वह क्षण जीवन मरण विशाल सखी।[84]

इस प्रकार उन्होंने यौन भावना का वर्णन किया है।

4- पीड़ा बोध :-

नयी कविता में भी प्रयोगवाद की तरह पीडा बोध का खुलकर प्रयोग किया है। इसमें कुण्ठा, विघटन, और मृत्यु के स्वरों को अधिक प्रधानता दी गई है। रघुवीर सहाय में असहायता, गरीबी, भुखमरी, मृत्यु आदि का पीड़ा बोध है। उन्होंने राजनैतिक उत्पीड़न, भारतीय इतिहास और संस्कृति पर लगाया गया प्रतिबंध, असाध्य बीमारी आदि ऐसी वैयक्तिक कठिनाईयां थी जिसका सामना इन्होंने किया। यहां पर कवि ने गरीबी व निराशा के बारे में कुछ पंक्तियां इस प्रकार लिखीं हैं।

हम सब जानते हैं गरीब क्या चीज होती है
हम सब गरीबी को बिसरा चुके थे
हममें से एक ने कहा रोज कम खाना मेरे दो
बच्चों को तोड़ता
मरोड़ता कुतरता है रोज-रोज कुछ समझे ?[85]

इस प्रकार यहां पर कवि ने देश में भुखमरी और गरीबी के कारण लोगों को जान से हाथ धोना पड़ रहा है।

5– अतिनग्न यथार्थवाद :-

नई कविता में ऐसी कवितायें भी मिल जाती हैं जो बीटल और हिप्पीवादी भूख को प्रकट करती हैं। इन्द्रियों के सुखवाद के साथ-साथ कृत्रिम यौन उत्तेजना और कुत्सित कामोद्दीपन को लेकर लिखी गई कवितायें गन्द, मानसिक व्याभिचार, तथा घृणा को जन्म देती हैं। अन्त में चलकर ऐसी कविताओं का अन्त हो गया। "यूरोप में फिल्म घर में" रघुवीर सहाय की एक कविता इस प्रकार है--

पास बैठी औरत मैं छू नहीं सकता
परदे पर फूहड़ देख उसकी सिसकारी सुन पाता हूं
अपने मुंशी पति पर गुस्सा छिपाने में
एक अधेड़ बीबी जांघ ठोककर हंसती है
बदला ले रही है वह कल की छोकरी
नोचकर छोकरे की नंगी पीठ और
उसे ऊपर आने से रोके भी हुए है।[86]

6– विद्रोही भावना:-

नई कविता में विद्रोह का स्वर भी सुनाई पडता है। विद्रोही भावना में कवि ने देश की राजनैतिक आर्थिक, सांस्कृतिक सभी स्थितियों को उजागर

किया है। इस कविता में संसद, संविधान, हड़ताल, कर्फ्यू, चुनाव, पथराव जुलूस आदि बिम्बों द्वारा अंकित किया है। रघुवीर सहाय की कविता "भीड़ में मैकू और मैं" में एक उदाहरण इस प्रकार है --

चार बुद्धिजीवी घास पर बैठे हुई क्रान्तिवार्ता
हर कोई अपने को विद्रोह न करने के लिए फटकारता.[87]

बीस साल
धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोलाभाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्यवाही करेंगे
हाय हाय करता हुआ हां-हां करता हुआ हैं-हैं करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा
जितना बड़ा दल होगा उतना ही खायेगा देश को।[88]

इस देश में भ्रष्टाचार और नेताओं की बेईमानी से विद्रोही भावना जन्म लेती है।

7- <u>विद्रूपमयी व्यंग्यात्मकता :-</u>

नई कविता में विद्रूपमयी व्यंग्यात्मकता को भी स्थान दिया गया है। यह व्यंग्यपरकता, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक, धार्मिक क्षेत्रों में उपस्थिति विडम्बनाओं के प्रति व्यक्त हुई है। सच्चा कवि इन विडम्बनाओं को नकार भी नहीं सकता। नये कवियों ने व्यंग्य के द्वारा जीवन प्रत्येक विषमताओं पर भी प्रहार किये हैं। ये प्रहार मनुष्य की मानसिक और भावनात्मक स्थितियों में हलचल पैदा करके उनमें परिवर्तन लाने की प्रेरणा देते हैं। यहां पर समाज पर संस्कृति मंत्री का सीधा प्रहार है।

यह समाज मर रहा है इसका मरना पहचानों मंत्री
देश ही सब कुछ है धरती का क्षेत्रफल सब कुछ है
सिकुड़ कर सिंहासन भर रह जाये तो भी वह सब कुछ है
राजा ने मन में कहा जो राजा प्रजा की दुर्बलता नहीं पहचानता
वह अपने देश को नहीं बचा सकता प्रजा के हाथों से
यह समाज मर रहा है: नकल अपनी ही करता जा रहा है।[89]

यहां पर मंत्री पर समाज के प्रति आरोप है कि वह समाज को अवनति के रास्ते से नहीं बचा सकता। यहां पर यह सीधा व्यंग्य है।

8- <u>व्यापक विषय विस्तार :-</u>

नयी कविता की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें जीवन और जगत के बहुत ही व्यापक क्षेत्र से वर्ण्य विषयों को लिया गया है। छायावादी युग में कवि राजा-रानी, युवराज, युवरानी व श्रीमंतो-महापण्डितों, तथा सुन्दरता आदि पर ही कविता किया करते थे। परन्तु नई कविता में जीवन का छोटे-से छोटा पक्ष, जगत का साधारण से साधारण विषय और सामान्य से सामान्य मानव उतर कर आ गया है। नई कविता में कवि छोटे-छोटे से विषय पर भी अपनी कविता लिख डालता है। विषय विस्तार के बारे में मदन वात्सयायन जी का एक कथन इस प्रकार है --"उषा देवता से लेकर गधे तक, नग्न यौन भावना से लेकर सामाजिक क्रान्ति तक, देहाती अमराई से लेकर कल-पुर्जों तक, अवचेतन से लेकर स्थूल के अनुत्तोजक चित्रण तक इतना व्यापक विस्तार शायद पहले किसी "वाद" की कविता का नहीं हुआ।"[90]

रघुवीर सहाय जी की एक कविता "आप की खुदाई" इस प्रकार है जो व्यापक विषय विस्तार का एक स्पष्ट उदाहरण है--

आप की खुदाई में
लाल असल से चटक
घास निहायत हरी
और सूखती नहीं
रंगीन टी० वी० पर
दुनिया दिखाते हैं
मिट्टी सुनहली
और पानी रूपहला है
मगर रामसूरत की
भौंजक चुंधी निगाह
वैसी की वैसी है
आधुनिक निर्देशक तब
हरे लाल अचरज के
साथ रामसूरत को
लाते हैं दृश्य में
फिल्म जब निकलती है
वह पाया जाता है
कैमरा निहारता।[9]

9- <u>नवीनता का आग्रह :-</u>

नई कविता में नवीनता के प्रति आग्रह भी देखने को मिलता है। नई कविता को उसी स्थिति में नई कविता कहा जा सकता था जिसमें कि छायावादी रोमान्यित बिल्कुल न हो, ललित कलाओं से जिसका सम्बन्ध न हो, काव्यात्मक राजनीति न हो और भाषा की इतिवृत्तात्मकता से परे हो और परम्पराओं की रचना न हो।

नई कविता में "नवीनता" को तीन मुख्य रूपों में पाया गया। आकार गत रूप विन्यास, छंद बंधनों का त्याग, लय का दुराग्रह, अलंकार, उक्ति वैचित्र्य, उपमान विधान की पुरानी परम्पराओं का तिरस्कार, तथा उसी के साथ ही नवीन प्रतीक, नवीन बिम्ब, नवीन उपमान और इन सबकी अभिव्यंजना के लिए नई भाषा। नवीनता का दूसरा रूप अपने युग की मानसिक संवेदनाओं युग सम्पृक्त मनोभावों तात्कालिक परिस्थितियों, वैज्ञानिक बोध के कारण विघटित मनोविकारों, की यथार्थ परक अभिव्यक्ति और नवीनता का तीसरा रूप बना कि रस और साधारणीकरण की पुरानी प्रणालियों की निरर्थकता और उसके साथ ही ग्रहीता की शब्द में अधिक या कम अर्थ पाने की विवशता। नई कविता में कवियों ने नवीन छन्दों और नवीन भाषा शैली का प्रयोग किया। उन्होंने अपने अपने ढंग से नई कवितायें लिखी।

कीर्ति चौधरी ने कहा कि --नयी कविता हमेशा नये विषय पर ही लिखी जाती है या पहले प्राचीन विषयों को नये ढंग से कहना चाहती है। नयी कविता नया उपमान विधान, नया श्रृंगार रस, नये वीर रस, और नये शान्त रसों का वर्णन किया गया है। कवि ने नये-नये विषयों पर कवितायें लिखीं। जैसे गद्य, साथी, मरघट, कैंसर, बहस, कस्बे में दिन ढले, रचता वृक्ष, शहर से बाहर, एक लड़की, तेरे कंधे, टोपीवाला बाजा, पत्तों का धुआ, आदि रघुवीर सहाय की कवितायें हैं।

रघुवीर सहाय की एक कविता कैंसर का एक उदाहरण इस प्रकार है।

> कैंसर से बहुत दिन बचे रह लेने का एक उपाय है
> कि पता मत लगने दो कि तुम्हें कैंसर है, दूसरो को
> और खुद को भी, खुद को ज्यादा जरूरी है।
> मगर जिन्हें डाक्टर बता देता है उन्हें यह भी बताता है

कि रोगी से मत कहो, रोगी की राजनीति यह है कि वह
समाज में आरक्षित है, मित्रों की राजनीति यह है कि
मरता है उसे मारने में विजय है।[92]

10- टूटन और यंत्रणा :-

नई कविता में दिशाहीन मानव की अर्थहीन जिन्दगी में पूंजीवादी अर्थ तंत्र के दबाव के फलस्वरूप उभरती हुई टूटन और यंत्रणा का लगातार चित्रण हुआ है। जैसे :-

कितना दुख वह शरीर ज़ज़्ब कर सकता है ?
वह शरीर जिसके भीतर ख़ुद शरीर की टूटन हो
मन की कितनी कचोट कुण्ठा के अर्थ समझ
उनके द्वारा अमीर होता जा सकता है ?[93]

कवि टूटन और यंत्रणा के क्षेत्र से गुजर कर आत्मपीड़ा तक पहुंच जाता है। रघुवीर सहाय की एक कविता "दर्द" का एक उदाहरण इस प्रकार है :-

देखो शाम घर जाते बाप के कंधे पर
बच्चे को अब देखो
उसको तुम्हारी अंग्रेजी कह नहीं सकती
और मेरी हिन्दी
कह नहीं पायेगी
अगले साल ।[94]

11- व्यक्तिवादी चेतना :-

"नई कविता" में व्यक्तिवादी चेतना को महत्व प्रदान किया गया है। नई कविता के कवियों की मतवैभिन्नता और वैयक्तिकता का मूल कारण है-

परम्पराओं से विच्छेद तथा पाश्चात्य आन्दोलनों का अनुकरण और उनका गृहीत प्रभाव और अहं। इस व्यक्तिवाद का दूसरा पहलू अस्तित्ववाद को माना गया है। व्यक्तिवाद और अस्तित्ववाद जैसे कारण और कार्य है। महायुद्धों के बाद व्यक्तियों के मन में कुंठा, निराशा, व घुटन का स्वर घर कर गया । जिससे मृत्यु की भयावह स्थिति का उन्हें सामना करना पड़ा। इसी के कारण मनुष्य ने अपने बचाव के लिए और भाषा के बचाव के लिए वैयक्तिकता को अपनाया।

साहित्यकारिता का अहम् भी कवियों को बहुत अंशों में व्यक्तिवादी बनाता है। इसकी चेतना "व्यक्ति सत्य" को व्यापक सत्य बनाने में लगने लगी। इसके बाद यह निष्कर्ष निकला कि जीवन और मृत्यु किसी पुस्तक की भूमिका और उपसंहार दो ऐसे परिच्छेद हैं तथा मौत अनिश्चितकालीन भय की सूचक । इसलिए इस भय से छुटकारा पाने के लिए जीवन को एक अर्थ देना स्वाभाविक हो गया।

मृत्यु के लिए "भय" करना स्वाभाविक ही है। कवि रघुवीर सहाय ने अपनी एक कविता "लोकतंत्रीय मृत्यु" में इस प्रकार --

दिल्ली के बसन्त का वह एक विशेष दिन था
गरमी थी और हवा थी जो धूप को उड़ाये लिये जाती है।
मौलसिरी के बड़े से पेड़ तले छांह का छितरा हुआ घेरा था
सामने लहराते एक हजार फूलों के रंग से डरकर
सिमटे हुए लोग उसमें बैठे थे
मृत्यु की खबर की प्रतीक्षा में।[95]

12- <u>सांस्कृतिक चेतना</u> :-

सांस्कृतिक विरासत की तरह हैं जो उत्तराधिकार में देश से, समाज से प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होती है। इसके आलम्बन धर्म और दर्शन को माना

है। संस्कृति ही देश की परम्पराओं रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, धार्मिक कर्मकाण्ड को जीवंतता प्रदान करती है। "नई कविता" में संस्कृति उस समय की है जब देश परतंत्रता की कारराओं से अपने को मुक्त कराने के लिए प्रयास कर रहा था। उस समय व्यक्ति आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता, धर्म के स्थान पर विज्ञान, समाज कल्याण के आधार पर व्यक्ति कल्याण और रीतिरिवाज तिथि त्यौहार पर्व के स्थान पर यांत्रिक सभ्यता का क्रीत दास बनकर प्रकट हो रहा था।

नयी कविता का समय संस्कृति के ह्रास मूल्यों का काल है। संस्कृति की टूटी विरासत नयी कविता में अंधायुग, कनुप्रिया, संशय की रात, आत्मजयी आदि में देखने को मिलती है। रघुवीर सहाय जी की एक कविता "हत्या की संस्कृति" इस प्रकार है।

> अंग्रेजी पढ़ा लिखा हत्यारा कहता है
> "मुझे कहीं छिपना है, पुलिस पीछे पड़ी है"
> आधुनिक प्रेमिका कहती है "सुन अरे लाओ, पट्टी कर दूं"
> और से कहता है अभिजात अपराधी धन्यवाद।"[96]

13- अभिव्यंजना शिल्प :-

नयी कविता की एक महत्वपूर्ण समस्या अपने बदलते हुए युग बोध के अनुरूप भाषा, शिल्प और काव्य रूप खोजने का रहा है। अनुभूतियों की अप्रतिमता और विशिष्ठता तथा नये भाव बोध के अनुरूप उन्हें काव्य भाषा, बिम्ब, प्रतीक एवं उपमानों को अन्वेषित किया है।

§1§ काव्य रूप :-

काव्य रूप की दृष्टि से नयी कविता के दौर में कुछ कवियों ने पौराणिक मिथकों को लेकर कवितायें लिखी उसमें कुंवर नारायण की आत्मजयी, धर्मवीर भारती की कनुप्रिया और अन्धा युग आदि। मुक्तिबोध की

"अंधेरे में" "चांद का मुह टेढा" आदि काव्य के रूप देखने को मिलते हैं। लेकिन रघुवीर सहाय की कविताओं में छोटा पन भी देखने को मिलता है। जबकि अज्ञेय की असाध्यवीणा, मुक्तिबोध की "अंधेरे में" आदि कवितायें काफी लम्बी हैं।

उपमान-विधान :-

नयी कविता का उपमान विधान सर्वथा मौलिक और नया है। पारम्परि उपमानों को छोड़कर के छायावादी प्रतीकों और उपमानों से इस कविता में पल्ला छुड़ाने का बहुत प्रयास किया है। नयी कविता को ताजे, टटके और अधुनातन उपमानों के प्रयोग पर अधिक बल दिया है। जैसे रघुवीर सहाय की कुछ पंक्तियां इस प्रकार से हैं---

"सिनेमा की रीलों सा
कस के लिपटा है
सभी कुछ मेरे अन्दर" [97]

प्रकृति विधायक उपमान :-

नयी कविता में समसामयिक यथार्थ और आधुनिक बोध से मुक्त होकर ही प्रकृति की आत्मीय दृष्टि को देखा जा सकता है। कवि ने वृक्षों, पत्तों आदि से लेकर धूप और हवा का भी वर्णन किया है। रघुवीर सहाय की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं।

धूप से सीधी सड़क के किनारे
थमा हुआ झरती पंक्तियों वाला बड़ा वृक्ष
नीचे
सूखे पत्तों के ढेर से उठता धुआं
हवा ने उसे हां-ना कर बिखेर दिया। [98]

इस प्रकार कवि ने प्रकृति विषयक उपमानों को भी नयी कविता में स्थान दिया है।

सौन्दर्य विषयक उपमान :-

नयी कविता के रोमान्टिक कवियों ने राग को काव्य से सम्बद्ध कर दिया है। नारी सौन्दर्य बोध पर अनेकों कविताएं लिखी हैं। नारी सौन्दर्य विषयक रचनाओं की मूल भावना शारीरिक आकर्षण के सिवाय और कुछ नहीं। रघुवीर सहाय की एक कविता लुभाना में एक और को इस प्रकार प्रदर्शित किया है--

तू सुन्दर है
इसलिए नहीं कि डरी हुई है
तू अपने मे सुन्दर है।[98]

बड़ी किसी को लुभा रही थी
चालिस के उपर की औरत
घड़ी-घड़ी खिलखिला रही थी
चालिस के उपर औरत
खड़ी अगर होती वह थककर
चालिस के उपर की औरत
ऐसे दया जगाती थी वह
चालिस के उपर की औरत
वैसे काम जगाती शायद
चालिस के उपर की औरत।[99]

उपमानों के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग हुए हैं उनमें कुछ अनूठे और प्रभावोत्पादक भी हैं। उपमानों के प्रयोगों का क्षेत्र व्यापक है। पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर भी बहुत से कवियों ने रचनायें की हैं। उपमानों में जीवन

की भयावह स्थिति और संवेदनाओं की तिक्तताओं को भी व्यंजित किया है।

बिम्ब विधान :-

बिम्ब विधान का सम्बन्ध सौन्दर्यानुसंधायिनी प्रवृत्ति से है। इसमें कल्पनाओं, स्मृतिजन्य एवं अनुभूतियों, संवेदनाओं और कभी-कभी अमूर्त भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। नयी कविता में शब्द, गंध, रस, स्पर्श आदि के सजीव रोचक तथा नवीन बिम्ब दर्शाये गये हैं।

कस्बे में दिन ढले
युवती के चेहरे पर
लालटेन की आभा
अब और कोहरे में
खोया हुआ आंगन
करती है पार उसे रोशनी लिए युवती।[100]

नयी कविता में अज्ञेय, कुंवरनारायण, ठाकुर प्रसाद सिंह, आरसी प्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती आदि ने बिम्ब-विधान में कोमल भावों को भर दिया है।

प्रतीक विधान :-

नयी कविता में प्रतीक विधान भावों की गहनतम अभिव्यक्ति के माध्यम बनकर सामने प्रकट हुए हैं जिनके द्वारा अमूर्त, अदृश्य, अश्राव्य और अप्रस्तुत विषय का प्रति विधान, मूर्त दृश्य, श्रव्य और प्रस्तुत के रूप में किया गया है। प्रतीक विधान में अज्ञेय जी सिद्धहस्त हैं। उनका बावरा, अहेरी, सूर्य का प्रतीक है--

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल लाल कनियां
पर जब खींचता है जाल को।[101]

छन्द विधान :-

नयी कविता में बहुप्रचलित मुक्त छन्द में प्रवाह की तारतम्यता, आसमान स्वच्छन्द गति, भावानुकूल यति, चरणों की अनियमितता और तुक की गौणता का विशेष ध्यान रखा है। इस कविता में (नयी कविता) मुक्त छंद से लेकर दीर्घ पंक्ति वाले मुक्त छन्द दिये गये हैं।

लय का भी नयी कविता में विशिष्ट स्थान होता है। जो बिखरे हुए तत्वों को एकत्रित करने का कार्य बड़ी सावधानी से करती है। नयी कविता में लययुक्त मुक्त छन्द भी हैं तथा लयहीन मुक्त छन्द भी। अधिकतर नयी कविता मुक्त छन्दों में लिखी गयी हैं। लयहीन मुक्त छन्दों में कहीं तुक होती हैत कहीं-कहीं नहीं। छोटी-छोटी पंक्तियों में वाक्य विन्यास गद्यवत होता है। नयी कविता में गद्य की लय, दूसरे शब्दों में अर्थ की लय को स्थान प्राप्त है। नयी कविता उर्दू और फारसी के छन्दों से भी काफी प्रभावित जान पड़ती है।

भाषा तथा शैली :-

भाषा की दृष्टि से नयी कविता एक ओर जन भाषा के निकट रही है और दूसरी ओर क्लिष्ठ भाषा के निकट। भवानी प्रसाद मिश्र सरल और प्रवाह मयी भाषा के पक्ष में रहे। रघुवीर सहाय ने व्यवहारिक भाषा और उर्दू .. संस्कृत आदि के शब्दों का प्रयोग किया है।

नयी कविता में ग्राम्य बोली, अन्य प्रादेशीय भाषा को और भाषा में आँचलिकता तथा अंग्रेजी व संस्कृत के शब्दों का भी भरपूर प्रयोग किया है।

सभा में विराजे हैं बुद्धिमान
वे अभी राजा से तर्क करने को हैं

आज कार्य सूची के अनुसार
इसके लिए वेतन पाते हैं वे
उनके पास उर्गस्वर ओजमयी भाषा है। [102]

यहां पर कवि ओजमयी भाषा का वर्णन किया है। उर्दू का प्रयोग इस प्रकार है--

अपने साहबों को सलाम ठोंकते मुसाहबों को ब्याह कर
आ रही होगी जा रही होगी. [103]

यहां पर भाषा को एक लय में दर्शाया गया है।

इतने में दोनों प्रधानमंत्री बोले
हम दोनों में इस बरस दोस्ती हो ले
यह कह कर दोनों ने दरवाजे खोले

यहां पर वाक्यों के अन्त में ले आया है।

नयी कविता` के बारे में गिरिजा कुमार माथुर ने कहा है कि -- "भाषा का रियलिज्म और उसे व्यवहारिक बोलचाल से एक कर देना का प्रयत्न नये कवियों की विशिष्टता है। नयी पीढ़ी में भाषा, शब्द योजना, प्रतीक चित्रों का यह रियलिज्म अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है तो भविष्य की काव्य प्रक्रियाओं पर असर डालेगा। भाषागत यथार्थ गद्य में विशेषकर कहानी, उपन्यास में प्रेमचंद के बाद से काफी आ चुका था, कविता में वही चीज बोलचाल की भाषा को लेकर आ रही है। [104]

शैली :-

शैली अभिव्यंजना पद्धति की विशिष्टता का नाम है। यह विशिष्टता भाषा के प्रयोग के बल पर ही उपलब्ध होती है। इसके लिए शैलीकार की रुचि,

प्रवृत्ति, शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता आदि का भी महत्वपूर्ण योग होता है। नई कविता में जिस शैली को अपनाया गया है उसमें बिम्बों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग, प्रतीकों और संकेतों का आधिक्य, मुक्त छन्दों का उपयोग, मुक्त आसंग, मानवीकरण, अमूर्त अप्रस्तुतों का उपयोग, विशेषण विपर्यय का चमत्कार आदि की विशेषतायें दिखाई पड़ती हैं।

नये कवियों ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव छवियों जटिल संवेदनाओं तथा युगीन यथार्थ बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत करने की शैली को विशेष रूप से अपनाया है। "तीसरा सप्तक" में केदारनाथ सिंह का कहना है कि इस कविता की परख ही रस, अलंकार, चरित्र-चित्रण आदि को एक तरफ रखकर बिम्बीकरण के आधार पर की जानी चाहिए।" [105]

मानवीकरण में अमानवीय वस्तुओं और व्यापारों को मानवीय रूप में प्रकट करने की कल्पना की गई है। नई कविता में मानवीकरण के प्रयोग की शैली को बड़ी ही लोकप्रियता प्राप्त है। नई कविता में गद्य शैली को भी महत्व दिया गया है।

जैसे :-

> "हंसते मुस्कुराते वे हमें घेर लेते हैं और किसी बात पर तीखे सवाल
> कर ऐसा जताते हैं जैसे वे हमसे विरोध नहीं सहमति कर रहे हों:
> हम अपना पक्ष पुष्ट करने के वास्ते उतना ही तीखा जवाब दे देते
> हैं जैसा कि प्रश्नमंच का तकाजा था।" [106]

इस प्रकार नयी कविता में नये बिम्बों, प्रतीकों, उपमानों की तरह नवीन शब्द भण्डार का वर्णन किया गया है। पुराने शब्दों को नया अर्थ और नया संदर्भ दिया है। वैज्ञानिक युग के आविष्कारों से मिलने वाले शब्द भी नयी कविता में प्रयुक्त हुए हैं। वास्तव में इससे नई कविता में जो नई शक्ति आ गई है, उसी के फलस्वरूप नयी कविता में कुछ भी अकथ्य नहीं रहा है।

नयी कविता की उपलब्धियां :-

"नई कविता" की कुछ उपलब्धियां इस प्रकार हैं।

नवीन जीवन दृष्टि :-

"नई कविता" ने हिन्दी काव्य की भावभूमि को नये आयाम और नये विस्तार दिये। नई कविता एक ओर व्यक्ति के अन्तर्मन तथा दूसरी ओर विश्वमानवता को संवेदना की परिधि में बांध दिया। प्रत्येक व्यक्ति से समाज तक और राष्ट्र से विश्व तक "नयी कविता" की संवेदना व्याप्त पाई गयी है।

"नयी कविता" ने जीवन के यथार्थ को कई कोनों से उसकी सम्पूर्णता में पकड़ने की कोशिश की है। "नयी कविता" में संशय अनास्था, दिशाहीनता, अराजकता और मूल्यहीनता आदि नकारात्मक मूल्य यथार्थ के प्रति गहरे आग्रह की उपज है। राष्ट्रीय स्वाधीनता के सपनों को यथार्थ की विभीषिका ने बुरी तरह तोड़ डाला है। पांचवे और छठे दशक में भारत की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक विपन्नताओं ने मोह भंग की स्थिति उत्पन्न की है। पूंजीवाद, सामन्तवाद तथा साम्राज्यवाद विरोधी भावनाएं नये जीवन और यथार्थ की इसी समझ में से पैदा होती है।

व्यापकता एवं गहराई :-

"नई कविता" ने काव्य की भावभूमि को व्यापकता एवं गहराई में डाला है। कविता की रचना प्रक्रिया में बाह्य जगत से संवेदना की ओर प्रयाण करना और संवेदना की आन्तरिकता से बाह्य जगत की ओर चलना क्रमशः गहराई और व्यापकता के आयामों को छूना माना गया है। कुछ लोग तो व्यापकता और गहराई में कुछ भी अन्तर्विरोध नहीं मानते हैं। "नयी कविता" में पहली बार ही बाहर से अन्दर व अन्दर से बाहर आने की प्रक्रिया

दिखाई पड रही है। अज्ञेय जी, भारती, जगदीश गुप्त, रघुवीर सहाय की कविताओं में गहराई का आभास पाया जाता है।

प्रयोगधर्मिता :-

"नई कविता" में व्यापकता के परिप्रेक्ष्य में विविधता भी दिखलाई पडती है। यह विविधता ही नई कविता की प्रयोगधर्मिता का रूप है। नये कवियों न केवल कथ्य के स्तर पर बल्कि भाषा छन्द, बिम्बविधान, और अभिव्यक्ति कौशल के स्तर पर अनेकों प्रयोग किये हैं। "नई कविता" के काल में ही कथ्य और शिल्प के पारस्परिक सम्बन्ध की अन्योन्याश्रिता को सिद्धान्त के धरातल पर पहली बार अंकित किया गया। कुछ कवि तो शिल्प के प्रति बहुत ही आग्रही रहे, परन्तु नई कविता का मूल स्वर वह नहीं है। प्रकृति और बाह्य जगत के प्रति रागात्मकता--

बाह्य जगत मुख्य रूप से प्रकृति के प्रति अपने सम्बन्धों को "नई कविता" का कवि शुद्ध रागात्मकता और शुद्ध सौन्दर्यचेतना के धरातल पर ही ग्रहण करता है। नया कवि प्रकृति को अपने बाहर और भीतर एक समान अनुभव करता है। इस प्रकार वह अपने आप को या अपने आत्म को बाह्य जगत के साथ बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से ग्रहण करता हुआ दिखलाई पड़ता है।

हिन्दी काव्यालोचना के विकास में नई कविता का बहुत ही योगदान रहा है। नये कवि अपने आप को लगातार नए रचना वैशिष्ठ्य को परिभाषित करने का पूरा प्रयास किया। इन कवियों में मुख्य रूप से मुक्तिबोध, जगदीश गुप्त, लक्ष्मीकान्त वर्मा, विजयदेव नारायण साहीआदि का योगदान है। मुक्तिबोध ने वस्तु से बोध तक, बोध से संवेदना तक, संवेदना से "रचना" तक विभिन्न स्तरों की काव्य यात्रा की प्रक्रिया पर बहुत ही गम्भीर और सार्थक टिप्पणीयां दी हैं। "नई कविता का आत्मसंघर्ष" में "नई कविता" के काव्य सिद्धान्तों को एक शास्त्र के रूप में विकसित किया है। "नई कविता" में बहुत से आलोचक कवियों का विकास हुआ और उनकी रचनायें सामने आई। इस प्रकार "नई कविता" की उपलब्धियां भी महत्वपूर्ण दिखाई पड़ती हैं।

....64

(खण्ड - ग)

नयी कविता के आन्दोलन में रघुवीर सहाय का उदय

नई कविता के आन्दोलन काल में रघुवीर सहाय का उदय "दूसरा सप्तक" में हुआ।

कवि रघुवीर सहाय जी ने 1946 ई० में लिखना आरम्भ किया था। पहली बार उनकी कविता "आदिम संगीत" शीर्षक से "आजकल" पत्रिका के अगस्त 1947 के अंक, में छपी थी। इससे पहले उनकी एक कविता "कामना" "शीर्षक" से लिखी गई लेकिन वह छप नहीं सकी। इसकी रचना तिथि 7 अक्टूबर 1946 ई० है।

कवि ने यह भी स्वीकार किया है कि "मैंने 1947 में एक बार बच्चन की कवितायें पढ़ीं और उनकी वेदना से मेरा कंठ फूटा।" [107] तभी से मैंने कविता लिखना आरम्भ किया।

"रघुवीर सहाय की आरम्भिक कविताओं की "डायरेक्टनेस" और सहजता को लक्ष्य करके ही सच्चिदानन्द वात्स्यायन ने उनकी काव्य भाषा को "शिखर के बदले शहर के चौक की ओर "उन्मुख" बच्चन की "काव्य भाषा के समानान्तर रखकर देखा है।" [108]

आगे के दिनों में माथुर के कुछ सफल और असफल रंगों ने कवि को "अपनी छोटी बहुत सामर्थ्य का बोध कराया" और उसने "अपनी काव्य के प्रति सजग होकर लिखने की कोशिश की। [109]

रघुवीर सहाय ने 1948 ई० के आरम्भ में मुक्त छन्द में पहली कविता लिखी : "नया कवि" । इस कविता में जन-जीवन के प्रति कवि की चिन्ता को देखा जा सकता है।

आज धरा ने एक बार सूरज का फेरा लगा लिया है
आज ऐसा हो गया वर्ष भर समय कि जिसमें
धरा और सुन्दर बन सकती थी पल-पल में

एक दूसरी कविता में कवि ने अपना विश्वास इस तरह व्यक्त किया है--

कुछ समय लगेगा सुख के दिन आते - आते
आओ हम मिहनत निबटा ले गाते-गाते
इस जीवन का
जिसमें आशाएं हैं, सपने हैं रो-रो कर
हम नहीं करेंगे तिरस्कार. [110]

रघुवीर सहाय यहां तक आते-आते भावुक वैयक्तिकता के दायरे से बाहर निकल रहे हैं। "दूसरा सप्तक" में संकलित इनकी कविताएँ--"वसन्त" पहला पानी, प्रभाती, यातना, गज़ल, भला, संशोध, कोशिश, अनिश्चय, लापरवाही, समझौता, एकोअहंम्‌ बहुस्याम्‌, मुंह अंधेरे, सांयकल आदि है।

इन कविताओं में प्रकृति के सहज और जीवंत चित्र बिल्कुल नवीनता से तो प्रस्तुत किये ही हैं लेकिन साथ ही साथ प्रेम के प्रति सहज मानवीय दृष्टि भी अपनाई गई है। इन कविताओं में सामान्य जीवन की सामान्य स्थितियों का वर्णन किया गया है।

यह बदलाव की स्थिति केवल रघुवीर सहाय में ही उत्पन्न नहीं हुई बल्कि उस समय के सभी कवियों में इसका बदलाव आया जो कविताएं 1950 के बाद "नई कविता" के रूप में विकसित होनी शुरू हुईं। कवि रघुवीर सहाय ने 1948 में अपनी सभी कविताओं को जिस पत्रिका में एकत्र किया कवि ने उसको एक शीर्षक "सपने और सवेरा" दिया है। "सपने और सवेरा" शीर्षक

से आशय यह है कि आजादी के मिलने से पहले जो सपने मन में कवि ने संजोये थे वे ही सपने हैं और आजादी मिलने के बाद जो "सवेरा" हुआ यही, वही सवेरा हो सकता है।

"दिल्ली मेरा परदेश" की भूमिका में कवि ने कहा है कि "मेरे जैसे कई लेखकों के लिए जो आजादी के वर्ष 1947 में लिखना शुरू कर चुके थे, उसके बाद के करीब दस वर्ष एक तरह के उत्साह के वर्ष थे * उत्साह सबमें था, पर हम कुछ अलग ही थे, हम लोग राष्ट्र के नाम पर स्थापित किये जाने वाले हर किस्म के दकियानूसीक की आलोचना बिना भय के कर सकते थे। हमें अस्पष्ट सही, विश्वास था कि राष्ट्र को हम ही बना रहे हैं, हमसे पिछली पीढ़ी के लोग तो केवल कालक्रम के संयोग से अधिकारी स्थानों पर हैं, उनकी सर्जन शक्ति क्षय हो रही है और वे एक नये राष्ट्र की रचना का संकल्प सिर्फ दोहरा रहे हैं। हम इसके विपरीत प्रयोग कर रहे हैं, दुनिया को और अपने देश को समझ रहे हैं और कुछ नई प्रतीतियां और संवेदनाएं विकसित कर रहे हैं। जो आगे रचनात्मक शक्तियों के काम आयेंगीं।"[11]

स्वतंत्रता मिलने के बाद की यह नई मनः स्थिति अपने दूसरे समकालीनों के साथ रघुवीर सहाय की तत्कालीन रचनाओं में बार-बार व्यक्त की गई है। विश्ववाणी के जून-अंक में रघुवीर सहाय की एक कविता छपी थी "निशा की अतिथि" जो इस प्रकार है।

मुझे न सपने छोड़ सकेंगे,
यह प्रभात का कर्मक्षेत्र में नेह निमंत्रण
ठुकराऊंगा नहीं करूंगा नहीं पलायन
किन्तु स्निग्ध छायाओं में क्षण भर सुस्ताकर
चलने में कुछ बात और है, है संजीवन

पहले आया करते थे बीती रातों के सपने
अब आते हैं आने वाले नये दिनों के।[112]

स्वतंत्रता मिलने के बाद इसी "कुछ और बात" से निर्धारित होती हुई हिन्दी की नयी कविता एक अर्से तक नये रोमान का शिकार हो रही थी। जिसका प्रभाव "दूसरा सप्तक" की कविताओं में देखने को मिलता है।

पन्द्रह अगस्त सन् 1947 ई० की स्वाधीनता प्राप्ति के साथ स्वतंत्रता संघर्ष का जो नया दौर शुरू हुआ उसने साहित्य में यथार्थ और स्वस्वप्न के अन्तर्विरोध को एक नया संदर्भ और नया आयाम दे दिया।[113]

रघुवीर सहाय जी कहते हैं कि "मेरी कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक रहा जाये और वैज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाये। वास्तविकताओं की ओर ऐसा ही दृष्टिकोण रहना चाहिए और यही जीवन को स्वस्थ्य बनाये रख सकता था। शमशेर बहादुर का यह कहना मुझे बराबर याद रहेगा कि जिन्दगी में तीन चीजों की बड़ी जरूरत है, आक्सीजन, मार्क्सवाद और अपनी वह शक्ल जो हम जनता में देखते हैं।"[114] "सीढ़ियों पर धूप" में संग्रह में एक वक्तव्य में कवि रघुवीर सहाय जी ने कहा है कि " "मैं जानता हूं कि मुझे अपनी कविताओं और नाटकों में क्या करना है। गुलामी और गरीबी , युद्ध और बेकारी लेखक के दुश्मन हैं, उनसे वैसा ही व्यवहार कीजिये जैसा दुश्मन-दुश्मन के साथ करता है।[115]

"दूसरा सप्तक" में रघुवीर सहाय का एक वक्तव्य इस प्रकार है। " विचार वस्तु का कविता में " खून की तरह दौडते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है, और यह तभी सम्भव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हों।[116]

"दूसरा सप्तक" में "निरन्तर जनवादी स्वर" भले ही दिया हो, परन्तु प्रयोगवाद की अपेक्षा प्रगतिशील तत्वों को अधिक "मुखर" देता हो, लेकिन प्रभाकर माचवे और मुक्तिबोध की राय इसके विपरीत है। माचवे द्वारा की गई समीक्षा का शीर्षक "अत्यंत आत्मनिष्ठ" है।

"नई कविता" "नये पत्ते" के एक साल बाद प्रकाशित हुई। "नई कविता" के आरम्भ के सिलसिले में लक्ष्मीकान्त वर्मा की राय है कि "ऐतिहासिक दृष्टि से "नई कविता" "दूसरा सप्तक" (1951) के बाद की कविता को कहा जा सकता है, किन्तु एक ऐतिहासिक क्रम के अतिरिक्त भी "नई कविता" का वास्तविक रूप उस समय प्रतिष्ठित हुआ, जब "दूसरा सप्तक" के बाद के कवियों ने सारी कविता को "दूसरा सप्तक" के निकटवर्ती पाते हुए, किन्हीं अर्थों में कुछ भिन्नता का अनुभव भी किया। नयी कविता मूलतः 53 ई० में नये पत्ते" के प्रकाशन के साथ विकसित हुई और जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में होने वाले संकलन "नई कविता" में सर्वप्रथम अपने समस्त संभावित प्रतिमानों के साथ प्रकाश में आई।" 117

"दूसरा सप्तक" की कवितायें "नई कविता" के ठीक निकट की कवितायें हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि इन कविताओं में वह बीज निहित है, जिसने छठे, दशक के कवि के अनुभव के और भी यथार्थ संपृक्त होने के साथ, विकसित होकर नई कविता की पहचान कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।"सीढ़ियों पर धूप में" संग्रह की कविताओं मे इस पक्ष को देख सकते हैं। दूसरा सप्तक की कविताओं में साधारण जीवन "नया रास" तथा नया महत्वबोध उत्पन्न हो रहा है। एक कविता में (कोशिश) वे लिखते हैं कि —

मेरे जीवन की कोई घटना हेय नहीं
कुछ कर न सका इसका भी मुझको खेद नहीं
लेकिन अब जो करता है उसकी चिन्ता है। 118

ऐसे उदाहरण मुंह अंधेरे, पहला पानी, आदि कविताओं में भी मिल जाते हैं। यह नया सौन्दर्यबोध जिसको आरम्भिक "नई कविता" के नये भावबोध का केन्द्र माना है।

ठेलों की खड़खड़ाहट, दूध वालों के खनकते बर्तन
जल्दी चलते हुए चप्पल के हक्लाने के से
शब्द पास आते हैं और दूर चले जाते हैं।
आने दो याद हमें उन कारखानों की "

दूसरा सप्तक की कविताओं में रघुवीर सहाय ने जीवन की स्वाभाविकता और साधारणता के बहुत ही सुन्दर वर्णन किये हैं। दूसरा सप्तक की कविताओं में कवि ने बिम्बों का भी उचित रूप से प्रयोग किया है। आरम्भिक दौर की कविताओं में उन्होंने जीवन्त गत्यात्मक बिम्बों की सृष्टि की कविताओं में उन्होंने जीवन्त गत्यात्मक बिम्बों की सृष्टि की है जिसमें "क्रीडा वृत्ति" दिखलाई पड़ती है। जैसे सायंकाल कविता में--

दूर क्षितिज पर महुओं की दीवार खड़ी है
जिस पर चढ़कर सूरज का शैतान छोकरा
झांक रहा है
चौड़े चिकने पत्तों की लहरों पर फुनगियों को सरकाकर
नीड़ों में फिर लौटी महराती, पिड़कुलिया
निकल-निकल जाती है उसके चप्पल करों से
अब छायाएं दौड़ गई हैं लम्बी-लम्बी. 119

इनकी कविताओं में अलंकृत बिम्ब भी मानवीकरण के रूप में मिलते हैं, जिसके द्वारा परम्परित रूप में प्रकृति चित्रण करने की कोशिश की गई है--
बसन्त कविता में --

बन की रानी, हरियाली सा भोला अन्तर
सरसों के फूलों से जिसकी खिली जवानी
पकी फसल सा गरूआ गदराया जिसका तन
अपने प्रिय को आता देख लजायी जाती
गरब गुलाबी शरमाहट सा हल्का जाड़ा
स्निग्ध गेहुएं गालों पर कानों तक चढ़ती लाली जैसी फैल रहा है-
उत्सुकता से सिहरा जाता बदन-
नवल कपोलों से रस भीजे होंठ खुले हैं
मधु पराग की अधिकाई से कंठ रूंधा है. 120

वे बिम्ब सर्जन के दौरान जिन उपमाओं का प्रयोग करते हैं वे ज्यादतर यथार्थ सपोक्ष होती है। इसके साथ ही साथ उन्होंने मैले उपमानों को त्यागने की कोशिश भी की है। इनकी कविताओं में बिम्ब अन्ततः संप्रेषण का एक उपकरण भर ही है। अधिकांश "नयी कविता" के कवियों की तरह बिम्ब रचना उनकी कविता में उद्देश्य नहीं बन पाती। इसलिए रघुवीर सहाय बिम्बवादी नहीं है और वे "नई कविता" के दौर में रूढ़ियों के शिकार नहीं होते उनका, काव्य संग्रह "आत्महत्या के विरूद्ध" हँसो, हँसो जल्दी हँसो में विकास की नई मंजिलों तक पहुंच पाते हैं। यथार्थ का निरावरण व्यक्त करने की प्राथमिकता का आग्रह उन्हें एक सीमा के बाद बिम्बों के संसार से मुक्ति दिला देता है।

इनकी कुछ कविताओं में रोमान का भी आग्रह है। "समझौता" कविता में--

प्राण मत गाओं प्रणय के गान
पथ लगता अधिक सुनसान..
अः न छाया कर दुपट्टे से मुझे
अब यह नहीं अवसर करूं विश्राम,
कम होगा नहीं यह घाम, तेरी प्रीत पाने से।[21]

इस प्रकार उनकी कविता में "प्रेम" पलायन का संदर्भ बनकर उपस्थित नहीं होता । उनकी कविताओं में प्रेम की स्वच्छ इच्छा तथा कठिन स्थितियों के बीच सम्पूर्णता में उसे न कर पाने का तनाव उन्हें निराशा और पराजय की मानसिकता की ओर ले जाता है। उनमें इन स्थितियों को समझने और उसे बदलने की इच्छा अधिक है। "नई कविता" के ज्यादा-तर कवियों की प्रेम कविताओं पर इसका बुरा असर पड़ता है।

इनकी भाषा में वार्णिक और मात्रिक छन्द जैसी परम्परित छंद रचना की अनुपस्थिति के बावजूद उनकी कविताओं में-अनिवार्य लय की छंदात्मकता है। रघुवीर सहाय ने लिखना छंद में ही आरम्भ किया था। लेकिन दो साल बाद एक कविता लिखी 'जिज्ञासा'। इस कविता को पढ़कर माथुर जी ने कहा था, तुम मुक्त छंद जल्दी ही लिखोगे। रघुवीर सहाय ने इस बीच काफी कविताएं छंद में लिखी थी।

कवि ने अपनी भाषा को बोलचाल की भाषा के निकट लाने की कोशिश की है लेकिन उन्हें कहीं-कहीं भाषा की फिजूलखर्ची भी करना पड़ी है। कवि ने कहा है कि "विचार वस्तु का कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है, और यह तभी सम्भव है जब हमारी कविता की जड़े यथार्थ में हो।" [22]

रघुवीर सहाय की कवितायें साठोत्तरी आन्दोलन में भी उभर कर सामने आई हैं, जो इस प्रकार है।

साठोत्तरी कविता :-

साठोत्तरी कविता एक ऐसी कविता है जिसका उदय सन् 62 के चीनी-आक्रमण के पश्चात हुआ, एक ऐसी रेखा है, जहां से हिन्दी कविता ने नया मोड़ लिया। साठोत्तरी कविता का यह मोड़ कथ्य के नवीनतम रूझान और उस समय की भाषा तथा मुहावरे से जुड़ा हुआ था और यह निर्विवाद सत्य भी है कि साठोत्तरी पीढ़ी का स्वर अपने समय के स्वर से अधिक नजदीक है। जिसकी भाषा जन-जीवन के निकट, सपाटबयानी पर आकर अपनी लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक गरिमा से काफी दूर हो गयी है।

साठोत्तरी कविता में मुख्य रूप से दो स्वर सुनाई पडे हैं--पहला स्वर मंझली पीढ़ी के मोहभंग का था जो स्वतंत्रता के बीस वर्ष बाद अचानक ही सन् 1967 के आसपास सुनाई पड़ने लगा। इस कविता के मूल में अकेला चीनी आक्रमण ही इसका कारण नहीं था बल्कि पाकिस्तान का कच्छ पर आक्रमण, कच्छ न्यायाधिकरण का दुर्भाग्यपूर्ण निर्णयऔर ताशकन्द घोषणा की सहवर्ती तथ्य थे, जिनसे सामान्य प्राणी के साथ बुद्धिजीवियों का भी मोहभंग हुआ।

दूसरा प्रमुख स्वर विद्रोह का था। इसके कुछ कारणभारतीय परिवेश जन्य भी थे और कुछ कारण समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय चेतना से जुडे हुए थे। भारतीय परिवेश की विसंगतियां, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थितियों से घिरी हुई थी।

समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय चेतना से हुए कारणों से विज्ञान की भयावह और विध्वसंक शक्ति, मानवीय सत्ता का संकुचन, अधिनायक वादी और

अतिमानवीय, संगठनों का बोलबाला, पूंजीवादी व्यवस्था के कुपरिणाम अस्तित्व के प्रति स जगता, आधुनिकता के अभिशाप आदि बहुत से ऐसे कारण पैदा हो गये थे जिनसे युवा पीढ़ी पीड़ित हो उठी थी। युवा पीढ़ी का तनाव, आक्रोश, विद्रोह और क्रान्ति की आकांक्षा एक साथ ही प्रबल हो गई थी।

इन परिवेशजन्य दबावों से अनुस्यूत विद्रोह ने साठोत्तरी कविता में कई रूप धारण किये। विद्रोह का एक रूप अकविता वादियों की मध्य-कालीन कापालिक शाब्दिक माध्यमों में दिखलाई पड़ती है, जो भावबोध के स्तर पर रीतिकालीन कवियों के अधिक समीप था।

विद्रोह का एक स्वर कुछ समझदारी के साथ राजनीतिक चेतना को आत्मसात करके, राजनीतिपरक कवितायें लिखीं जा रही थी तो दूसरी ओर इन कवियों की कवितायें राजनीति विषयक थीं।

सामाजिक परिवर्तन के विषय में रघुवीर सहाय की यह प्रतिबद्धता उनकी रचना का राजनीति से स्वतंत्र रिश्ता स्थापित करती है जिसकी प्रकृति के बारे में नेमिचन्द्र जैन की राय है कि वह "मोटे तौर पर वामपंथी या स्थापित व्यवस्था विरोधी और जनसाधारण की ओर उन्मुख है।"[123]

इस प्रकार अकवितावादियों के विपरीत रघुवीर सहाय जी का कहना है कि "लेखक के लिए राजनीति से अलग रहना हर हालत में बेमानी और बेईमानी है। परन्तु राजनीतिक पार्टी का गुलाम हो जाना सिर्फ उसी हालत में बेईमानी है जब आप यह हरकत समाज के नाम पर कर रहे हों।[124]

राजनीति के साथ अपनी रचनाकारिता के स्वतंत्र रिश्ते को उन्होंने बाद में और भी स्पष्टता से सामने रखा है वे कहते हैं कि " मैं यह मानकर चलता हूं कि राजनीति एक अच्छे और सही अर्थ में एक रचनात्मक कर्म के रूप

में अनिवार्य है और होनी चाहिए, वहां मैं यह भी मानकर चलता हूं कि मेरा जो लेखन है या मेरा जो रचना साहित्य रचना का जो काम है, वह इससे स्वतंत्र है।" [125] साठोत्तरी कविता में राजनीति की कविता का संकट-कालीन रवैया "आत्महत्या के विरूद्ध" काव्य-संग्रह में संग्रहीत है।

साठोत्तरी कविता की प्रवृत्तियां :-

साठोत्तरी कविता की निम्नलिखित प्रवृत्तियां भी हैं:-

§1§ मोहभंग :-

मोहभंग साठोत्तरी कविता का प्रमुख स्वर है, जो कि जन-मानस में गुबार के रूप में संचित होता हुआ सन् 1967 के आस-पास के तेज स्वर में जागृत हुआ। इसके मूल में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण , ताशकंद घोषणा, कांग्रेस सरकार की निष्क्रियता जड़ता, राजनीतिक अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, नेताओं के झूठे आश्वासन, बढ़ती हुई महंगाई, अकाल, बाढ़, भुखमरी, जाति-वाद और साम्प्रदायिकता आदि तत्व मौजूद थे, जिन्होंने सामाजिक जनता का मोहभंग कर दिया था। "सन् 1960 के आसपास रघुवीर सहाय की कविता उस समय के यथार्थ की नई दुनिया को उदघाटित करती है वह अचानक नहीं है।" सन् 1947 के सत्ता हस्तातरण के बाद के वर्षों में जटिल होता हुआ सामाजिक यथार्थ 1960 तक आते आते उस बिन्दु पर पहुंच गया जहां से एक तीव्र मोहभंग का सिलसिला शुरू होता है। जिनके लिए 1947 में मिली आजादी एक सार्थक स्वप्न और उत्साह से जुडी हुई थी जो नये परिप्रेक्ष्य में "नई प्रतीतियां नई संवेदनाएं विकसित करने की इच्छा प्रेरित करते थे।" [126] उन्होंने 1960 के बाद के वर्षों में महसूस किया।

रघुवीर सहाय की एक कविता "एक अधेड़ भारतीय आत्मा में . लिखा है—

बीस साल
धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोलाभाला मंत्री
मामला बताओं हम कार्रवाई करेंगे
हाय-हाय करता हुआ हां-हां करता हुआ हें-हें
करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा
जितना बड़ा दल होगा उतना ही खायेगा देश को। [127]

कांग्रेस से जो आशायें लगाई थीं वे सब धूल में मिल गई थी। वे सभी वायदे नाकाम कर दिये गये। कवि जानता है कि बीस साल तक धोखा देने के बाद भी जनता को नारों से भुगालते में डाल दिया जायेगा।

आजादी के बाद सामाजिक आधारों को बदले बगैर जनता के शासन - लोकतंत्र की कल्पना की थी और इस लोकतंत्र के हवाले से उसने जनता की मुक्ति और विकास का झूठा वायदा किया। लेकिन समय के साथ-साथ इस "तंत्र" के लोकतांत्रिक दावों तथा समाजवादी नारों को झूठा साबित कर दिया गया।
जैसे :-

दूर
राजधानी से कोई कस्बा दोपहर बाद छटपटाता है
एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन
दोनों, बाप मिस्त्री और बीस बरस का नरेन

दोनों पहले से जानते हैं पेंच की मरी हुई चूड़ियां
नेहरू युग के औजारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन
अस्पताल में मरीज छोड़कर आ नहीं सकता तीमारदार
दूसरे दिन कौन बतायेगा कि वह कहां गया. [128]

रघुवीर सहाय की इन पंक्तियों में नेहरू युग के भ्रम और खोखलेपन का बयान तो वे कर ही रहे हैं, इसके साथ ही साथ लगातार मनुष्य विरोधी होते चले जाने की सूचना भी देते हैं, जो हमें एक दहशत की दुनिया की ओर ले जाती है। इस कविता में लौटने के इस चित्र की विशेषता बतलाई गई है कि वह न सिर्फ उन लोगों के जीवन की बिडम्बना को बता रहा है जो कि "राजधानी से दूर छटपटाते कस्बे" में "एक फटा कोट" एक हिलती चौकी और "एक लालटेन" के बीच घिसे हुए पेंच को कसने की मजबूरी में विफलता और निराशा झेल रहे हैं बल्कि अगली पंक्ति में "नेहरू युग के औजारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन" इस चित्र को व्यापक अर्थ संदर्भ में जोड देती है क्योंकि इस चित्र के माध्यम से उन्होंने नेहरू युग का मूल्यांकन किया है। "मिस्तरी" बाप और "बीस बरस का नरेन" महज पिता और पुत्र नहीं रह जाते बल्कि ये "आजाद हिन्दुस्तान में" जी रही दो पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं। इन पंक्तियों में नेहरू युग के मोहभंग को मिस्तरी वर्ग सहन कर रहा है।

अगली पंक्तियां घुटन और यातना का नया आयाम प्रकट करती हैं। वे कहते हैं कि आज कोई तीमारदार अस्पताल में मरीज को छोडकर निश्चिंत घर नहीं लौट सकता क्योंकि असुरक्षा के इस वातावरण में इसकी पूरी सम्भावना है कि दूसरे ही दिन अस्पताल में मरीज मिले ही नहीं, संभव है वह गायब कर दिया गया हो, उसकी "मृत्यु हो गई हो, और वहां पर कोई यह भी बताने वाला नहीं होगा कि वह कहां गया।

2- आक्रोश और विद्रोह :-

साठोत्तरी कविता का दूसरा प्रमुख स्वर विद्रोह का है। इस विद्रोह के कुछ कारण भारतीय परिवेशजन्य थे और कुछ कारण समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय चेतना से जुड़े थे। भारतीय परिवेश की विसंगतियों, जड़ताओं व समाज के खोखलेपन के विरूद्ध जो विद्रोह का स्वर उत्पन्न हुआ वह भारत के कोने-कोने में फैल गया। यही विद्रोह, दिगम्बर पीढ़ी, भूखी पीढ़ी, नंगी और श्मशानी पीढ़ी में है। कवि ने उस समय की वर्तमान व्यवस्था के मनुष्य विरोधी दुहरे चरित्र को नंगा करने की लगातार कोशिश की है। तथा लोकतंत्र के नाम पर लोकतांत्रिक संस्थाओं और उपकरणों को भ्रष्ट करने वाले जन-प्रतिनिधि के अश्लील चरित्र का खोखलापन उघाड़ते हुए उस पर प्रहार किया है।

सिंहासन ऊंचा है, सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के
एक परिवार के
मुंह बाये बैठे हैं लड़के सरकार के
लूले काने बहरे विविध प्रकार के
हल्की सी दुर्गंध से भर गया है सभाकक्ष
सुनो वहां कहता है
मेरा प्रतिनिधि
मेरी हत्या की करूण कथा
हंसती है सभा
तोंद मटका
ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डर कर चिंचिया कर
कहती है
अशिव है अशोभन है मिथ्या है। [129]

"भुखमरी" और अकाल" के बारे में एक कविता इस प्रकार से है।

फूटकर चलते फिरते छेद
भूमि की पर्त गयी है सुख
औरते बांधे हुए उरोज
पोटली के अन्दर है भूख
आसमानी चट्टानी बोझ
ढोह रही पत्थर की पीठ [130]

3- राजनीति से लगाव :-

साठोत्तरी पीढ़ी के कवियों के लिए राजनीति सबसे अधिक गतिशिल प्रत्यक्षएवं क्रूरतम सच्चाई है। इस प्रकार रघुवीर सहाय की कवितायें न केवल समकालीन दुनियां की पहचान को गहरा बना देती हैं बल्कि, प्रतिक्रियात्मक शयता के कारण परिवेशजन्य विसंगतियों की बखिया उधेड़ कर रख देती है। उनकी जागरूकता भी मामूली ही नहीं है। कवि ने चारों ओर के यथार्थ को विविध स्तरों पर परिभाषित करने की कोशिश की है यह ठोस यथार्थ राजनीति से सीधा सम्पर्क रखता हैत पर इनकी कविताओं में न तो राजनीतिक सिद्धान्त का बखान है और न ही दलगत राजनीति का प्रचार। इनकी कविताओं में राजनीति की सरेआम नंगा कर दिखाया गया है किन्तु ये कवितायें सर्वथा राजनीति बिमारी से मुक्त हैं। इसलिए जिस कविता का अर्थ निकाला जायें वह राजनीति से सीधा साक्षात्कार करती हुई नजर आती है।

हर संकट भारत में एक गाय
होता है
ठीक समय ठीक बहस कर नहीं सकती है
राजनीति

बाद में जहां कहीं से भी शुरू करो
बीच सड़क पर गोबर कर देता है विचार
हाय-हाय करते हुए हां-हां करते हुए हैं-हैं करते हुए
समुदाय
एक हजार लोग ध्यानमग्न सुनते हुए
एक अदद रिरियाता है सितार
जग रहो जाने किस वक्त सब एकमत हो जायें।[131]

शासन के वर्तमान ढांचे से रघुवीर सहाय भी असहमत हैं वे कहते हैं कि अगर अपने देश के संदर्भ के विषय में देखें तो हमारे यहां जो शक्ति का ढांचा बना हुआ है ऊपर से नीचे तक इस सबको यानी यह जो पूरी व्यवस्था है, इस सबको हम बिल्कुल बेकार और नाकामयाब मानते हैं --यानी एक उद्देश्य के लिए नाकामयाब। उद्देश्य वही है - समता और मनुष्य के बीच की गैरबराबरी को मिटाने के लिए यह व्यवस्था बिल्कुल बेकार है।[132]

व्यंग्य :-
====

स्वार्थपरता, नारेबाजी और भ्रष्टाचार ने इस व्यवस्था को इतना हास्यास्पद बना दिया है कि उसे वे कवि या तो हल्के-फुल्के स्तर पर लेकर उसकी पोल खोलने में लगे हैं या उन पर व्यंग्य करते हैं।

संसद एक मंदिर है।
जहां किसी को द्रोही नहीं कहा जा सकता ।
दूध पिये मुंह पोंछे आ बैठे।
जीवनदानी, गोंददानी सदस्य तोंद सम्मुख धर।
बोले कविता में देश प्रेम लाना हरियाना प्रेम लाना।
आइसक्रीम लाना है।[133]

इस प्रकार हिन्दी भाषा पर भी व्यंग्य की बौछार की गई है। रघुवीर सहाय जी कहते हैं कि -

हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली
गहने-गढाते जाओ
सर पर चढ़ाते जाओ.[134]

इस पर हिन्दी पर भी तीखा प्रहार कवि ने किया है।

5- नयी संवेदना :-

साठोत्तरी कविता की एक प्रवृत्ति नयी संवेदना भी है। छायावादी और प्रयोगवादी काव्य संस्कारों से इसने हमेशा अपना पल्ला छुड़ा लिया था। इन कवियों की सौन्दर्याभिरूचि और भंगिमा प्रयोगवादी रूढ़ियों से भिन्न तेवर लिये हुए थी। इन कवियों में यथार्थ से सीधा सम्बन्ध रखने के लिए, लोकतंत्र, चुनाव, मतदान, जुलूस, संसद, नारेबाजी आदि पहलुओं से जोड़ दिया है। यही यथार्थ से सीधी टक्कर है और इसी से कविता में अनगढ़ता आ गई है। क्योंकि परम्परागत सौन्दर्यवादी मूल्य इन कवियों को स्वीकार ही नहीं है। इस प्रकार रघुवीर सहाय जी अपनी एक कविता में कहते हैं कि --

कितना अच्छा था छायावादी
एक दुख लेकर एक गान देता था
कितना कुशल था प्रगतिवादी
हर दुख का कारण वह पहचान लेता था
कितना महान था गीतकार
जो दुख के मारे अपनी जान ले लेता था
कितना अकेला हूं मैं समाज में
जहां सदा मरता है एक और मतदाता .[135]

इस प्रकार कवि ने नयी संवेदना को प्रकट किया है।

6- सपाटबयानी :-

साठोत्तरी कविता में गहराई कम सतही हलचल का ब्यौरा अधिक है। साफगोई जहां उसकी विशेषता है, वहां पर सपाटब्यानी की कमजोरी भी। सपाटबयानी के कारण ही साठोत्तरी कविता जन-जीवन के अधिक निकट की कविता दिखाई पड़ती है। उस समय के कवियों ने चालू भाषा में अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। चालू शब्दों में निहित गहन अर्थवत्ता ही उसके बृहत्तर लक्ष्य को पूरा कर रही है। इस प्रकार युवा कविता आज के पाठक की जानी -पहचानी कविता है इससे कवि और पाठक की दूरी में बहुत कमी हुई और वे एक दूसरे के आमने सामने प्रकट हो गये।

काव्य भाषा की शक्ति सम्पन्नता रघुवीर सहाय की कविताओं में आरम्भ से ही है। वात्स्यायन जी ने "सीढ़ियों पर धूप में" संग्रह की भूमिका में रघुवीर सहाय की भाषा की "सहज प्रवाहमान प्रसादमयता" का उल्लेख किया है। रघुवीर सहाय की जीवन्तता के कारण पर विचार करते हुए वात्स्यायन जी ने एक उल्लेखनीय बात को इस प्रकार कहा है कि "अपने छायावादी समवयस्कों के बीच बच्चन की भाषा जैसे एक अलग आस्वाद रखती थी और शिखरों की ओर न ताककर शहर के चौक की ओर उन्मुख थी, उसी प्रकार अपने विभिन्न मतवादी समवयस्कों के बीच रघुवीर सहाय भी चट्टानों पर चढ़कर नाटकीय मुद्रा में बैठने का मोह छोड़ साधारण घरों की सीढ़ियों पर धूप में बैठकर प्रसन्न है।"[136]

कवि ने नये प्रवाह में बोझिल बिम्बों और प्रतीकों के "नदी के दीप" डूब गये हैं। उनकी सपाटबयानी का एक कारण यह भी हो सकता है कि बेलाग और खरी बात कहने के लिए बिम्ब और प्रतीक साधक न होकर बाधक बन जाते हैं। उनकी सपाटता और गद्यात्मक अभिव्यक्ति कविता को जटिलता, दुरूहता और उलझावों से बचाकर जनता के समक्ष खींच लिया

है। इससे भाषा की जड़ता एकदम चेतन हो उठी है- वह आजकल केवल इस्तेमाल की वस्तु ही रह गई है।

नूतन शब्द भण्डार :-

कविता और राजनीति में परस्पर निकट का सम्बन्ध स्थापित होने से कविता की भाषा में राजनीतिक शब्दावली का अभूतपूर्व भण्डार खुल गया है। ये शब्द इस प्रकार हैं- जनतंत्र, शान्ति, वायदो, जुलूस, मतदान लोकनायक, विश्वशान्ति, आजादी, हिन्दुस्तान, नागरिकता, पूंजवादी दिमाग, आम-चुनाव, मतपेटियां, पर्ची, मोहर, मंत्री, संसद, कुर्सियां, टोपियां, भाषण, समाजवाद, संविधान, जनमत, नेता, क्रान्ति, शासन आंकड़े, बेरोजगारी, राष्ट्र, विधायक आदि।

अभिव्यंजना रूढ़ि :-

साठोत्तरी कविता का एक सबसे बड़ा दोष यह है कि उसके कथ्य और भंगिमाओं में भयंकर एकरसता आ गई है। विद्रोह और राजनीतिक कवितायें एक-दूसरे कवि की नकल या एक ही कवि द्वारा लिखी हुई दिखलाई पड़ती हैं। उनके शब्दों, कथन, व वाक्य-गठन में एक साम्य पाया गया है। इस अभिव्यंजना रूढ़ि का मुख्य कारण है कि कवि का आक्रोश वैयक्तिक से सामूहिक हो गया है।

साठोत्तरी कविता अपने आप में, एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यह परिवेश के प्रति पूर्णतया सजग और प्रतिबद्ध रहकर अपने रूप में निश्चिचतता और गत्यात्मकता का अनुभव करती है।

सन्दर्भ

1- अज्ञेय - दूसरा सप्तक की भूमिका, पृ0 6

2- अज्ञेय - दूसरा सप्तक - पृ0 11

3- धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश - पृ0 488.

4- नकेन - पृ0 121

5- नन्द दुलारे वाजपेयी - नई कविता निष्कर्ष और समापन धर्मयुग पृ0 52,

6- अज्ञेय - तार सप्तक की भूमिका - पृ0 12

7- पाटल - पृ0 10, अप्रैल 1953

8- समालोचक - पृ0 121 फरवरी 1959

9- धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश - पृ0 530

10- अज्ञेय - दूसरा सप्तक -भूमिका - पृ0 7

11- अज्ञेय - तीसरा सप्तक - भूमिका - पृ0 22

12- नकेन की भूमिका प्रपद्य - पृ0 131

13- नन्द दुलारे वाजपेयी - नयी कविता - भूमिका और प्रमुख हस्ताक्षर - पृ0 39

14- अज्ञेय - चौथा सप्तक - पृ0 10

15- सिद्धेश्वर प्रसाद - छायावादोत्तर काव्य - पृ0 20

16- नन्द दुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य - पृ0 15

17- रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो, जल्दी हँसो - पृ0 39

18- प्रतीक - भारत भूषण अग्रवाल का वक्तव्य - पृ0 20 दिसम्बर 1951.

19- रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ0 30.

20- अवन्तिका - आधुनिक कविता में प्रयोगवाद - कृष्ण बिहारी मिश्र पृ0 624

21- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 31
22- आलोचना - नन्द दुलारे वाजपेयी - पृ० 5, जुलाई 1957
23- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 71
24- युग चेतना - डा० देवराज सिंह - पृ० 7, दिसम्बर 1956.
25- पाटल - प्रयोगवाद और उसके आलोचक - केसरी कुमार सिंह
पृ० 10, अप्रैल 1953.
26- रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 86
27- धर्मवीर भारती - ठेले पर हिमालय - पृ० 45
28- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 81
29- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 70
30- डा० बालकृष्णराव - नयी कविता परिवेश प्रवृत्ति एवं अभिव्यक्ति
पृ० 42
31- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 88
32- रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 118
33- अज्ञेय - तीसरा सप्तक - भूमिका - पृ० 16
34- साहित्य संदेश - उदयशंकर भट्ट - पृ० 337 जुलाई 1953.
35- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 16
36- गणेशदत्त त्रिपाठी - राष्ट्रभारती - पृ० 738 नवम्बर 1953.
37- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 38
38- केदारनाथ सिंह - नया पथ - पृ० 25, जनवरी 1958.
39- शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ० 319
40- धर्मयुग - पृ० 35, मई 1966.
41- कल्पना - पृ० 35, मार्च 1963
42- जगदीश गुप्त - नयी कविता - स्वरूप एवं समस्यायें
43- कल्पना - पृ० 9, नवम्बर 1956.
44- डा० रघुवंश - साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य - पृ० 150
45- आलोचना - शम्भूनाथ सिंह - पृ० 9 जनवरी 1957.

46- शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य पृ० २०

47- नयी कविता - अंक 1 - पृ० 3

48- जगदीश गुप्त - नयी कविता - स्वरूप एवं समस्यायें - पृ० 2

49- जगदीश गुप्त - नयी कविता - स्वरूप एवं समस्यायें - पृ० 2

50- नयी कविता - अंक 3 - पृ० 1

51- हरिनारायण व्यास - दूसरा सप्तक - पृ० 53

52- अज्ञेय - दूसरा सप्तक - पृ० 11

53- कल्पना - पृ० 24 मार्च 1960.

54- अज्ञेय - तीसरा सप्तक - पृ० 14

55- अज्ञेय - चौथा सप्तक - भूमिका - पृ० 15

56- अज्ञेय - हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिप्रेक्ष्य

57- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - नयी कविता और सर्वेश्वर - पृ० 7

58- ओम प्रकाश अवस्थी - नयी कविता रचना प्रक्रिया - पृ० 71

59- नयी कविता - अंक 2 - पृ० 31

60- नयी कविता - अंक 2 - पृ० 27

61- नयी कविता - अंक 4 - पृ० 16

62- अज्ञेय - हिन्दी साहित्य का आधुनिक परिदृश्य - पृ० 141

63- गिरिजा कुमार माथुर - नयी कविता सीमायें और सम्भावनायें पृ० 60

64- नयी कविता - अंक 1 - सुमित्रानन्दन पन्त

65- अज्ञेय - शुद्ध कविता की खोज की भूमिका - पृ० 9

66- इन्द्रनाथ मदान - कविता और कविता - पृ० 45

67- मुक्तिबोध - नयी कविता का आत्मसंघर्ष एवं अन्य निबंध पृ० 12

68- धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश - भाग 1 - पृ० 401

69- अज्ञेय - तीसरा सप्तक - पृ० 75

70- धर्मवीर भारती - मानव मूल्य और साहित्य - पृ० 176

71- जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप एवं समस्यायें - पृ० 193

72- जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप एवं समस्यायें - पृ० 216

73- जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप एवं समस्यायें - पृ० 216

74- अज्ञेय - पृ० 22

75- नयी कविता - अंक - 2 - पृ० 7

76- -प्रयोगवादी नयी कविता- परिवेश प्रवृत्ति एवं अभिव्यक्ति - पृ० 31

77- नयी कविता - अंक 1 - पृ० 10

78- आजकल - पृ० 10, जून 1957.

79- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 21

80- रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 63

81- श्याम सुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य, पृ० 25.

82- डा० नगेन्द्र - आस्था के चरण - पृ० 265

83- रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 13

84- अज्ञेय - चिन्ता की भूमिका - पृ० 15

85- रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 170

86- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 25

87- रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 49

88- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 21

89- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 79

90- रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 75

91- मदन वात्स्यायन - तीसरा सप्तक - पृ० 69

92- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 49

93- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 35

94- रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 11

95- रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 45

96- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 35

97- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 17

98- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 21

99- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 53

100- रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 42

101- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 32

102- अज्ञेय - बावरी अहेरी - पृ० 20

103- रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 3

104- रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 23

105- आलोचना - गिरिजा कुमार माथुर - अंक 2- पृ० 68

106- अज्ञेय - तीसरा सप्तक - पृ० 116

107- रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 39

108- रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 138

109- रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - भूमिका - पृ० 10

110- रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 138

111- प्रदीप - पृ० 17, दिसम्बर 1948.

112- रघुवीर सहाय - दिल्ली मेरा परदेस - भूमिका - पृ० 110

113- रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 138

114- रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 220

115- रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 139

116- धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्यकोश - पृ० 401

117- रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 150

118- रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 159

119- रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 140

120- रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 155

121- रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 139

122- नेमिचन्द्र जैन - आलोचना - पृ० 101

123- कल्पना - पृ० 77, अगस्त 1965

124- रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 105

125- रघुवीर सहाय - दिल्ली मेरा परदेस - पृ० 2

126- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 79

127- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 86

128- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 16-17

129- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 62

130- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 78

131- रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 104

132- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 28

133- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 70

134- रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 72

135- रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 10

"द्वितीय अध्याय"

(खण्ड-क)

"'रघुवीर सहाय' का साहित्यिक परिचय"

रघुवीर सहाय ने सन् 1947 ई० में लिखना शुरू किया। पहली बार उनकी कविता "आदिम संगीत" शीर्षक से "आजकल" पत्रिका के अगस्त अंक में 1947 ई० में प्रकाशित हुई। इससे पहले इनकी पहली कविता "कामना" शीर्षक से लिखी गई थी जो प्रकाशित नहीं हो सकी। रघुवीर सहाय की पुरानी डायरी में इसकी रचना तिथि 7 अक्टूबर 1946 ई० है। इसके बाद इन्होंने अपना लेखन कार्य जारी रखा।

रघुवीर सहाय ने "दूसरा सप्तक में कहा है कि "मैंने 1947 ई० में एक बार बच्चन की कवितायें पढ़ी और उसकी वेदना से मेरा कंठ फूटा।" [1]

इस प्रकार इनकी साहित्यिक रचनाओं का विकास हुआ जो इस प्रकार है --

काव्य संग्रह :-

(1) दूसरा सप्तक :-

इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1951 ई० में हुआ। इसमें सात कवियों की कवितायें वक्तव्य सहित संकलित है जिनमें से एक रघुवीर सहाय भी हैं। इसके सम्पादक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय जी हैं। "दूसरा सप्तक" में रघुवीर सहाय की ये कवितायें संकलित हैं। जैसे --बसन्त, पहला पानी, प्रभाती, याचना, गजल, भला संशय, कोशिश, अनिश्चय, लापरवाही, समझौता एकोऽहं बहु स्याम, मुंह अंधेरे, सायंकाल आदि। ये कवितायें सन् 1947 से सन् 1949 तक के समय में लिखी गई हैं।

दूसरा सप्तक में इन्होंने प्रकृति के सहज और जीवन्त चित्र बिल्कुल नवीनता से प्रकट किये हैं और प्रेम के प्रति सहज मानवीय दृष्टि भी अपनाई है। इन कविताओं में सामान्य जीवन की सामान्य स्थितियां हैं, जिनके आधार पर कविताओं का सृजन किया गया है।

"दूसरे सप्तक" में उन्होंने लिखा है कि "कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक रहा जाये और वैज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाय। शमशेर बहादुर का एक कथन मुझे बराबर याद रहेगा कि जिंदगी में तीन चीजों की बड़ी जरूरत है आक्सीजन, मार्क्सवाद और अपनी शक्ल जो हम शीशे में देखते हैं।"[2] आक्सीजन के बारे में तो उनका मत है अभी भी वही है, परन्तु मार्क्सवाद के बारे में उनका विचार बदल गया है। रघुवीर सहाय ने अपने समय के कवियों से हमेशा संवाद बनाए रखा और अपने माध्यम की क्षमता और सीमा के परीक्षण की प्रति उदासीन नहीं हुए। दूसरे सप्तक की कविताओं में उन्होंने प्रकृति का भी वर्णन किया है।

प्रकाशक : भारतीय ज्ञान-पीठ प्रकाशन

2- सीढ़ियों पर धूप में :-

इस संग्रह में उनके कविता, कहानी, और लेख संकलित हैं। इसमें आठ कहानियां, अठत्तर कवितायें और ग्यारह लेख लिखे गये हैं। इसका प्रकाशन सन् 1960 ई० में हुआ। इस संकलन में कवि ने आधुनिक कविता के अभिजात्य, गांभीर्य और भावात्मक उदात्तता से विद्रोह किया है और भाषा, परिवेश, संवेदनाओं और मनः स्थितियों को विशिष्ट अभिव्यक्ति के रूप में व्यंजित किया है। रघुवीर सहाय के अनुसार " गरीबी और बेकारी, युद्ध और गुलामी लेखक के दुश्मन है और मनुष्य के जानी दुश्मन हैं। उनसे दुश्मन जैसा व्यवहार करने के लिए लिखना है। मैं मौन रहूं तो पता नहीं किस अनीति को स्वीकृति दे बैठूं--क्योंकि मौन हो जाता हूं तो लगता है चारों ओर से उठ रहा-

एक हाहरव और अंतर से उठ रहा है एक विद्रोह का रणघोष, और मेरे भद्दे होठों का मौन जैसे दोनों के बीच दीवार बन कर खड़ा हो गया है।"

"सीढ़ियों पर धूप में" की कविताओं में कवि ने युग-जीवन की समान्य, सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों, मनः स्थितियों, विरूपताओं, विसंगतियों और संघर्षों को व्यक्त किया है। इस संग्रह में इन्होंने सामाजिक यथार्थ का वर्णन किया है और समाज में फैले भ्रष्टाचार, घुटन, यातना और पीड़ा बोध को व्यक्त किया है।

रघुवीर सहाय ने औसत मानसिकता और साधारण जीवन के जाने पहचाने चित्रों से नया अर्थ, नयी संगति देने का प्रयास किया है। कवि ने अपने द्वारा भोगे गये जीवन .. के बारे में भी कुछ कवितायें लिखी हैं। वही भोगी हुई अनुभूति कवि की वैयक्तिक अनुभूति न रहकर सामूहिक अनुभूति बन गई।

रघुवीर सहाय की भाषा, सरल, अलंकार युक्त नंगी और बेलौस भाषा है। इनकी कविताओं को पढ़ कर जैसा हमें अनुभव होता है उसी के अनुरूप इनकी भाषा है। साधारण बोलचाल की भाषा के मुहावरे, लफ्जों, वाक्यांशों, शब्दों, बिम्बों और प्रतीकों को उन्होंने काव्य के उपकरणों के रूप में प्रयोग किया है।

प्रकाशक : भारतीय ज्ञान पीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी।

3- "आत्महत्या के विरुद्ध" :-

इस संग्रह का प्रकाशन काल सन् 1967 ई० है। इस संग्रह में सैंतीस कवितायें हैं।

इस संग्रह में कवि ने अपने ढंग से युग की विसंगतियों और विडम्बनाओं को देखा भाला और मूल्यहीनता को पहचाना है। इनकी कविताओं में आज के राजनैतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक यथार्थ की सही दस्तावेज है जो तिलमिलाती है और कौंधती है। उनकी कविता में राजनीतिक विसंगतियों का एक ऐसा खाका है जो व्यंग्य परक चित्र को प्रदर्शित करता है जो अन्यत्र नहीं मिलता।

जैसे :-

गाँव-गाँव में दिया जन-जन को
विश्वास
नेकराम नेहरू ने
कि अन्याय आराम से होगा
आम राय से होगा नहीं तो कुछ नहीं होगा
गांव. [3]

इनकी कविता में राजनीति की अर्थहीनता है, और अपनी निजी बेचैनी है, कसमसाहट है जो मन को त्रासते हैं। लेकिन हम उनको देखकर भी अनदेखा कर जाते हैं। इस संग्रह की कवितायें न नारेबाजी की कविता हैं और न ही आत्मपीड़ा की हैं बल्कि एक आत्मचेता व्यक्ति की जनता के साथ सही सम्बन्धों की खोज करना है। वे एक जागरूक, संवेदनशील और सजग व्यक्ति की यथार्थ से रूही संसर्गजन्य अनुभूतियों की कवितायें हैं।

आत्महत्या के विरुद्ध की भाषा साधारण बोलचाल की, आत्मीय, सहज और प्रभावी है। इनकी भाषा ने अपने काव्य बोध के स्तर तक उठकर समसामयिक यथार्थ को पूरी तरह अभिव्यक्त करने में सफलता पाई है। इनकी भाषा में निजी वैशिष्ट्य है और व्यंग्यपरकता से काव्य में तीखापन आ गया है।

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, 8-नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110002.

4- हँसो-हँसो जल्दी हँसो :-

इस संग्रह की कवितायें 1967 से .. लेकर सन् 1974 तक की अवधि में लिखी गई हैं। संग्रह की शीर्षक कविता 1972 में तथा कुछ एक अन्य कवितायें इसके आगे पीछे पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इस संग्रह का प्रकाशन काल सन् 1975 ई० है।

इस संग्रह की कवितायें आपातकालीन स्थिति के घोषित होने से पहले ही लिखी गई थी। जो लोग लोकतंत्र के ह्रास के प्रमाण और आने वाली संकट की घड़ी का पहचान रहे थे उनमें से एक रघुवीर सहाय भी थे, उन्होंने जो पहचाना वही लिखा था। आपातकालीन स्थिति के लागू होने पर उन्होंने कोई भी कविता नहीं लिखी थी। इसमें उनके सभी सामजिक और राजनैतिक सरोकार पूरी सघनता से दिखाई देते हैं जिस पर हिन्दी कविता में दुर्भाग्य से बहुत कम बातें हुई। उनकी एक कविता "आने वाला खतरा" में ऐसे आने वाले समय का वर्णन है जबकि नारों और औरतों-मर्दों के खाने-पीने के फूहड़पन का आयोजन हुआ है। " किसी के पास कोई विचार नहीं होगा, क्रोध होगा लेकिन विरोध कहीं नहीं होगा सिर्फ अर्जियां लिखी जायेगी तब एक खतरा होगा और उस खतरे की घंटी को और कोई नहीं बादशाह बजायेगा।"[4] यह कविता सन् 1974 में लिखी गई थी, जब बिहार और करीब-करीब पूरे समाज में जबर्दस्त संघर्ष चल रहा था और शासक समुदाय पैसे व आतंकवाद के लिए नये तरीकों की तलाश कर रहा था। इसके बाद इस बात से सभी परिचित है कि इंदिरा गांधी के हाथों खतरे की घंटी बजाकर देश में इमरजेंसी आई। जिसके बारे में रघुवीर सहाय पहले ही लिख चुके थे।

इस संग्रह का केन्द्र सांस्कृतिक परिदृश्य और समाज में पैदा हुई हिंसा की राजनीति है। एक किस्म से सांस्कृतिक राजनीतिक और राजनीति

संस्कृति । यह संस्कृति उसको पोसती है जो "सत्य से विरक्त है, देह से सशक्त और दानशील धीर है।" इसमें शासक चाहता है कि --

"संस्कृति मंत्री ने कहा ....

.....सरलतम ढंग है।"[5]

इस सांस्कृतिक परिदृश्य में शासक द्वारा पैदा किये जा रहे पुनरुत्थानवाद पर, लोक-कला के आडम्बर पर और सारे पाखंड पर रघुवीर सहाय की बहुत पैनी नजर है। इस पूरे परिदृश्य को देखने में अवलोकन की उनकी अद्वितीय क्षमता को लक्ष्य किया जा सकता है। इसी में उनकी राजनीतिक दृष्टि और समस्या भी अन्तर्निहित है। रघुवीर सहाय की गहन मानवीयता और चीजों को देखने की सूक्ष्म दृष्टि कई बार उन्हें अपनी राजनीतिक दृष्टि और उसकी अपनी राजनीतिक दृष्टि की सीमा से बाहर भी ले आती है। वे उसका अतिक्रमण करने लगते हैं।

इनकी भाषा में सपाटबयानी और तुकबंदी की झलक है। इन्होंने सरल भाषा का प्रयोग किया है। इस संग्रह में पचास कवितायें हैं।

प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
23-दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

5- "<u>लोग भूल गये हैं</u>" :-

इस संग्रह का प्रकाशन समय सन् 1982 ई० है। इसमें तरेसठ कवितायें संकलित हैं। रघुवीर सहाय के शब्दों में "इस संग्रह की रचनाएं मेरे काव्य-

जीवन के जिस दौर में लिखी गई हैं वह अभी हाल में शुरू हुआ और अभी निबटा नहीं है, दिखता है कि वह अभी चलेगा। मंझधार से या कहें कि बीच भंवर से लिखी हुई कविता प्रकाशित कर देने का यह मेरा पहला अवसर है।" [6]

"लोग भूल गये हैं" संग्रह में रघुवीर सहाय की काव्यात्मक अन्तर्वस्तु महाकाव्यात्मक ऊंचाई तक पहुंचना चाहती है। एक पूरी जाति संघर्ष को और उस पर पड़ रहे विश्वास में जाकर जांचने का परिणाम है। रघुवीर सहाय की स्त्री की असहायता, संघर्ष, पीड़ा और प्रत्यक्ष करने वाली कवितायें भी इधर बहस का विषय रही हैं। लेकिन यह मानना उचित नहीं होगा कि करूणा कोई रुग्ण मनोवैज्ञानिक उपचार है। सच तो यही है कि करूणा हमारी मरती हुई नैतिक संवेदना को कुरेदती और पुर्नजीवित करती है।

रघुवीर सहाय की दृष्टि अपनी सीमाओं का अतिक्रमण भी करती है। लेकिन सवाल इसको विकसित करने का है। यदि रघुवीर सहाय की निगाह संघर्ष पर पड़ जाये तो वे अवश्य पायेंगे कि उनमें पराजय ही पराजय नहीं बल्कि जय भी है। बुर्जुवा लोकतंत्र में होने वाले उलटफेर का भी एक ही मकसद है, पर सवाल उसे "पीपुल्स डेमोक्रेसी" में बदलने का है। वे इसके पक्षधर नहीं हो पाते वे तो बुर्जुवा लोकतंत्र को ही एक बेहतर रूप में देखना चाहते हैं। यही उनकी सीमा है।

इस संग्रह के निवेदन में उन्होंने कहा है कि "आज अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियों ने मानवीय रिश्तों को बिगाड़ने की प्रक्रिया में वह स्थिति पैदा कर दी है कि अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले जन मानवीय अधिकार की अपनी हर लड़ाई को पराजय

बनता हुआ पा रहे हैं। संघर्ष की रणनीतियां उन्हीं के आदर्शों की पूर्ति करती दिखाई दे रही हैं, जिनके विरुद्ध संघर्ष है क्योंकि संघर्ष का आधार "नये मानवीय रिश्तों की खोज नहीं रह गया है।"

इस संग्रह में कवि की दृष्टि हमेशा "विक्टिम इंडीवीजुअल {विजयी व्यक्ति} की ही तरफ रहती है, जुझारू व्यक्ति उनकी कविता का पात्र बन ही नहीं सकता। क्योंकि उन्होंने छोटे या बड़े संगठित संघर्ष का कोई चित्र ही नहीं बनाया। इनके पास सामूहिक चेतना की कोई गुंजाइश भी नहीं है। जुझारू व्यक्ति अगर कहीं आ भी जाये तो वह कम से कम किसी सामूहिक चेतना के प्रतिनिधि के रूप में तो बिल्कुल ही नहीं आता। इसलिए वह या तो पराजित आदमी की तरह है या एक चिड़चिड़े स्वभाव के आदमी की तरह। उसकी नियति यह है कि उसकी हत्या होगी। यह भी तय है कि वह मार दिया जायेगा।

यह भी दिखा कि जनता संगठित होकर
आलोचना नहीं कर पा रही है। [7]

रघुवीर सहाय की कविता में वाक्य सबसे पहले हमारा ध्यान खींचता है। वह बिम्ब के विरुद्ध नहीं, उसके बर अक्स रखा गया है। यह वाक्य की पुनः प्रतिष्ठा मानी गई है।

"लोग भूल गये हैं" में "पहचानना" कविता में-

एकाएक किसी चेहरे को देखकर मुझे जब लगता है कि यह वही है,

तब थोड़ी देर में गौर से देखकर जान पाता हूं कि वह नहीं है, दोनों की यह तुलना ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन दे जाती है, हथियार मुझसे यह छीन नहीं सकता। [8]

बहुत सपाट से इन वाक्यों को हम पढ़ नहीं सकते। क्योंकि कामा, अर्धविराम या पूर्णविराम भी यहां नहीं, जो बाहर से कुछ अंकुश लगा सके। अगर तेजी से पढ़ जायं तो लगेगा कि यह कैसा वाक्य है! न तो अर्थ ठीक-ठीक पकड़ आयेगा न उसका कोई सौन्दर्य ही खुलेगा। तब हम यह सोचेंगे कि उसका ऐसा लिखा जाना बस कोई काव्य चातुर्य ही है। जैसे शमशेर बहादुर की कविता और गद्य दोनों को पढ़ने से जैसा धीरज और ठहर-ठहरकर पढ़ने की दरकार रखता है, आत्यंतिक रूप से भिन्न मिजाज रखते हुए भी रघुवीर सहाय की कविता का वाक्य भी वही कुछ चाहता है।

इस संग्रह पर रघुवीर सहाय को "साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, एफ-5, सैक्टर-8, नोएडा उत्तर प्रदेश -201301.

6- "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ :-

इस संग्रह का प्रकाशन काल सन् 1989 ई० है । इसमें सड़सठ कवितायें संकलित हैं।

इस संग्रह में भी कवि ने राजनीतिक संघर्ष को जारी रखा है। जिस तरह रचनात्मकता और आजादी एक ही मानवीय आकांक्षा के पर्याय हैं, उसी तरह समता की लड़ाई और कविता भी एक ही मानवीय उत्कर्ष के पर्याय हैं। रचनात्मकता के विरूद्ध इतना बड़ा अभियान आजादी के बाद दासता की पहली बार एक्य शक्तियों ने चलाया है। पराजय के जिस समय का बोध हमें हो रहा है उसमें पीछे मुड़कर देखें तो एक अपनी भूल का अवश्य ही अहसास करेंगे। राजनैतिक संगठन, विचार धारा का

समर्थन और अनेक प्रकार के सामाजिक चक्रव्यूहों में योद्धा भी हो सकता है और नहीं भी हो सकता । कवि अनुमान लगाता है कि संघर्ष का आधार नये मानवीय रिश्ते की खोज होना चाहिए और यह खोज जारी न रहने पर वे परिणाम भी निकल सकते हैं जिनको आज हम देख रहें हैं-- "इतिहास और परम्परा की विकृति के द्वारा एक बनावटी इतिहास का निर्माण और आने वाली पीढ़ी की प्रायोजित अशिक्षा।[9]

इतिहास के किसी भी हिस्से में "सच की क्या जगह होगी और उसका कहा जाना किस हद तक लेखक पर निर्भर करेगा यह वह जानता भी है और लिखता भी है कि --

> सच क्या है, बीते समय का सच क्या है ?
> क्रूरता, जो कुचल कर उस दिन की गई, वही सच है
> उसे याद रख
> लिख अरे लेखक, दस बरस बाद बचे लोग समझते होंगे
> युग नया आ गया, तब हुक्म होगा कि दस बरस पहले का
> वह दमन, वास्तविक यथार्थ में क्यों हुआ था, समझ,
> क्यों गला बच्चे का घोंटा गया था, यह उसकी घुटन से
> अधिक अर्थवान है । वह बता।[10]

यह कविता "करुणा" के वर्णीय चरित्र को धिक्कारती हुई क्रूरता के लिए हरदम जमीन देने वाली तथा कथित "मानवीयता" को भी उधेड़ती है। इस तरह की कवितायें यथास्थिति को समर्थन देने वाले निष्क्रिय आदर्शों और मानव मूल्यों को उनकी पूरी असलियत में जानती हैं।

रघुवीर सहाय ने, बच्चों, स्त्रियों पर अधिकतर कवितायें लिखी हैं। इन कविताओं में समकालीन संस्कृति और समाज के नासूरों की टटोल है।

जैसे– मेरी बेटी, हकीम और औरत, पागल औरत, दयावती का कुनबा, बच्चे की मां, गदराई लड़कियों, बूढ़ा का वक्तव्य, विदाई, कस्बे में दिन ढले, दो छोटे बच्चे, परिवार जैसी कविताओं में तमाम औरतें ही हैं।

इस दुनिया में इस देश में
इस समाज में और इस परिवार मे
जुल्म की शक्ल सिर्फ औरत बताती है
मर्द महज सब लोगों जैसा हो जाता है।[11]

बच्चों के लिए वह लिखता है --" कि

अब बड़े होने पर जानता हूं, बच्चे
बड़े होते जाते हैं
लेकिन सुरक्षित नहीं रहते.[12]

वक्त की क्लिष्टता में कवि का यह युद्ध सामान्य नहीं है क्योंकि वह उसके कवि का युद्ध होने से पहले बहुत गहरे उसे व्यक्ति का युद्ध है। इसलिए इसकी कविता में चीजें पचकर नहीं आती और इतनी सरल लगती है कि उनका समूचा आशय निचोड़ा जा सके। ये कवितायें अधिकतर गहरे सोच में बैठे व्यक्ति की ऐसी अभिव्यक्ति लगती है जिसमें वह कुछ कहना चाहकर भी वह कह नहीं पाता । उस अनकहे का जोड़ ही रघुवीर सहाय की कविता को जटिलता का रूप प्रदान करता है। उनकी कुछ कवितायें ऐसी भी हैं जिनमें कई भाव स्थितियों और संवेदनाओं के अलग-अलग वृत्त खींचे गये हैं। इस तरह की कविताओं में सदैव जो नहीं कहा गया है वह ज्यादा चुनौतीपूर्ण होता है, जो नहीं कहा गया है--विदाई, परिवार, कैंसर, प्रार्थना के शब्द, घुटन के बाहर, बहस, हकीम, और औरत, युद्ध विराम, पुल का इतिहास, कविता के नक्शे में एक चाल, कभी-कभी दुनिया

को फिर से, चिड़ियों का चिल्लाना, आप की खुदाई, पिछवाड़े की गली में आदि इसी प्रकार की कवितायें हैं।

इस प्रकार कवि की कवितायें कठिन संकटकाल की कवितायें हैं। यह संकट वक्त का भी है और व्यक्ति का भी। रचना की अन्तर्वस्तु का भी है और अभिव्यक्ति का भी। ...... इस संकट में कवि यह निश्चय करता है कि किन-किन पतो पर चिट्ठियाँ भेजी जाये। इस पतनशील समय में यह संग्रह इन चिट्ठियों का कार्य करता है। सभी व्यक्तियों की यह जिम्मेदारी भी बनती है कि वह समय की दुष्चरित्रता को खोलकर कहे और उन रास्तों की ओर इशारा करे जो अभी तक भी खुले हुए हैं। यही से वह लिखता है कि "वक्त जब बदलता है एक सिरे से मानक तब तक बदल जाते हैं बहते हुए

जोर से पानी पर उतराते जाते हैं वे चिकने खो पड़े
जो कल तक परिचत थे। उन्हें आज हम देखना नहीं चाहते।[13]

इस संग्रह की कविताओं में तमाम संदर्भ खुलते हैं। ये कवितायें अपने पाठक और आलोचक से अधिक ईमानदारी, संवेदनशीलता और समझदारी की मांग करती हैं।

प्रकाशक :- राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली-110002.

कहानी संग्रह :-

1- "जो आदमी हम बना रहे हैं --

इस कहानी संग्रह में छब्बीस कहानियां संकलित हैं। इसका प्रकाशन काल सन् 1982 ई० है। इस संग्रह में कवि की सभी प्रकाशित कहानियों को समेट लिया गया है।

रघुवीर सहाय प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं इसलिए वे अपने समय और समाज के लोकतांत्रिक जीवन मूल्यों की रक्षा और विकास के पर्स-पेक्टिव को आत्मसात किये हुए थे। इन जीवन मूल्यों का हनन जहां भी होता था वे उनके प्रति आलोचनात्मक हो उठते थे। यह मूल्यबोध इतना गहरा था कि वे रचना में कहीं किसी वांछित या उपेक्षित के प्रति सहा-नुभूति या दया का प्रदर्शन करने के बिन्दु पर पहुँच कर इसलिए पीछे हटने लगते थे कि कहीं उस दया या सहानुभूति में भी असामानता का बोध तो काम नहीं कर रहा है। इसके लिए उनकी एक चर्चित कहानी "सेब" में कहानी का वाचक एक टूटी-फूटी "परेम्बुलेटर में सीधी बैठी हुई" गरीब बीमार लड़की के प्रति अपनी संवेदना जताने के लिए कोशिश कर रहा है। लेकिन लड़की उस संवेदना को अनदेखा कर देती है। वाचक सोचता है कि "मुझे देखकर वह शायद मन में हंसना चाहती थी कि आप यहां खड़े हुए क्यों संवेदना लुटा रहे हैं, " आगे वह सोचता है कि यह स्वाभा-विक ही था कि मैं अपमानित अनुभव करता कि मैं तो - जैसा मुझे बचपन से सिखाया गया है दुखी आदमियों के प्रति आर्द्र होना उस पर ही तरस खा रहा हूं और वह मेरी अनदेखी कर रही है।

बच्ची के प्रति संवेदना प्रकट करने के बाद वह उसके बाप के प्रति

संवेदनशील हो उठता है जो उस प्राम की टिकरी खोज रहा था। वाचक उसकी मदद करता है। वह कहता है कि मैं अपनी "करुणा" से परेशान हूं। इस सहानुभूति प्रदर्शन और संवेदना की पीछे छिपी असमानता की मूल्य-दृष्टि के बारे में रघुवीर सहाय आलोचनात्मक हैं। वे लड़की के बाप के बारे में बताते हैं कि वह हंसा तो नहीं पर ऐसे मुस्कुराया जैसे वह कह रहा हो कि अपनी करुणा का श्रेय लेना चाहते हो तो हमारी व्यथा को क्यों अतिरंजित कर रहे हो।

इस कहानी में रघुवीर सहाय दिखाते हैं कि बीमार लड़की और उसके बाप का रिश्ता मानवीय धरातल पर है, वाचक अपनी श्रेष्ठता का अहंकार पाले उन पर दया का बोझ डालना चाहता है और यह दया उन्हें मंजूर नहीं क्योंकि वह असमानता के गर्वपूर्ण अहसास पर आधारित है।

इसी प्रकार एक दूसरी कहानी "एक छोटी सी यात्रा" है। जिसमें वाचक अपनी बस यात्रा के दौरान "ईउनिंग न्यूज" बेचने वाले दो गरीब लड़कों के बीच चुनाव करता है तो अपनी संवेदना छोटे के प्रति दर्शाता है। वाचक कहता है कि बड़प्पन के एक क्षण में मैंने इकन्नी निकालकर दी और सोचा कि कोई हर्ज नहीं जो कि यह बाकी पैसे वापस न दे पाये और बस चल पड़े। बस चल दी वाचक बहुत ही खुश था कि उसने छोटे और गरीब के प्रति सहानुभूति दिखाई, पैसे भी वापस नहीं मांगे लेकिन बड़े वाले लड़के बस के साथ-साथ दौड़कर बाकी पैसे वापस कर दिये। अन्त में वाचक कहता है कि "मेरे अन्दर कुछ वापस आने लगा।

एक क्षण मैंने विरोध किया पर फिर आने दिया। वह शांतिदायक था।" जब मैं बिल्कुल लौट आया तो फिर मुस्कुरा रहा था। मनुष्य को समानता के स्तर पर समझना रघुवीर सहाय की कहानी व कविता का मूल स्वर था उनका रचना संघर्ष भी यही था। "एक जीता जागता व्यक्ति" कहानी में उनका एक कथन इस प्रकार है--

लोगों को ही देखो, क्या वह कम रोचक है कि कितनी भीड़ है और सब अपने-अपने रास्ते जा रहे हैं और किसी को भी परवाह नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूं क्योंकि मैं उन्हें देखता हूं लेकिन हस्तक्षेप नहीं करता। देखो न, इस तरह मुझे भी औरों के साथ एक अस्तित्व मिल जाता है और वे सब ज्यादा से ज्यादा स्वतंत्र रहते हैं क्योंकि कम से कम दखल देते हैं।

कहानी में सड़क पर एक चिड़िया तारकोल में फंस गई थी और पंख फड़फड़ा रही थी। वह मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही थी। वाचक का मित्र इस संघर्ष में उसकी मदद करने की सलाह देता है, मगर वाचक अपने ऊपर पूरा नियंत्रण रखता है और कहता है कि "वह इस समय महत्वपूर्ण संघर्ष कर रही है जैसे वही जरूरी है उसे चिड़ियां ही कर सकती है। उसे करने दूं ? अंत तक ले जाने दूं ? जैसे उसे सुखकर होगा।" अन्त में उसे अपने बल पर ही मुक्त होने दिया। रघुवीर सहाय अपनी सभी रचनाओं में "उससे बड़ा और ताकतवर होने" की किसी भी विचारसारणी के विरुद्ध थे, इन्हीं अर्थों में वे सच्चे जनवादी थे, बोध के स्तर पर उनकी सभी रचनाओं की "थीम" भी यही है। कहानी, कविता और गद्य के क्षेत्र में भी।

इनकी रचनाओं को समझने के लिए उनकी इस मान्यता को ध्यान में रखना चाहिए। मनुष्य - मनुष्य के बीच समानता के मानवीय रिश्तों को एक मूल्य के स्तर पर बार-बार जीना और उसी के लिए संघर्ष करना ही उनकी संवेदना का उद्देश्य था।

इसी प्रकार उनकी कहानी, मेरे और नंगी औरत के बीच, खेल, रास्ता इधर से है, किले में औरत, चालीस के बाद प्रेम आदि चर्चित कहानियां हैं।

एक प्रभावशाली पत्रिका में एक पूरे पृष्ठ पर ओडिसा की एक आदिवासी लड़की के साथ किसी मंत्री के व्यभिचार की कहानी छपती है। लड़की का चेहरा बड़ा करके छापा गया है। लगभग एक तिहाई पृष्ठ उसी से भर गया है। वह चेहरा एक साधारण लड़की का है पर छप जाने पर एकाएक असाधरण हो उठा है। मंत्री का चेहरा लड़की से भिन्न नहीं है लेकिन फिर भी वह एक मंत्री है, मंत्री के पास कितनी ताकत है कि उसने उस लड़की का जीवन बर्बाद कर दिया और इस लड़की में इतनी ताकत नहीं है कि वह अपने जीवन को फिर से बना सके। रघुवीर सहाय राजनीति का हमेशा से विरोध करते आये हैं।

प्रकाशक :- राधाकृष्ण प्रकाशन
2-अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002.

निबंध संग्रह :-

"रघुवीर सहाय" के निम्नलिखित निबंध संग्रह हैं।

1- दिल्ली मेरा परदेस
2- लिखने का कारण
3- ऊबे हुए सुखी
4- वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे
5- भँवर लहरें और तरंग
6- यथार्थ यथास्थिति नहीं

§1§ "दिल्ली मेरा परदेस" :-

यह निबंध संग्रह सन् 19## ई0 में प्रकाशित हुआ था। इसमें सात निबंध संकलित हैं। इन निबंधों में रघुवीर सहाय ने दिल्ली में जवाहरलाल

नेहरू के अन्तिम वर्षों में मनुष्य की परिस्थितियों को उजागर किया गया है। इस संग्रह में कवि ने समय-समय पर राजनीतिक टिप्पणियाँ लिखी हैं। उस समय दिल्ली में राष्ट्रीय जीवन का चरित्र एक ऐसे संकट का सामना कर रहा था। जिन मान्यताओं को नेहरू जी महत्व देते थे वे उनके बाद भी बची रह सकेंगी या नहीं । राजनीति में इसी प्रश्न के उत्तर की खोज हो रही थी कि नेहरू के बाद कौन और कैसे? पर यह बात सत्ता की राजनीति में नहीं, केवल विचारों के संसार में पूछा और शान्त किया जा सकता था।

इन निबंधों में नेहरू जी के समय की राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन है। सन् 1960 और 1960 के बीच का समय भारत और चीन के संघर्ष की ऐसी घटना है जो अभी तक भी इतिहासकार भूले नहीं है। यह घटना सिर्फ चौंकाने वाली ही नहीं, अनेक प्रकार से हमारे समाज को नयी चेतना देने में समर्थ थी। परन्तु "राजनीतिक राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध उसका कोई दूसरा उपयोग हो ही नहीं सकता था। नेहरू जी का राष्ट्र निर्माण में बहुत बड़ा योगदान था।

नेहरू जी ने अपने "मासिक संवाददाता सम्मेलन" में कुछ महत्वपूर्ण अंश लिखे थे। एक चीन से बातचीत दूसरा शेख अब्दुल्ला का पाकिस्तान जाना और तीसरा अंश चौथी योजना का था। रघुवीर सहाय जी ने बताया है कि वे अंश मैंने उनका दुर्लभ नमूना मानकर अपने पास रख लिये थे। उन्होंने कहा है कि इन टिप्पणियों को मैंने डेढ़ सौ किस्तों में लिखा है इनमें एक सामाजिक चेतना है। उनके निबंध, राजरथ के तले, पथरीला पत्थर, भाषा भ्रमजाल, धूप हवा धूप, संस्कृति की झुरझुरी, लघुमानव,

पिल्ला, भारी भरकम चेहरे आदि हैं।

इन सभी निबंधों में दिल्ली के समय-समय के हाल को प्रदर्शित किया है। लेखक के शब्दों में -- "मुझे याद है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन का एक आयोजन कुछ महीने पहले राष्ट्रपति भवन में हुआ था। समारोह के बाद किसी कन्या विश्वविद्यालय की लड़कियां (छात्राएं) राष्ट्रगीत गा रही थीं, पर सामने की पंक्ति में खड़े साहित्य सेवी सब चुप थे। एकाएक देखा सब चुप नहीं हैं बच्चन जी गा रहे हैं। उस चिरपरिचित संगीतमय कंठ का अनुसरण करके दाएं बाएं से और भी लोग गा उठे और अशोक कक्ष गूंज उठा जैसे राष्ट्रगान से गूंजना चाहिए।[14]

इन निबंधों में गांव से लेकर शहरों तक का वर्णन हुआ है।

"खैर गाँव में जरूर देखा पक्के मकान कुछ बने, कुछ अधबने खड़े हैं। कुछ अभी एकमंजिले हैं, कुछ दो मंजिलें हो चुके हैं, हरियाली के नाम पर एक नीम का पेड़ है जिसके नीचे बंधा हुआ झूमता रहा है एक ट्रैक्टर।"[15]

लेखक ने गांव की समृद्धि को अपनी आंखों से देखा है उन्होंने कहा है कि "दिल्ली मेरा परदेस" नहीं है और न ही किसी का हो सकता। उसकी अपनी कोई संस्कृति नहीं। उस समय सभी के सामने यह सवाल आता था कि नेहरू जी के बाद प्रधानमंत्री कौन बनेगा ?

प्रकाशक :- दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया लिमिटेड
प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स
दिल्ली- 110035

2- "लिखने का कारण" :-

इस संग्रह का प्रकाशन समय सन् 1978 ई० है। इसमें 1951 से लेकर 1978 तक के लेख लिखे गए हैं। इसमें इकत्तीस लेख और एक रघुवीर सहाय के साथ अशोक वाजपेयी और मंगलेश डबराल की भेंट वार्ता है। "लेखक जब कभी अपनी रचना प्रक्रिया के विषय में सोचता है तो अंततः वह जो कर चुका होता है उसका विश्लेषण कर रहा होता है और अंततः जो वह कर नहीं पाया और करना चाहता है उसकी तैयारी कर रहा होता है।"[16]

उनकी रचना के दो और क्षेत्र हैं जहां उनकी रचनाओं के अलावा उनके विचार भी पढ़ने योग्य हो सकते हैं। एक साहित्य के समाज और राज्य से सम्बन्ध का है, दूसरा भाषा के साहित्येतर उपयोगों का है। यह आवश्यकता भी नहीं होती कि सभी लेखक किसी राजनीतिक दल से अपनी प्रतिबद्धता "घोषित" करे यह किसी भी नागरिक के लिए आवश्यक नहीं है परन्तु राजनीति से अपना सम्बन्ध का प्रश्न कोई अराजनैतिक प्रश्न नहीं है, वह समाज में मनुष्य की परिस्थिति और उस भविष्य का निर्माण करता है।

लेखक लिखता है कि सबसे बड़ा आत्महनन जो किया जा सकता है वह है "लिखना" । अब हम कैसे बतायें कि लिखना कितना बड़ा दर्द है, कितना बड़ा त्याग है। बताना मुश्किल है क्योंकि वह कई ऐसी बहुत वस्तुओं का त्याग है जिन्हे साधारणतया कोई महत्व नहीं दिया जा सकता।[17]

रघुवीर सहाय ने अपने निजी जीवन में जिन-जिन विषयों को भोगा है देखा है उन्हीं का वर्णन अपने साहित्य में किया है। जैसे ही वे

लिखने मिलते थे उन्हें ऐसा महसूस होता था कि वे सभी कुछ भूल गये हैं। जब इस बात पर वे विश्वास कर लेते थे तो वहां पर रचना करना बहुत मुश्किल कार्य हो जाता था।

"स्वतंत्रता के दिनों का संकट और मैं" नामक लेख में उन्होंने कहा है कि "विराटभीड़ों के समाज को बदलने का आज सिर्फ एक ही साधन है। वह है उस सत्ता का उपयोग जो समुदाय का एक-एक व्यक्ति अलग-अलग निर्णयों से कुछ हाथों में देता है। सरकार जो राज्य की प्रतिनिधि है, जो समाज की प्रतिनिधि है, जैसी भी वह हो अधूरी, टूटी नकली, मिलावटी, मूर्ख, वही अकेला कारगर साधन भीड़ के हाथ में है। मैं इस साधन के अधिक से अधिक सही इस्तेमाल के लिए लड़े बिना नहीं रह सकता, पर इसका मतलब यह नहीं कि मैं भीड़ का कायल हूं। मैं बदमाशों, गधों, आधे पागलों और मक्कारों के लिए एक जिम्मेदारी महसूस करता हूं, पर जो कुछ मैं रचनता हूं सिर्फ अपनी जिम्मेदारी पर रचता हूँ, - या फिर नहीं रचता, फिलहाल अपने को रचने योग्य बनाये रखना चाहता हूँ।[18]

अशोक वाजपेयी और मंगलेश डबराल से बातचीत के दौरान जो प्रश्न रघुवीर सहाय से किये गये थे। वे भी इस संग्रह में संकलित हैं। रघुवीर सहाय से मंगलेश डबराल और अशोक वाजपेयी ने उनके पहले तीनों काव्य संग्रहों पर काफी प्रश्न किये हैं। जैसे-करूणा, राजनीति और संस्कृति पर आदि। यहां पर उन्होंने उनकी कहानियों "रास्ता इधर से है" निबंधों के बारे में भी चर्चा की है। उन्होंने उनके रचना शिल्प पर भी काफी

कुछ पूछताछ की। उन्होंने "प्रतीक" पर भी अपनी सलाह प्रकट की। इस प्रकार छः घण्टे की बातचीत के दौरान उन्होंने रघुवीर सहाय से गद्य और पद्य दोनों के बारे में बातचीत की। इस निबंध संग्रह की भूमिका में उन्होंने कहा भी है कि "किसी लेखक के लिए अपनी रचनाओं के विषय में कुछ कहने का प्रयत्न द्विविधा का काम है। वह ठीक-ठीक जान नहीं सकता कि जो कुछ वह इस प्रसंग में कह रहा है वह उस रचना के विषय में है जो वह करना चाहता है।

प्रकाशक :- राजकमल एण्ड संस
कश्मीरी गेट
दिल्ली.

3- भँवर लहरें और तरंग :-

इस निबंध संग्रह का प्रकाशन सन् 1983 ई० में हुआ। इस संग्रह में उनके पैंतालीस लेख हैं।

"सन् 1969 ई० से लेकर 1974 तक समय हमारे वर्तमान इतिहास में राजनीतिक संगठन, सत्ता के केन्द्रीय करण और राष्ट्रीय एकता के विघटन का समय रहा है। इस दौर में सबसे बड़े राष्ट्रीय राजनीतिक दल कांग्रेस के दो हिस्से हुए। इस विभाजन के तात्कालिक परिणाम सत्ता के और अधिक संग्रह के रूप में पार्टी के उस हिस्से को मिले, जिसके पास नेतृत्व को "राष्ट्रीय" रूप देने की सम्भावनाएं मौजूद थी"।[19] कांग्रेस पार्टी" समाज सुधार के कार्यों में लगी हुई थी जिससे समाज को अपने ढांचे में बदलाव नजर आये और शोषित वर्ग व दलित वर्गों को अपने भविष्य का समाधान दिखाई दे जिसके कारण वे कांग्रेस पार्टी के लिए सक्रिय रहे। इस

संग्रह के सभी निबंध " दिनमान " में समय-समय पर प्रकाशित किये गये थे। लेखक ने इन सब निबंधों का यहां पर समेट कर लिखा है।

इन निबंधों में कांग्रेस सरकार की आलोचना की गई है। दिल्ली और लखनऊ में किसी तरह एक बड़ा दल बन जाने का प्रतिपक्षी दलों का करुण प्रयत्न उस समय संगठित राजनीति की सबसे महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है, जबकि समाज की ताकतवर हस्तियों ने छोटी व कमजोर जातियों की हत्या, चाहे वह डंडे से की जाय या अनाज की जमाखोरी से दबी ढकी समाजवादी स्मृति को गुदगुदाने वाली एवं चौंका देने वाली खबर ही बनकर रह जाती थी।

जहां तक समाज में उन वर्गों जातियों और राजनीतिक नेताओं का प्रश्न आता है जिनके हाथ में शासन की बागडोर रहती है वे समाज में भ्रष्टाचारी और गुलामी का युग लाना चाहते हैं। उनका नारा "गैर-बराबरी मिटाओ" नहीं" "गरीबी हटाओ" है। शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी और संस्कृत में अलगाव के द्वारा इन सभी क्षेत्रों में उनकी योजनाओं और कम हाथों में शक्ति संचित करने और अधिक लोगों को टुकड़ों पर पालने का कार्य करती रही है।

जयप्रकाश नारायण जी ने 8 अप्रैल सन् 1974 ई० में कांग्रेस सरकार के खिलाफ जुलूस निकालकर नागरिक स्वतंत्रता विषयक गोष्ठी के लिए दिल्ली आये और उसी दिन एक खबर छपी कि कांग्रेस संसदीय दल के 51 सदस्यों ने प्रधानमंत्री-जयप्रकाश के विवाद पर चिन्ता प्रकट की। सभी नेताओं ने जयप्रकाश जी प्रशंसा की और कहा कि उनकी सत्यता निष्ठा और राष्ट्रभक्ति को भारतीय इतिहास के उज्जवल अक्षर बताया।

उन्होंने प्रधानमंत्री को भी "सुप्रतिष्ठित नेता" कहा जिस पर कांग्रेसियों को गर्व है। इस प्रकार उन्होंने दोनों नेताओं का जीवन देशप्रेम से और स्वाधीनता संघर्ष कीअग्निपरीक्षा में सहभागी नेहरू और नारायण परिवारों की घनिष्ठ प्रीति और आदर से सम्बन्धित बताया। 9 अप्रैल को फिर जुलूस निकला और जयप्रकाश नारायण जी की एक विराट जनसभा हुई। जिससे विधान सभा में लड़ने वाले नेताओं का युद्ध विराम हो गया। जय-प्रकाश नारायण जी का देश की स्वतंत्रता प्राप्ति में बहुत बड़ा योगदान है।

एक बार इन्होंने " विधानसभा भंग करो" का नारा भी लगाया था। ये कह रहे थे कि हम विधान सभा भंग करेंगे।

"पानी दो लेख में लेखक ने लिखा है कि आज भी हर बार की तरह गरीब ही मर रहे हैं पर हमें इसे चिरसत्य न मानकर पूछना होगा कि गरीब ही क्यों मर रहे हैं। जो अपनी प्राथमिक आजादी अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति से वंचित हैं। हम सब लोगों को मिलकर यह फैसला भी करना होगा कि सबसे पहले इनकी जान बचायी जाये। पानी और काम आने वाले साधनों की मांग भी करनी होगी। क्योंकि किसी भी समाज में देवी - विपत्ति के समय मरते वही हैं जिनके राजनैतिक अधिकार उनके पास नहीं होते।

इनके मुख्य लेख - तोड़ो और बनाओ, सुन्दर समाजवाद, भय का व्यापार, हमारा नया लोकतंत्र, स्वाधीन बंगलादेश स्वाधीन भारत, साहित्य से परहेज क्यों, जयप्रकाश नारायण , मानवाधिकार केन्द्रीय राजनीति का बिखराव आदि हैं। ये सम्पूर्ण लेख राजनीतिक हैं।

1983 में समाज की जो तस्वीर थी, वह जीवन के साहित्य कला, विज्ञान, धर्म आदि निबंध क्षेत्रों में आविष्कार के स्थान पर अनुकरण की संस्कृतिका प्रतिबिम्ब है।

प्रकाशक :- देवदार प्रकाशन,
59- सुभाष पार्क, एक्सटेंशन,
दिल्ली-110032.

4- "अबे हुए मुर्गी" :-

इस निबंध संग्रह का प्रकाशन सन् 1983 में हुआ था। इसमें सत्तावन निबंध संकलित हैं। जिनको लेखक ने एकत्रित करके समय-समय पर यहाँ लिखा है। इसमें भी सभी निबंध राजनैतिक है। सन् 1947 से लेकर आज तक राजनैतिक आजादी का हमने क्या किया और आज क्या कर रहे हैं। राज्य और समाज के सम्बन्ध भी हमने बनाये हैं, व्यक्ति और व्यक्ति के क्या सम्बन्ध हमने बनाये हैं। और इनके चलने पर हम कैसा राज्य और कैसा समाज बनाना चाहते हैं इन सब निबंधों को लिखनेके पीछे लेखक के मन में एक समग्र भारतीय समाज की चिन्ता ही थी और वही लेख की समाधिकता प्रमाण भी बन गई ये सभी लेख "दिनमान" में समय-समय पर प्रकाशित किये गये थे लेकिन यहाँ पर लेखक ने इनके साथ प्रकाशन समय का भी वर्णन किया है।

आजादी के बाद राज्य की शक्ति से होने वाले विकास के लाभ को लेखक ने दो भागों में बांटा है। क्योंकि दो संस्कृतियों का टकराव बढ़ता ही जा रहा था। जिनमें एक दो संस्कृतियों का टकराव बढ़ता ही जा रहा था। जिनमें एक आविष्कार की संस्कृति है और दूसरी अनुकरण

की। आविष्कार की संस्कृति समता और न्याय को आदर्श मानकर परम्परा की पहचान करते हुए शिल्प, शैलियां और उपाय खोजना चाहती है जो जनता को आजादी दिला सकती है यह संस्कृति हमें सामाजिक मान्यताओं के संसार में पीछे नहीं छोड़ना चाहती, नये मानव सम्बन्धों की दिशा में आगे ले जाना चाहती है।

अनुकरण की संस्कृति उन्नति और विकास के जिन दृष्टान्तों को आदर्श मानती है वे विश्व की साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा लागू किये गये हैं। इस संस्कृति का भविष्य निश्चित रूप से गुलामी ही ही है। वह भी वर्तमान गुलामी का सुख । इसलिए इसका शीर्षक" अबे हुए सुखी हैं" ।

सुखी वही लोग हैं जो ऊब गये हैं, क्योंकि उनकी सेवा के लिए हजार आमोद-प्रमोद हाथ बांधे हुए खड़े हैं । देश में आमोद का उद्योग पिछले तीन-चार वर्षों में कौतुकप्रिय पिल्ले से बढ़कर गुर्राता और दुम हिलाता हुआ वयस्क हो गया है और ग्राहकों की तलाश में रंग-बिरंगे कपड़े फहरा रहा है। जिनके पहनने वालों पर लड़कियां ही लड़कियां मंडराने लगेंगी। वह कह उठता है कि "भारत के भरपेट लोगों थोड़ा और मक्खन खाओ" ।

इनके एक लेख अंग्रेजी और हिन्दी में एक समारोह में राष्ट्रपति से लेकर राजबहादुर तक ने बताया है कि हिन्दी को क्या -क्या होना चाहिए। जनता आज अट्ठाइस साल से अपने निर्वाचित शासकों से कह रही है कि हिन्दी को राज्यभाषा का स्थान दो और उन्होंने इसकी तरफ कोई ध्यान ही नहीं दिया हैं हिन्दी की वर्तमान राजनैतिक स्थिति क्या है यह समझना कठिन नहीं है। हिन्दी भाषी प्रदेश के

वोटों का केन्द्र सरकार की रचना में बहुत महत्व है। परन्तु केन्द्र सरकार उन चुने हुए भारतीयों के हाथों में है जो अंग्रेजी के योग्यता में बाकी भारतीयों से श्रेष्ठ हैं। अंग्रेजी की योग्यता लिपिक से लेकर प्रधानमंत्री तक बहुत जरूरी है। बल्कि हिन्दी प्रेमी, अफसर, संसद सदस्य, मंत्री सभी बीच -बीच में यह प्रकट किया करते हैं कि वे निरी हिन्दी नहीं, हिन्दी और अंग्रेजी जानते हैं ?

"हिन्दुस्तान का राजनैतिक तंत्र बहुत तेजी से टूट रहा है। संविधान और शासकीय अधिकार का दुरूपयोग, हिंसा की नीति, भूखमरी और राजनैतिक दलों द्वारा जातिगत संकीर्णता का पोषण जारी है। उस पर बहुत बहसें हो चुकी हैं, हो रही हैं और होती रहेगी"।[20]

गांधी, लोहिया, जयप्रकाश आदि नेताओं में गांधी के शहीद दिवस पर गांधी का नाम लेकर शपथ ग्रहण करने की परम्परा हर साल थोड़ी सी और खोखली और पाखंडी होती जा रही है। कुछ शाश्वत मूल्य ऐसे हैं जिन्हें गांधी के नाम के साथ जोड़कर गांधी के वास्तविक राजनैतिक अर्थ को कुल में से बाद देकर दोहरा दिया जाता है। 30 जनवरी को मोरारजी देसाई ने स्कूली बच्चों को शपथ दिलाई तो "सच बोलना और सच्चाई का व्यवहार करना उनके आग्रह का विषय था, "सत्याग्रह" का उसमें कहीं भी उल्लेख नहीं था।

लोहिया एकमात्र भारतीय राजनैतिक व्यक्तित्व है जिन्होंने राजनीति को समग्र जीवन में अन्याय मिटाने के साधन बनाने की गांधी-वादी दृष्टि को संगठन के स्तर पर विकसित किया और समाज परि-वर्तन के लिए संगठित कार्यक्रम तथा उन कार्यक्रमों के लिए आन्दोलन और उन आन्दोलन से उत्पन्न नेतृत्व को संगठन में स्थान देने की कल्पना की।

भारत में गरीब और अमीर के बीच बढ़ती हुई खाई एक विश्व-व्यापी अत्याचार में हमारे नियामकों का योगदान है। दुनिया में बहुत जगह गरीबी बढ़ी है। यह कह कर अक्सर भारत में अपढ़ हड़बड़ाये हुए समूहों को भटका दिया जाता है। भारत भी गरीब देशों में आता है। लेखक ने यहां पर मजदूरों, गरीबों और राजनीतिक व्यक्तियों त्यौहारों को भी स्थान दिया है। उन्होंने हिन्दी भाषा को राज भाषा बनाने पर भी काफी जोर दिया है। साईकिल रिक्शा मजदूर, साइकिल रिक्शा का सत्य, हिन्दी में बहस कीजिये, चींटी को जिमाना, मनुष्य को मारना, गांधी के नाम पर मसीहाई, गांधी, लोहिया, जयप्रकाश, खतरनाक , प्रेमचंद, अंग्रेजों भारत छोडो, होली के रंग, दिवाली की शुभकामनायें, "खाओ- पियो राज करो, वरना गद्दी छोड दो," निराशा की राज-नीति लेखक के मुख्य लेख हैं।

प्रकाशक : - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23-दरियागंज, नई दिल्ली , नई दिल्ली-110002.

5- <u>वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे :-</u>

इस निबंध संग्रह का प्रकाशन काल सन् 1983 ई0 है .. यहां पर उनके बासठ लेखों को एकत्रित करके लिखा गया है। ये लेख 1969 से लेकर 1982 तक के समय में लिखे गये थे और लिखते ही दिनमान समाचार साप्ताहिक में वृत्तान्तों के रूप में प्रकाशित हुए थे। जिस पत्रिका का लेखक उस समय सम्पादक था।

"जो आदमी हम बना रहे हैं" में एक प्रभाव शाली पत्रिका में पूरे पृष्ठ पर एक आदिवासी लड़की के साथ किसी मंत्री के व्यभिचार की

कहानी छपती है। लड़की के साथ किसी मंत्री के व्याभिचार की कहानी छपती है। लड़की को चेहरा बड़ा करके छापा गया है लगभग एक तिहाई पृष्ठ पर छापा गया है। मंत्री का चेहरा छोटा करके छापा गया है क्योंकि वह एक मंत्री का चेहरा है। उसी पत्रिका में कुछ पृष्ठ पीछे एक औद्योगिक नगर में एक उद्योगपति के परिवार के दस-बारह सदस्यों के घर छापा पड़ने की बात छपी है। करोड़ों रूपया निकला, जेवर आगरा यहाँ तक कि लाखों के नोट निकले जो सड़गल गये थे। लेकिन जमा थे। यह वृतान्त पूरे पृष्ठ पर छपा है पर उसमें उद्योगपति और उसके दस बारह कुटुम्बियों में से किसी का भी छोटा सा भी चित्र नहीं छपा है। इसका उददेश्य यह हुआ कि उनका चेहरा छिपा रहना चाहिए। और यह मनोरंजन भी होना चाहिए कि बड़ा आदमी पकड़ा गया। इस प्रकार देश में शोषितों (गरीबों) का शोषण हो रहा है। वह मंत्री शासक वर्ग में सम्मिलित होने के काबिल नहीं है। कोई भी आदमी मंत्री के खिलाफ गवाही नहीं दे सकता।

राजनीति के आज के दौर में औरत जाति का जो अपमान हो रहा है। उससे हमारा मन दर्द और गुस्से से इतना भर गया है कि इस अत्याचार के खिलाफ सार्थक आवाज उठाने के लिए आवश्यक दृष्टि और समझ पकड़ से निकलकर फिसली जा रही है। पहले औरत के प्रति आदर्श व्यवहार यह माना जाता था कि हम उसे एक ओर पूजा की और दूसरी ओर दया की चीज मानें। लेकिन साठ के दशक में एक नयी समझ मिली कि आदर्श सावित्री नहीं द्रौपदी है। इस प्रकार यह भी शोषितों का एक बड़ा वर्ग है। इसके बाद सत्तर के दशक में स्त्रियों पर अत्याचारों का अनुपात और अधिक हो गया।

आज भी दिनों-दिन बलात्कार की घटनायें बढ़ती ही जा रही हैं। कुछ दिनों पहले बागपत में एक स्त्री को सड़क पर नंगा किया गया क्योंकि वह डकैत थी और पुलिस का कहना था कि हमने नहीं जनता ने उसको नंगा किया यह और भी भयानक स्थिति है कि पुलिस और जनता एक साथ मिलकर स्त्रियों पर अत्याचार कर रहे हैं। यह जनता पर एक तरह लांछन लगाना है।

" माया त्यागी को भूल जाओ" में लेखक ने उस बेसहारा स्त्री की दुखःद घटना का वर्णन किया है जो औरत जाति पर खुलेआम अत्याचार है। 18 जून सन् 1980 में यह घटना घटित हुई । यहां पर उत्तर प्रदेश की पुलिस ने स्त्री पर अत्याचार किया है सब इंस्पेक्टर नरेन्द्र सिंह ने जो पुलिसकर्मियों द्वारा व स्वयं अत्याचार माया त्यागी पर किया है उसे औरत जाति कभी नहीं भूला सकती। पुलिस कर्मियों ने भरे बाजार में उसको नंगा किया और उसको डंडे से मारा। आयोग ने कहा है कि माया त्यागी के साथ बलात्कार किया गया यह बिल्कुल गलत है। पता नहीं आयोग की नजर की बलात्कार की परिभाषा क्या है जो-जो अत्याचार उसके साथ किये गये क्या वे बलात्कार नहीं थे ? गाडी में जाकर एक सीधी-सादी लड़की छूना और उसके साथ अश्लील व्यवहार करना और इसका विरोध करने पर उसके सीने को खोल देना क्या यह बलात्कार नहीं था। इस प्रकार औरतों पर न जाने कितने अत्याचार होते आये हैं और आज भी हो रहे हैं । लेखक कहता है कि माया त्यागी को भूल जाओ । ~~लेखिक×कहता×है~~ स्त्री जाति इसको कैसे भूला सकती है। लेखक ने कहा है कि " वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे।" दुनिया में सब-इन्स्पेक्टर नरेन्द्र सिंह जैसे व्यक्ति अगर ऐसा ही व्यवहार करेंगे तो उनकी मृत्यु निश्चित ही है।

देश की आजादी के लिए किये गये आन्दोलनों को हम कैसे भूल सकते हैं जब 9 अगस्त को "भारत छोड़ो आन्दोलन" ने सत्याग्रह और सिविल नाफरमानी को एक अपूर्व प्रतिष्ठा दी थी। 8 अगस्त 1942 को कांग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत की स्वाधीनता की घोषणा और विदेशी शासक को देश छोड़कर जाने को मजबूर करने के लिए अहिंसक सत्याग्रह का आह्वान किया था। दूसरे ही दिन इस अभियान को चलाने वाले महात्मा गांधी सहित गिरफ्तार कर लिये गये और फिर लाठी, गोली, बलात्कार और यंत्रणा के नये-नये आविष्कारों से उजाड़ने की कहानी है। 8 अगस्त स्वाधीन भारत की देशी सरकार का त्यौहार नहीं है, जनता का त्यौहार है। सरकारी त्यौहार 15 अगस्त ही माना गया है और अब भी मनाया जाता है।

शोषण और दासता से मुक्त जनता जिसकी हो वैसा ही भारत एक बड़ी शक्ति बन सकता है, अन्यथा वह बड़ी शक्तियों को पूरा करने वाला एक माध्यम बनकर रह जायेगा। और 8 अगसत को और 15 अगस्त के संघर्ष की दुर्भाग्यकारी परिणति होगी।

छब्बीस जनवरी के दिन पहले राष्ट्रपति एक संदेश प्रसारित किया करते हैं। राष्ट्रपति के पास वास्तविक निति निर्णायक अधिकार नहीं होते राज्य कि अध्यक्ष की नैतिक प्रतिष्ठा ही उनकी शक्ति है। "मारते वही जिलाते वही" नामक लेख में लेखक ने हिन्दू मुस्लिम दंगों का वर्णन किया है। इस दंगे में ~~xx~~ गरीब हिन्दू और गरीब मुसलमान ही ज्यादातर मारे जाते हैं। बड़े लोग तो सुरक्षित ही रहते हैं। जून में जब दंगों का आतंक बनारस में बजरडीहा में पहुंचा, जहां 99 प्रतिशत बुनकर है। मुस्लिम मजलिस और लीग द्वारा संचालित अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से कोई

सम्बन्ध नहीं है। उसी गांव में 18 जून की सुबह गांव के छोर पर हल्ला हुआ कि एक लुहार को मुसलमानों ने छुरा मार दिया। हिन्दू मुस्लिम दंगे की शुरूआत इसी घटना से हुई। इस बजरडीहा की आबादी 3,742 है जिसमें 95 प्रतिशत मुसलमान है और 5 हिन्दू हैं। जहां पर इनके मकानों की दीवार एक ही हैं। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमानों के दंगों का भी लेखक ने अपने निबंधों में वर्णन किया है। उनके मुख्य लेख , गरीबों तुम बहुत हो गये हो, राजा और प्रजा, औरत और नयी पीढ़ी, नंदना की जीत , मारते वही जिलाते वही, हिन्दू गरीबी, मुस्लिम गरीबी, कौमी एकता के लिए आदि।

प्रकाशक :- नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23-दरियागंज, नई दिल्ली.

6- "यथार्थ यथास्थिति नहीं" :-

इस निबंध संग्रह का प्रकाशन काल सन् 1984 ई0 है। इसमें रघुवीर सहाय के कविता संग्रहों के दौर पर कुछ लेख लिखे गये हैं जो पहले निबंध संग्रहों में प्रकाशित हो चुके हैं। "सीढ़ियों पर धूप में" के दौर में दस लेख हैं, हँसो-हँसो जल्दी हँसो में के दौर में बारह लेख हैं, "लोग भूल गये हैं" में के दौर में नौ लेख हैं। इन लेखों में कुछ यथार्थ से सम्बन्धित भेंट वार्तायें भी हैं।

" 1947 के बाद के कवियों में जो नाम साहित्य के फलक पर उभर कर आये हैं । उनमें रघुवीर सहाय का कवि ऐसे विशिष्ठ रचनाकारों की श्रेणी में है जिसने भाषा को काव्य की नहीं बल्कि अन्य प्रकार के वैचारिक सम्प्रेषण के लिए लगातार इस्तेमाल किया है। समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों को उसने अनेक लेखों टिप्पणियों और सम्पादकीयों में लिखा

है और कविता में भी यही उसका विषय रहा है। दोनों क्षेत्रों में उसे संकट के समय दिशा दी है।"[21]

" सीढ़ियों पर धूप में " के दौर में उन्होंने "ईमानदारी" नामक एक लेख लिखा है। ईमानदारी एक व्यापक गुण है, किसी भी क्षेत्र में हो ईमानदारी वास्तव में एक मौलिक गुण है । जैसे ज्ञान समस्त एक है तो ईमानदारी भी समस्त एक ही है क्योंकि यह केवल लेनदेन की विधि ही नहीं, एक मनोवृत्ति है या एक दृष्टिकोण है और इस बात की सच्चाई सीमेंट व्यापारी समझे या न समझे लेकिन लेखक जरूर समझ जायेगा।

लेखक कहता है कि "सबसे बड़ा आत्महनन जो किया जा सकता है वह है " लिखना" । अब हम कैसे बताये कि लिखना कितना बड़ा दर्द है, कितना बड़ा त्याग है बताना मुश्किल है क्योंकि वह कई एक ऐसी वस्तुओं का त्याग है जिन्हें साधारणतया कोई महत्व नहीं दिया जा सकता" ।[22]

लेखक कहता है कि जैसे ही मैं लिखने बैठता हूं तो सब कुछ भूल जाता हूं कि मैं कुछ रचने भी जा रहा हूं या नहीं, यह सन्तोष मानो परम हो गया और जहां परम सन्तोष है वहां रचना कहां। इस आशा में कि उस हानि ने जो शून्य निर्मित कर दिया है वह मुझे ग्रस न ले, क्या लिखना चाहता था वह भूल जाने पर भी। भूल गया हूं यह लिखने की शक्ति मुझसे छिन न जाये।

किसी भी रचना के लिए किसी न किसीरूप में वर्तमान से पलायन आवश्यक है। हर रचना का अपना-अपना शिल्प होता है। एक ही शिल्पावस्था में अब पहले की तरह बहुत दिन तक मन नहीं रह पाता ।

आज का कवि अपनी तात्कालिक प्रसिद्धि के लिए और अपनी जीविका के लिए भी यह देखना जरूरी हो गया है कि राजनैतिक समालोचकों

में से अधिकांश जो रचनात्मक व्यक्ति भी नहीं है अपनी क्या धारणा "नई कविता" के बारे में बनाये हुए हैं उन धारणाओं का उदाहरण इनकी कविता में मिलता है या नहीं। आम तौर पर कविताओं में जिसे "गहराई" कहा जाता है। वह अज्ञेय जी के शब्दों में प्रबुद्ध व्यक्ति की ऐसी मनस्थिति है जब वह आत्मश्लाघा की मनोवैज्ञानिक स्थिति के कारण उसे और भी उलझाने लगता है और अपने को विश्वास दिलाना चाहता है कि वह विचार में गहरा पैठ रहा है जबकि वास्तव में विचार को भावों के सागर में डुबाता रहता है। इसी प्रकार आदमी अपने को अपनी आत्मीयता में डुबो लेता है और इसी को गहराई समझने लगता है।"

"आत्महत्या के विरुद्ध का दौर" इस दौर में लेखक ने राजनीतिक उतार चढ़ाव व मानवीय करुणा को उजागर किया है। इस दौर में उन्होंने सामाजिक विद्रोह को लेखक ने अच्छी तरह पहचाना है। स्वतंत्रता के अनन्त गुमसुम वर्षों के जब जमीन का हिलना शुरू हुआ था तो विद्रोही मनुष्य को अपने पैरों पर खड़े न होने में मदद न देने का मतलब था कि न समाज के विद्रोह को समझना न साहित्य के विद्रोह को जानना।

लेखक के शब्दों में "मैं जानता हूं कि मुझे राजनीति की उथल-पुथल और उसमें पैदा होने के रास्ते के विकास में हिस्सा लेना है लेकिन मैं किसी राजनैतिक दल को, सत्ताधारी दल को तो और भी नहीं, यह अधिकार नहीं देता कि वह मुझसे मेरे कर्म की कैफियत मांगे। मैं जो करता हूं अपनी जिम्मेदारी पर करता हूं और मेरी बेईमानी की सजा मेरे साहित्यकार की मृत्यु है। पर यह दंड न तो मुझे दल के साहित्यिक आलोचक दे सकते हैं न साहित्य अकादमी के सलाहकार। यह दंड ठीक उसी तरह मेरी अपनी उपलब्धि ही हो सकता है जैसे साहित्य रचना ठीक मेरा अपना निर्णय है।"[23]

हँसो-हँसो जल्दी हँसो का दौर- इस दौर में लेखक ने परम्परा, परम्परा और प्रगति, समकालीन क्या है, टूटी हुई, बिखरी हुई एक प्रतिक्रिया, लेखक से बातचीत आदि लेख है। इन लेखों में लेखक ने राज-नीतिक xxxxxx सामाजिक विषयों पर बातचीत है। समाज में व्यापक रूप से स्वीकृत व समाज को बनाने या उजाड़ने वाली राजनीति में और कवि की राजनीति में अन्तर नहीं बताया है। उन्होंने अन्तर बताया है राजनीति में और संगठित राजनीति में। जब आप समाज में जन्म लेते हैं तो जो भी सामाजिक अधिकार, हवा, पानी आदि सब आपको स्वयं मिल जाते हैं क्योंकि वह आपका हक है. उन्होंने इंसान और इंसान के बीच एक गैरबराबरी के रिश्ते को माना है। अगर कोई आदमी यह मानता है कि यह रिश्ता ऐसे ही रहना चाहिए तो वह कभी भी कोई रचना नहीं कर सकता। अगर कोई इस रिश्ते को नष्ट करना चाहता है तो वह यह भी जानता है कि वह अकेले समाज मे कुछ भी नहीं कर सकता। लेकिन वह रचना करने में समर्थ अवश्य हो सकता है।

लेखक से बातचीत में लुत्से जी व रघुवीर सहाय की बातचीत उनके कविता संग्रहों पर की गई है।

"लोग भूल गये हैं का दौर- इस दौर में - कहानी का यथार्थ, राष्ट्रप्रेम और कवि, अपनी परीक्षा के लिए, आधुनिक कविता और संगीत , नदी की बाँक पर छाया, मुझको मिलते है अदीब, यथार्थ का अर्थ , और अन्त में रघुवीर सहाय और सुरेश - शर्मा की बातचीत को दिया गया है। लेखक ने कहा है कि यह दौर अभी -अभी शुरू हुआ है और अभी समाप्त भी नहीं हुआ है। अपनी कविता के वर्तमान दौर में से एक बार बाहर आकर अपनाअधूरापन पाठकों को दिखाने के पीछे समाज

के वर्तमान दौर का एक दबाव है जो कवि पर पड़ रहा है। "यथार्थ यथास्थिति में लेखक ने कहा है कि " समाज में लेखक के कर्म में और यदि राजनीतिक संघर्ष कर रहे हो तो उनके कर्म से भी संघर्ष के किसी दौर में यथार्थ का एक वर्णन पाठकों के मन में यथास्थिति के लिए अस्वीकार और प्रगति के लिए आग्रह जगा सकता है, परन्तु वही वर्णन संघर्ष के किसी दुर्बल तथा अस्पष्ट दौर में यथास्थिति के लिए स्वीकार और संघर्ष के लिए पराजय बन सकता हैं।"[24]

हम जिस दौर से आजकल गुजर रहे हैं वहां पर कई बार यथास्थिति का वर्णन होता है जिसे हम यथार्थ कहते हैं । यह यथार्थ का वर्णन यथार्थ नहीं बल्कि राष्ट्र द्रोह माना गया है। इसमें सार्थक तथ्य वही है जिसमें सबसे कम आदर्श और सबसे अधिक व्यवहारिक हो। ऐसे समय में बिगड़े हुए यथार्थ का कैसा वर्णन पाठक के मन में समाज से अन्याय को मिटाने की समझ देगा लेखक यदि यह बात समझ जाता है तो समझना चाहिए कि यथार्थ है।

इस संग्रह में सभी लेख यथार्थ से सम्बन्धित है।

प्रकाशक :- वाणी प्रकाशन
61-एफ, कमला नगर,
दिल्ली--110006.

अनुवाद :-
======

रघुवीर सहाय ने उपन्यास, कहानी, व नाटकों के अनुवाद भी किये हैं।

(1) शेक्सपियर का मैकबेथ नाटक का "बरनम वन" नामक शीर्षक से पद्यानुवाद किया जो ब० व० कारन्त के निर्देशन में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के रंगमंडल द्वारा खेला गया। सन् 1979 में यह अनुवाद प्रकाशित हुआ।

(2) शेक्सपियर का ट्वेल्थ नाइट का हिन्दी में पद्यानुवाद किया जो 1980 में प्रकाशित हुआ।

(3) तीन आधुनिक हंगारी नाटक - इन तीन नाटकों में - फेरेंत्स कारिंथी का "गर्म कमरा", इश्तवान अर्केनयू का "प्रियतम तोते" और इश्तवान चुरका का "लोकेशन पर" आदि है। यह सन् 1985 ई० में प्रकाशित हुआ।

(4) विवेकानंद - रोम्यारोला - यह अनुवाद सन् 1967 ई० में प्रकाशित हुआ था।

(5) बारह हंगारी कहानियाँ - उनका यह अनुवाद सन् 1972 में प्रकाशित हुआ था।

(6) राख और हीरे - यह येर्जी आन्द्रजेयवस्की के उपन्यास का अनुवाद है जो सन् 1978 ई० में प्रकाशित हुआ।

(7) द्रीना नदी का पुल - यह इवो आंद्रिच के उपन्यास का अनुवाद है। इसका प्रकाशन सन् 1985 ई० में हुआ।

(8) बिरजीस कदर का कुनबा - यह लोर्का का "हाउस आफ बर्नार्डा एल्बा" का उर्दू गद्य में अनुवाद किया। यह नाटक सन् 1980 में अमाल अल्लाना के निर्देशन में "बिरजीस कदर का कुनबा" नाम से खेला गया था। यह सन् 1985 ई० में प्रकाशित हुआ।

(9) आधुनिक हंगारी कविता – इसमें बत्तीस कवियों की कविताओं का अनुवाद संकलित है। जिसका प्रकाशन सन् 1989 ई० में हुआ।

(10) अप्रकाशित अनुवाद – (1) शेक्सपियर का – आथेलो, और बगरो बसन्त के नाम से " मिड समर नाईट ड्रीम, बुखनर का वोयजेक और आकुतागावा का नगोमन आदि प्रकाशित अनुवाद हैं। जो सभी विख्यात रंग मंडलों द्वारा अभिनीत हुए।

(ख)

रचनाकार के रूप में रघुवीर सहाय का विवरण :-

रघुवीर सहाय के रचनाशील व्यक्तित्व का बचपन में ही प्रमाण मिल गया था। जब उन्होंने सन् 1946 ई० में "कामना" शीर्षक से एक कविता लिखी इसके बाद 1947 ई० में "आदिम संगीत" कविता लिखी जो प्रकाशित भी हुई थी।

"रघुवीर सहाय के रचनाशील व्यक्तित्व की सबसे बड़ी खूबी शायद उनकी सम्पन्न और आत्मयुक्त जनतांत्रिक संवेदनशीलता ही थी। लेकिन उनकी शक्ति इस बात में नहीं थी कि वे जनतांत्रिक मूल्यों के "पक्षधर" उद्घोषक या वकील थे बल्कि इस बात में भी कि उन्होंने इन मूल्यों को निर्दिष्ट और इनके पक्ष को परिभाषित मानकर एक तरफ से आँखे मूंद लीं। उन्होंने किसी जड़ अमूर्तता में इन्हें ग्रहण नहीं किया ब्लिक ठोस सामाजिक आलोचना करते हुए बार-बार परखा। यह निरन्तर जागृत, सचेत, चीजों को उलटती पलटती, खोजती, बचाती और नष्ट करती हुई कठोर आलोचनाशीलता ही रघुवीर सहाय की संवेदनशीलता की की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है। जो विद्वान इसे "निरी आधुनिकता" (या नई कविता की बौद्धिकता"!) मानकर बड़ी आसानी से पल्ला झाड़ लेते हैं। वे यह नहीं देख पाते कि कवि ने इस विवेक को समाज के भीतर - मनुष्यों और संस्थाओं के आपसी सम्बन्धों के भीतर अत्याचार, अन्याय और पतन के अनगीन दृश्य-अदृश्य रूपों की वर्षों की व्यथा भी मुश्किल छानबीन के दौरान विकसित किया है।[125]

काफी दिनों से हमारे रचनाशील व्यक्ति यह भी जान चुके थे कि रघुवीर सहाय की रचनाशीलता उनकी दुनिया में न केवल किसी न किसी तरह सम्मिलित हो गई बल्कि उनका एक ऐसा जीवन और अनिवार्य हिस्सा बन गई है जिससे उनका मतलब बार-बार उनसे पड़ने लगा है। वे नये दौर के कवि थे जो एक अर्थ में अभी-अभी शुरू हुआ है। रघुवीर सहाय नये दौर के

कवि थे जो एक अर्थ में अभी-अभी शुरू हुआ है। रघुवीर सहाय नये दौर के रचनाकारों में सबसे अधिक संवेदनशील, विवेकशील, आधुनिक और प्रबुद्ध मध्य-वर्गीय तत्वों में थे। इनमें राष्ट्रीय नवजागरण की विकासशील, जीवित और श्रेष्ठ परम्पराओं का खोजपूर्ण और रचनाशील उपयोग करके उन्हें अग्रसर करने योग्यता और इच्छा थी कि उसको आसानी से कोई भी कुचल न सके।

रघुवीर सहाय अपने समकालीन रचनाकारों से इस बात से भी भिन्न थे कि उन्होंने अपनी आधुनिकता और अपने जनतांत्रिक आदर्शों को एक कहावत की तरह नहीं पाया था बल्कि उन्हें अपने रचनात्मक और सामाजिक व्यवहार में बार-बार खोजते हुए और स्थित करते हुए प्राप्त किया था। रघुवीर सहाय की यह रचनाशील व्यक्तित्व कई रूपों में देखा जा सकता है।
(1) कवि के रूप में, (2) कहानीकार के रूप में, (3) निबंधकार के रूप में, (4) पत्रकार के रूप में, (5) अनुवादक के रूप में ।

<u>कवि के रूप में रघुवीर सहाय का विकास :-</u>

रघुवीर सहाय की सबसे पहली कविता अभी तक "कामना" को माना जाता था। लेकिन रघुवीर जी की एक पुरानी डायरी में "अन्त का प्रारम्भ" एक कविता लिखी हुई मिली है। जिसकी रचना तिथि 22 अगस्त सन् 1946 ई0 है। इसी लिए उनकी सबसे पहली कविता इसी को मानना चाहिए। उनकी यह कविता "नवभारत टाइम्स" के साप्ताहिक रविवार्ता में संकलित है। उन्हीं की हस्तलिपि में यह कविता लिखी गई है।

इसके बाद सन् 1951 ई0 में "दूसरा सप्तक" प्रकाशित हुआ। जिसमें इनकी चौदह कवितायें छपी। "मैंने सन्×× 1947 ई0 में एक बार बच्चन की कविताएं पढ़ी और उनकी वेदना से मेरा कण्ठ फूटा। तभी से लिखना आरम्भ किया । कुछ समय बाद माथुर के कुछ सफल और कुछ असफल रंगों ने मुझे अपनी थोड़ी बहुत सामर्थ्य का बोध कराया और मैंने अपनी कला के प्रति सजग होकर लिखने की कोशिश की।[26]

रघुवीर सहाय ने इन कविताओं में सामाजिक यथार्थ को दर्शाया है और जीवन में होने वाली घटनाओं व स्थितियों का वर्णन, कहीं-कहीं पर प्रकृति से सम्बन्धित कवितायें भी हैं जैसे बसन्त, पहला पानी आदि।

"शमशेर बहादुर का यह कहना मुझे बराबर याद रहेगा कि जिन्दगी में तीन चीजों की बड़ी आवश्यकता (जरूरत) है: आक्सीजन, मार्क्सवाद और अपनी वह शक्ल जिसे हम जनता में देखते है।[26] लेकिन उनका दृष्टिकोण सामाजिक, वास्तविक, साम्यवादी था। उन्होंने अपनी कविता में शैली में ताल और गति का प्रयोग किया है। रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा को बोलचाल के अधिक नजदीक लाने की हमेशा ही कोशिश की है। ताल को और अधिक बोलचाल की ताल के जैसा प्रयोग उन्होंने, अनिश्चय, मुंह अंधेरे आदि में किये हैं। जिसमें उनको थोड़ी ही सफलता प्राप्त है और इसी में इन्होंने उर्दू की गति की बंधी हुई शैली को अपना सहारा बनाया है।

इसके बाद "सीढ़ियों पर धूप में" कविता संग्रह की कविताओं में उन्होंने, कवि के युग-जीवन की सामान्य, सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों, मन: स्थितियों, निरूपताओं, विसंगतियों और संघर्षों को व्यक्त किया है। इन कविताओं में अकेलेपन की मनस्थितियों का चित्रण कलाकार के "पॉजिटिव" अकेलेपन का परिचायक है जिसके द्वारा कवि सृजन के समय के लिए अपनी अस्मिता के लिए और अपनी अभिव्यक्ति के लिए छटपटाता है और उसे अपने लिए एक अलग "खाने" के रूप में सुरक्षित रखता है। जैसे - मेरा एक जीवन है........[27]

इनकी कविताओं में निजी जीवन के दुख और सुख भी हैं। जिनको कवि तटस्थ अनुभूति की मनस्थिति के रूप में व्यंजित करता है। कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों में प्रणयमूलक व्यंजनाएं हैं जिनमें श्रृंगारिक वर्णन है। जैसे -

तुम उसका क्या करती हो मेरी लाड़ली.....[28]

रघुवीर सहाय ने औसत मानसिकता और साधारण जीवन के जाने पहचाने चित्रों में नया अर्थ, नयी संगति देने का प्रयास किया है। कवि ने स्वयं उन विषयों पर भी लिखा है जिन्हें उन्होंने भोगा है। वह भोगी हुई

अनुभूति कवि की वैयक्तिक अनुभूति न रहकर सामूहिक बन जाती है।

रघुवीर सहाय की भाषा भवानी प्रसाद मिश्र जैसी सरल, अलंकार मुक्त, नंगी व बेलौस भाषा है। उनकी कविता में जैसा अनुभव है ऐसी ही भाषा है। साधारण बोलचाल की भाषा के मुहावरों, लहजों, वाक्यांशों शब्दों, बिम्बों और प्रतीकों को उन्होंने काव्य उपकरणों के रूप में व्यवहृत किया है रघुवीर सहाय ने सामान्य भाषा को काव्य भाषा के स्तर तक लाकर कवि के सामान्य अनुभूतियों को असामान्य के रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी कविताओं में ध्वनिमूलक शब्दों के माध्यम से व्यंग्य को उतारने का भी प्रयास है। जैसे होती, चेंज, घड़ी" पढ़िये गीता, जैसी कविताओं में इसी कारण से गंभीर व्यंग्य आ गया है। इनकी कुछ कविताएँ सपाट और अनुल्लेख्य हैं। दाता, प्रभु, दे दिया जाता हूं, जैसी कविताओं की काव्य चेतना अज्ञेय के काव्य जैसी है। इस संकलन की एक कविता, दे दिया जाता हूं ऐसी कविता है जिसमें अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता उदार खुलापन, गहन आत्मीयता और समीपता है।

"आत्महत्या के विरुद्ध" काव्य संग्रह में इनकी काव्य चेतना अलग माध्यम को लेकर चलती है। इस संकलन में कवि ने अपने ढंग से युग की विसंगतियों और विडम्बनाओं को भली भांति पहचान कर मूल्यहीनता को दर्शाया है। मोहभंग और आक्रोश की प्रवृत्ति साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों में से है जिनके माध्यम से साठोत्तरी पीढ़ी ने समसामयिक यथार्थ को पूर्ववृत्ति काव्य की अपेक्षा भिन्न स्तर पर अनुभूत किया है। रघुवीर सहाय ने इसी युग के बदलते यथार्थ को आत्मसात करके अलग स्तर पर अभिव्यक्त किया है। "आत्महत्या के विरुद्ध संग्रह में कवि ने व्यक्तित्व को नया आयाम दिया है।

इस संग्रह की कवितायें आज के ऐतिहासिक और सामाजिक यथार्थ की सही दस्तावेज है जो तिलमिलाती हैं और झिंझोडती हैं। राजनैतिक विसंगतियों के ऐसे चित्र अपनी चालू भाषा में कहीं दूसरी जगह मिलने अ असम्भव हैं। जैसे "गिरीश की मृत्यु" में, एक भारतीय अधेड़ आत्मा, और नयी हंसी में दिखाई पडते हैं। इनकी कविता में राजनीति की अर्थहीनता निजी बेचैनी, xxxxxxxx कसमसाहट और वे दृश्य भी हैं जो मन को छीलते हैं, दुखित करते हैं परन्तु हम उनको देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। इस संग्रह में उनकी कविताओं का परिवेश काल्पनिक परिवेश नहीं है बल्कि जीता जागता परिवेश है जो न तो झूठा है और न पुराना और गुजरा हुआ है। वो एक जागरूक, संवेदनशील और सजग व्यक्ति की xxx यथार्थ से सही संससर्गजन्य अनुभूतियों की कवितायें हैं।

साठोत्तरी पीढ़ी में मोहभंग की आवाज सन 1967 ई० के आस-पास सुनाई पड़ी। इसके मूल में अकेला चीनी xxx आक्रमण ही नहीं बल्कि पाकिस्तान का कच्छ पर आक्रमण, कच्छ न्यायाधिकरण दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय और ताशकंद घोषणा सहवर्ती तथ्य थे, जिससे बुद्धिजीवियों को मोहभंग हो गया। कवि ने संवेदनशील व्यक्ति के रूप में आम आदमी की घुटन और मोहभंग की व्यथा को सार्थक अभिव्यक्ती दी है।

राजनीति में जो गैर कांग्रेसवाद का दौर आया, उसमें सत्ता संघर्ष और दल-बदल की नीति अपनाकर देश और जनता को नुकसान हुआ। राजनैतिक अव्यवस्था की कुत्सित राजनीति ने दूसरे दौर में जनता को झिंझोड़ कर रख दिया। इस संग्रह की कविताओं का यही कुत्सित भयावह संसार है जिसमें यथार्थ और राजनीति की कुत्साओं से सीधा साक्षात्कार किया है। इनकी कविता में संसद का भोला भाला मंत्री, रामलाल, मुंधर मटकता मंत्री मुसद्दीलाल महन्त, तोंद मटका कर हंसती सभा, अकादमी की महापरिषद, पिटा हुआ दलपति सिसियाते कुलपति

भीमकाय भाषाविद्, फुटकते सम्पादक, भीड़ की मैलखोरी में गहन व्यंजनात्मक गरिमा है।

इनकी कविता में कथ्य में एक रमता है, किन्तु कविताओं में अन्तर्निहित नाटकीयता उसे निरस नहीं होने देती। इनकी कविताओं में निहित मानवीय संवेदनाएं कथ्य को मार्मिक बनाने में सहायक हुई है।

इस संग्रह की भाषा साधारण बोलचाल की आत्मीय, सहज और प्रभावी है सपाट सी भाषा दिखाई देते हुए भी नामों और संस्थानों के व्यंजनापरक प्रयोग और नाटकीयता से, रघुवीर सहाय की भाषा ने काव्य बोध के स्तर तक उठकर, समसामयिक यथार्थ को पूरी तरह अभिव्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। इनकी भाषा में निजी वैशिष्ठय है। अखबार की भाषा के माध्यम से युग की विडम्बनाओं और विसंगतियों को अनुभूति के सघन स्तर पर उतारने का साहसिक कार्य किया है। व्यंग्यपरखता से काव्य भाषा में अधिक तीखापन आ गया है।

"हँसो-हँसो जल्दी हँसो" काव्य संग्रह की कवितायें आपातकाल से पूर्व की कवितायें हैं। इस संग्रह की कवितायें करुणा, साहस , भय और आतंक के साथ मिलाकर एक अलग ही रूप ग्रहण करती हैं। एक दिन ऐसा आयेगा, किसी की कोई राय न रह जायेगी, क्रोध होगा पर विरोध न होगा। अर्जियों के सिवाय, खतरा होगा खतरे की घंटी होगी, और उसे बादशाह बजायेगा। "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" उनका अकेला ही काव्य संग्रह है जिसकी कोई भूमिका नहीं है। जैसा वह बिना किसी भूमिका के बोलने का संकटकाल है। संकट के समय के लिए भाषा की मुद्रा और कविता के लिए कुछ नई शैलियों का भी आविष्कार इन्होंने किया है।

क्या यह भाषा का ही एक खेल है? क्या यह एक सपाटबयानी है? यह संकट की एक ऐसी भाषा है जो अपनी तहों को छिपाकर ही अपने को

अधिक से अधिक खोलती है। इस संग्रह में अपने समय के भय दिखाने का साहस है। इनकी एक कविता "अतुकांत चन्द्रकान्त में" जनतांत्रिक चुनावों की तरफ संकेत किया है। वास्तविक वस्तुओं तक उन संकेतों को पहुंचाना है।" यह एक ऐसी कविता है जिसमें वास्तविक वस्तु कविता से बाहर है। हमारी स्मृति में हैं। आजाद भारत के इतिहास में है। संकट के समय जब शब्द-शब्द पर प्रतिबंध हो, जब चुटकले तक से बचना जरूरी हो क्योंकि "उसमें शब्द है" तो शब्द की तरह अपने रास्ते तलाश करता है।"[29]

इस संग्रह में भी व्यंग्य स्पष्ट रूप से झलकता है। "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" कविता में कवि कहता है कि हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है...... और तुम मारे जाओगे। यहां पर कवि ने व्यंग्यपरकता का वर्णन किया है। कुछ कवितायें तो इनकी गद्य-लय की चेष्टा है शिल्प की तरह संश्लिष्ट भी है और अर्थ व्यंजना के स्तर पर कई तहों को भी अपने में समेटे हैं। इनके काव्य में दो तरह की शैलियां हैं। एक और सघन गद्यात्मक लयात्मक, कुछ हद तक तुकान्त बुनावट जिसमें द्विवेदी युग और भारतेन्दु युग की वर्णनात्मकता भी है और नाटकीयता भी। ऊपर हल्की फुल्की दिखती तुकबंदी सी अन्दर-अन्दर करुणा आतंक और विडम्बना है। चौड़ी सड़क गली पतली थी, दिन का समय घनी बदली थी।"

"यह कविता संग्रह इनका सबसे अच्छा कविता संग्रह है। इसमें उनके सभी सामाजिक और नैतिक सरोकार पूरी सघनता से दिखते हैं और जिस पर दुर्भाग्य से बहुत कम बात हुई, आपातकाल से पहले की कविताओं का संकलन है।"[30] इस संकलन में बीस कवितायें ऐसी हैं जिनमें मनुष्य पर आने वाले संकटों के बारे में सूचना मिलती है।

"भाषण, राष्ट्रीय प्रतीज्ञा, अधिकार हमारा है जैसी अनेक कविताओं में रघुवीर सहाय ने जन प्रतिनिधियों की संवाद की कृत्रिम शैली और उन की

राजनीति पर विद्रूप और व्यंग्य के माध्यम से बहुत सशक्त प्रहार किया है। मनुष्य के अवमूल्यन को वे भाषा के अवमूल्यन से दिखाते हैं।" [31]

"लोग भूल गये हैं" की कवितायें वर्तमान-दौर में लिखी गई कवितायें हैं।

आज अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियों ने मानवीय रिश्तों को बिगाड़ने की प्रक्रिया में वह स्थिति पैदा कर दी है कि अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले जन मानवीय अधिकार की अपनी हर लड़ाई को एक पराजय बनता हुआ पा रहे हैं। संघर्ष की रण-नीतियां उन्हीं के आदर्शों की पूर्ति करती दिखाई दे रही है जिनके विरुद्ध संघर्ष है क्योंकि का आधार नये मानवीय रिश्तों की खोज नहीं रह गया। [32]

उनकी कविताओं में आधुनिकतावाद की अनेक प्रवृत्तियों का प्रत्या-ख्यान है। वह यथार्थ का सिर्फ वर्णन ही नहीं करती, बल्कि यथार्थ का, उसके सच का अन्वेषण करती है।" कविता तभी होती है जब वह विषय से दूर और वस्तु के निकट हो।" इसलिए इस संग्रह में वर्णन कम है, दृश्य से अपनी टिप्पणियां अधिक है। इनमें एक खतरा भी रहता है कि कविता कहीं हर चीज की " फिलासिफाई" न करने लगे।

एक धनी नफरत और साधारण लोगों से बचने की भावना इन तमाम बूढ़े और अटंगे मकानों को बनाती चली जाती है। यह संस्कृति इसी तरह के शहर गढ़ेंगी। [33]

इस संग्रह की बहुत सी कवितायें एक तरह के निबंध हैं। इन्हें हम निबंध कविता भी कह सकते हैं। इनकी कविताओं में एक ही विचार के

इर्द-गिर्द सोच का सिलसिला नहीं है। इस संग्रह का केन्द्र सांस्कृतिक परिदृश्य और समाज में पैदा हुई हिंसा की राजनीति है। एक तरज से सांस्कृतिक राजनीति और राजनीतिक संस्कृति। संवेदनात्मक चिंतन की इस निबंधात्मक कविता शैली में मुखर नाटकीयता की गुंजाइश कुछ कम है।

कला बदल सकती है क्या समाज ? नहीं जहां बहुत कला होगी परिवर्तन नहीं होगा। इस सांस्कृतिक परिदृश्य में शासक के द्वारा पैदा किये जा रहे पुनरूत्थानवाद पर लोक कला के आडम्बर पर और सारे पाखंड पर रघुवीर सहाय की दृष्टि बहुत स्पष्ट है।

रघुवीर सहाय ने कहा है कि "न्याय और बराबरी के लिए हम जिस समाज की कल्पना करते हैं उसमें मानवीय रिश्तों की शक्ल क्या होगी यह उस समाज के लिए संघर्ष के दौरान ही तय होना चाहिए। कवि इस संघर्ष में बार-बार मानवीय रिश्तों की खोज करेगा और उनको जांचेगा, सुधारेगा बनायेगा और फैलायेगा। ये संम्बन्ध हृदय परिवर्तन से नहीं बनेंगे, संघर्ष के नतीजों की बार-बार जांच से बनेंगे। जहां तक हृदय का सवाल है, कम से कम मुझे दृढ़ आस्था है कि लोग न्याय और बराबरी के जनमजात आदर्श को नहीं भूलते। इतिहास के किसी दौर में कुछ लोग अवश्य इन्हें भूल जाते हैं, पर उन्हें याद कराने के लिए उनसे कहीं बड़ी संख्या में मनुष्य जीवित रहते हैं। [34]

इनकी मुख्य कवितायें, कला क्या है, भविष्य, लोग भूल गये हैं, पहचानना आदि है। "पहचानना" कविता में बहुत सपाटे से वाक्यों को पढ़ा नहीं जा सकता।, कामा, अर्धविराम या पूर्णविराम भी यहां नहीं, जो बाहर से कुछ अंकुश लगाये। अगर हम तेजी से पढ़ें तो हमें लगेगा कि यह कैसा वाक्य है न तो अर्थ ठीक-ठीक पकड़ आयेगा और न कोई

सौन्दर्य ही खुलेगा।

इनकी कविता में कहानी तत्व का उपयोग तो पहले भी हुआ लेकिन सहाय जी ने इस कथा तत्व की बजाय एक किस्म की निबंधात्मकता का उपयोग अपनी बाद की कविताओं में किया है। इनमें विवरणात्मक शैली है और विश्लेषणात्मक शैली भी।

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" की कविताओं में कवि कहता है कि "अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियों ने जब ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले अपनी हर लड़ाई में उन्हीं के आदर्शों की पूर्ति करते दिख रहे हैं। जिनके विरुद्ध संघर्ष है, तब रचनाकार इस संघर्ष में अपनी हिस्सेदारी कैसे निभाऐ। [35]

इनकी "कविता" के वर्गीय चरित्र को धिक्कारती हुई क्रूरता के लिए हरदम जमीन देने वाली तथाकथित, "मानवीयता" को उधेड़ती है। ऐसी कवितायें यथास्थिति को समर्थन देने वाले निष्क्रिय आदर्शों और मानव मूल्यों को उनकी पूरी असलियत में जानती हैं। काव्य विषय में अपनी विशेष प्रकार की संलग्नता के कारण कवि उसे किसी आयोजित प्रकार की संलग्नता के कारण कवि उसे किसी आयोजित प्रकार के क्रान्तिकारी परिणाम तक नहीं पहुँचा सकता बल्कि उनकी यही जुड़ाव उसकी कविताओं को विश्वसनीयता देता है। इनकी कविता का मुख्य स्वर आलोचना का है। वह लिखता है कि "सुगरी मुस्काने, कष्ट की कथायें हैं, सामाजिक चेतना। इन्तजार! इन्तजार! [36]

कवि की कविताओं में उपस्थित समाज ज्यादातर पढ़े-लिखे सभ्यता के ढांचे में कसे मध्यवर्गीय लोगों का समाज है जिनकी जिन्दगी में "रूटीन"

की जरूरत है, इनकी प्रतिक्रियाओं, हरकतों और पोशाकों का वर्णन है। औरतों पर भी कवि ने कई कवितायें लिखी है। इन कविताओं में समकालीन संस्कृति और समाज के नासूरों की टटोल है मेरी बेटी, हकीम हकीम और औरत, पागल औरत, दयावती का कुनबा, बच्चे की मां, गदराई लड़कियां, वृद्ध का वक्तव्य, विदाई, कस्बे में दिन ढले, दो छोटे बच्चे, परिवार आदि सभी कविताओं में औरत है। इस दुनिया में, इस देश में, इस समाज में और इस परिवार में, जुल्म की शक्ल सिर्फ औरत ही बताती है। मर्द महज सब लोगों जैसा हो जाता है।[37] बच्चों के लिए भी उन्होंने कई कवितायें लिखी है। अब बड़े होने पर जानता हूं, बच्चे, बड़े होते जाते हैं। लेकिन सुरक्षित नहीं होते।

इस प्रकार रघुवीर सहाय की कवितायें कठिन संकटकाल की कवितायें हैं। यह संकट उनमें गहरे भिदा हुआ है। यह संकट वक्त का भी है और व्यक्ति का भी। रचना की अन्तर्वस्तु का भी है और अभिव्यक्ति का भी। इस संकट में कवि तय करता है कि जरूरी ठिकानों पर कुछ चिट्ठियां लिखी जाये।[38]

रघुवीर सहाय ने कविता के शिल्प और भाषा तथा उसके प्रभाव को लेकर कभी-कभी यह अतिरिक्त सी दिखाई देने वाली चिन्ता का एक कारण तो यह हो सकता है कि उन्हें अपना सम-कालीन कविता संसार हमारे कठिन समय को सही अभिव्यक्ति देने में असमर्थ प्रतीत हो रहा था। छन्दों को भी तोड़-मोड़ कर प्रयोग किया। इनकी जटिल यथार्थ की चर्चा के बावजूद अधिकतर कवितायें, सुन्दर बिम्बों, सुन्दर या चौंका देने वाली सूक्तियों का चमत्कारिक शब्द प्रयोग पर आधारित है। इनकी कुछ कवितायें बहुत छोटी है। उन्हें हम लिपिक कवितायें कह सकते हैं। कवि ने बहुत ही यत्न पूर्वक अपनी कविताओं को काव्य रचना के प्रचलित भाषा संस्कार से अलग करने के की कोशिश की है और उनको "बोधगम्य दुरूहता" तक पहुँचाना चाहा है। " भाषा के अनेक प्रकारों पर व्यवसायिक और राजनैतिक कब्जे ने भाषा की रचनात्मकता को अनेक प्रकार से

से कुंठित और विकृत किया है।" भाषा की रचनात्मकता को बनाये रखना या हमेशा उसे नये स्तर पर उपलब्ध करना कवि का पहला कर्त्तव्य है। "खड़ी बोली" कविता में भाषा की रचनात्मकता उसकी जीवन्तता के कुंठित होने के खतरे के प्रति ही सचेत करते हैं। कविता बनाकर मैं.... जिसको परम्परा देती थी[39]

इस संग्रह की कवितायें अपने पाठक और आलोचक से अधिक ईमानदारी, संवेदनशीलता और ईमानदारी की मांग करती है।

§2§ कहानीकार के रूप में विकास :-

रघुवीर सहाय एक सफल कहानीकार भी है। लेखक की सबसे पहली कहानी "एक जीता जागता व्यक्ति" है। इस कहानी के शुरू में ही वाचक अपना यह विचार रख देता है कि उसे समानता के मूल्य के साथ जीना ही अच्छा लगता है।

"लोगों को ही देखो, क्या यह कम रोचक है कि किसी भीड़ है और सब अपने-अपने रास्ते जा रहे हैं और किसी को परवाह भी नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूं, क्योंकि मैं उन्हें देखता हूं लेकिन हस्तक्षेप नहीं करता। देखोन्, इस तरह मुझे भी औरों के साथ एक अस्तित्व मिल जाता है और वे सब ज्यादा से ज्यादा स्वतंत्र रहते हैं क्योंकि कम से कम दखल देते हैं।

इसी कहानी में एक परिस्थिति ऐसी आती है कि उसको हस्तक्षेप करने के लिए मन बनाना पड़ता है। सड़क पर एक चिड़ियां तारकोल में फंस गईथी और वह पंख फड़फड़ा रही थी। वह अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष

कर रही थी। वाचक का मित्र उसको सहायता करने के लिए कहता है परन्तु वाचक अपने पर पूर्ण नियंत्रण रखता है और कहता है कि यह इस समय पूर्ण संघर्ष कर रही है जसे उसने जरूरी समझा हो और जैसे वह ही कर सकती है। उसे करने दूं ? जैसे उसे सुखकर होगा। अन्त में उसने चिड़िया को अपने बूते पर ही स्वतंत्र होने दिया।

इसके बाद, इन्द्रधनुष, उमस के बाहर उसी समय की लिखी कहानियां जिस समय 'एक जीता जागता व्यक्ति' लिखी गयी थी। सेब, कहानी की कला, मेरे और नंगी औरत के बीच, रास्ता इधर से है, एक छोटी सी यात्रा आदि उनकी महत्वपूर्ण कहानियां हैं।

रघुवीर सहाय की कहानी की रचना प्रक्रिया के बारे में उन्होंने अपनी एक कहानी, कहानी की कला में इस बात को ऐसे रखा--

"कला यह नहीं है कि किसी गुण को प्रदर्शित करने के लिए दुर्गुणों को अतिरंजित कर दिया जाये --न कला यही है कि जब कोई स्वाभाविक घटना घटे तो उसका ऐसे वर्णन किया जाये कि हम चौंक उठे। कला तो यह है कि उसमें रत मानवों के पारस्परिक सम्बन्ध को तुरन्त देख सके, जहां कोई ऐसा नहीं कर पाता, वहां उसे तरह-तरह के प्रयोगों का आश्रय लेना पड़ता है, जहां कोई ऐसा कर पाता है, अर्थात जीवन की सहज मानवीयता को देख पाता है और उससे कौतूहल नहीं, आनंद ग्रहण पाता है वहीं सच्ची कला का जन्म होता है।" [40]

रघुवीर सहाय ने ~~xxxxx~~ समानता के बोध को कला की रचना प्रक्रिया पर घटित किया है हम यह भी जानते हैं कि आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं उसमें अनेकों बार यथास्थिति का वर्णन यह प्रभाव उत्पन्न करता है कि सब कुछ इतना भयंकर है एवं शक्ति का भी बहुत अधिक केन्द्रीयकरण हो रहा है कि किसी भी आदर्श के लिए प्रयत्न तो दूर की बात है इच्छा

करना भी बेकार है इसलिए सबसे अधिक सार्थक वही है जो सबसे कम आदर्श और सबसे ज्यादा व्यवहारिक हो।

आजकल, आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास की चर्चा में यदि आधुनिकता पर बल दिया जा रहा हो, तो पहले दो तीन नामों में रघुवीर सहाय का नाम लेना बहुत ही आवश्यक है। कदाचित पहला नाम भी उनका हो सकता है।

"उनकी सरल, साफ-सुथरी और अत्यन्त सधी हुई भाषा इसके सर्वथा अनुकूल है। उसका संस्कार शहरी है तो किसी कृत्रिमता के अर्थ में नहीं, अच्छे घर में रोज काम आने वाले बर्तनों में मंजते रहने के कारण जो चमक होती है- जो उन्हें आलमारी में सजाने की प्रेरणा न देकर सहज व्यवहार में लाने की प्रेरणा देती है - कुछ वैसी ही प्रीतिकर सहज ग्राह्यता उनकी भाषा में है । हम लोग यह मानने के आदी हैं कि हिन्दी खड़ी बोली के नाते मेरठ- दिल्ली अंचल की भाषा है, और निसन्देह उसको प्रतिष्ठा देने में बनारस का योग भी कम महत्व का नहीं रहा, और इलाहाबाद तो हिन्दी का गढ़ ही है, पर हिन्दी के बोले जाने वाले रूपको जो संस्कार और निखार लखनऊ ने दिया है उसे अलग से स्वीकार करना चाहिए। [41]

"जो आदमी हम बना रहे हैं" यह उनका कहानी संग्रह है। जिसमें उनकी सभी कहानियों को एक-साथ रखा गया है। यह कहानी का नायक, उसकी जगह उसका काम करने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जायेगा। यही आज के समाज की राजनैतिक परिस्थिति का रचना द्वारा उत्तर दिया गया है।

समाज में कुछ ऐसे तत्व भी कार्य करते रहते हैं। जिनके राजनैतिक उद्देश्य समता के, न्याय के, और अधिकार के विरुद्ध रहते हैं। लेखक के बार-बार सत्य को बताने पर यह आक्रमण के विरुद्ध आवश्यक होता है। लेकिन हर बार फिर सत्य को दोहराकर ही काम नहीं चलाया जा सकता क्योंकि इसी बीच में जो यथार्थ में बदलाव आया है वह असमता, अन्याय और शोषण और दमन के विरुद्ध एक नये कार्यक्रम की आवश्यकता पर बल देता है। यह कार्यक्रम इतना ही व्यापक होता है कि लिखना ही सब कुछ नहीं है बल्कि इसमें एक संगठित राजनीति भी होनी चाहिए।

इस प्रकार रघुवीर सहाय कहानीकार के रूप में भी हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध है। उनकी कहानी नये-नये विचारों को लेकर चलती है और उनका हल खोजने का भी प्रयास करती है।

(3) निबंधकार के रूप में :-

रघुवीर सहाय जी निबंधकार के रूप में भी ख्याति प्राप्त लेखक हैं। उनका सबसे पहला निबंध संग्रह " दिल्ली मेरा परदेस " है। जिसमें लेखक ने समय-समय पर राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन किया है।" 1960 और 63 के बीच आम तौर से भारत-चीन संघर्ष ही एक ऐसी घटना है जो इतिहासकारों को याद आती है, पर वह भारतीय समाज में जो कुछ हो रहा थां उसका सीधा परिणाम नहीं थी। ज्यादा सही यह कहना होगा कि उसका असर समाज पर जब पड़ा तो बहुत कुछ ऐसा हो रहा था उसका सीधा परिणाम नहीं थी। ज्यादा सही यह कहना होगा कि उसका असर समाज पर जब पड़ा तो बहुत कुछ ऐसा : दिखने

....141

लगा जो अभी तक छिपा हुआ था। यह घटना सिर्फ चौंकाने वाली नहीं, अनेक प्रकार से हमारे समाज को नई चेतना देने में समर्थ थी, किन्तु "राजनैतिक राष्ट्रीय एकता" के अतिरिक्त उसका और कोई प्रत्यक्ष उपयोग शायद नहीं हो सका।"[42]

उस समय नेहरू प्रत्येक नये कार्य के प्रेरक माने जाते थे। अपने स्वर्गवास के तीन दिन पहले अपने मासिक संवाददाता सम्मेलन में उन्होंने एक कागज पर उस दिन के जो महत्वपूर्ण विषय पेंसिल से तारे थे -- उनमें चीन से बातचीत, शेख अब्दुल्ला का पाकिस्तान जाना और चौथी योजना आदि।

लेखक ने यहां पर डेढ़ सौ निबंधों को लिखा है, जिनमें सामाजिक चेतना है। इस संग्रह का शीर्षक "दिल्ली मेरा परदेश" लेखक ने क्यों बताया है। वह कहता है कि दिल्ली किसी का भी देश नहीं हो सकता। क्योंकि इसकी अपनी कोई संस्कृति नहीं है और न ही कोई भाषा। लेकिन इसमें एक परदेसीपन की झलक हम अवश्य ही देखते हैं। क्योंकि यहां पर एक अजब तरह का एकान्त है जिसमें आप भीतर, बाहर कहीं भी जाओ आपको कोई देखने वाला नहीं है। उस समय राजनीति में सिर्फ एक ही सवाल बार-बार सामने आ रहा था कि नेहरू के बाद कौन आयेगा।

लेखक ने, राजरथ के तले, पथरीला पत्थर, भाषा भूचाल, धूप छाया धूप, संस्कृति की झुरझुरी, लघुमानव: शिशु, भारी भरकम चेहरे आदि में नेहरू के समय की परिस्थितियों को उजागर किया है।"सीढ़ियों पर धूप में" भी इनके कुछ निबंध संकलित हैं जो "दिल्ली मेरा परदेश" से पहले लिखे गये थे।

"लिखने का कारण" निबंध संग्रह में उनके निबंध और उनके विचार भी समेट कर रखे गये हैं। उनका एक लेख साहित्य के समाज और राज्य से सम्बन्ध का है और दूसरा भाषा के साहित्येतर उपयोगों का है।

यह कभी भी आवश्यक नहीं कि सभी लेखक राजनीति से प्रतिबद्ध होकर रचना करे, परन्तु राजनीति से अपना सम्बन्ध छिपाकर लेखक को सम्भव ही नहीं है। साहित्य के समाज और राज्य से सम्बन्ध का प्रश्न कोई अराजनैतिक प्रश्न नहीं है, वह समाज में मनुष्य की परिस्थिति उस भविष्य का निर्णय करता है इसी प्रकार भाषा का साहित्येत्तर उपयोग भी मनुष्य के मूल अधिकारों के उपयोग का प्रश्न है, इस सब विषयों में लेखक की कितनी और कैसी आसक्ति है, यह जानना पाठक को अनावश्यक बोझ महसूस नहीं होगा ।

लेखक कहता है कि सबसे बड़ा आत्महनन जो किया जा सकता है वह है " लिखना" । अब हम कैसे बतायें कि लिखना कितना बड़ा दर्द है, कितना बड़ा त्याग है। बताना मुश्किल है क्योंकि वह कई एक ऐसी वस्तुओं का त्याग है जिसमें साधारणतया कोई महत्व नहीं दिया जाता ।

कितना मोह है जीवन से। जानता हूं कि जैसे सभी जीते हैं, जीया करते हैं वैसे जीने में कोई कर्म नहीं है मजदूरी ही है -- "कर्म", "रचना", "सर्जन" छोटे शब्द प्रयोग किये जाये या बड़े, उस व्यापार की जो महत्ता है वह है।[43] इस निबंध संग्रह के अन्त में रघुवीर सहाय की अशोक वाजपेयी और मंगलेश डबराल से बातचीत भी है। जो उनके कविता संग्रहों के बारे में है। इनके निबंधों की भाषा सरल, और शैली साहित्यिक, और आलोचनात्मक रही है। उन्होंने अभिव्यक्ति शैली का भी प्रयोग किया है।

"ऊबे हुए सुखी" भी इनका एक निबंध संग्रह है। सन् 1947 से आज

तक हम सबने मिलकर जो कार्य किये और आज क्या कर रहे हैं यह हमारी चिन्ता का एक विषय होना चाहिए। राज्य और समाज से हमारे क्या सम्बन्ध हैं, व्यक्ति और व्यक्ति से हमारे कैसे सम्बन्ध हैं, आगे हम कैसा राज्य और समाज बनाना चाहते हैं। इन सब विषयों की तरफ हमें अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। जिस समय लेखक ने ये निबंध लिखे उस समय उसको भारतीय समाज की चिन्ता थी।

लेखक ने भूमिका में कहा है कि "आजादी के बाद से राज्य की शक्ति से होने वाले आर्थिक विकास के लाभ इस प्रकार बँटे हैं कि दो संस्कृतियों का टकराव बढ़ता रहा है। एक आविष्कार की संस्कृति है और दूसरी अनुकरण की। आविष्कार की संस्कृति समता और न्याय को आदर्श मानकर परम्परा को पहचानते हुए शिल्प शैलियाँ और उपाय खोजना चाहती है जो जनता को गुलामी से मुक्त करें।" 44

इस संग्रह में भी लेखक ने सामाजिक व राजनैतिक स्थितियों का वर्णन किया है। यहां पर उन्होंने राजनीतिक व्यक्तियों, गांधी, नेहरू, आदि का वर्णन किया है। मजदूरों और समाज में हो रहे अत्याचारों का खुलकर विरोध किया है। रघुवीर सहाय जी लोहिया और जयप्रकाश नारायण के समर्थकों में से एक थे। हिन्दी - अंग्रेजी आदि भाषाओं का भी वर्णन किया है। लोहिया हिन्दी के समर्थक थे। इनकी भाषा सरल और व्याख्यानात्मक शैली से युक्त है। आलोचनात्मक शैली भी इनकी मुख्य शैली है।

भंवर लहरें और तरंग भी इनका ऐसा ही निबंध संग्रह है। जिसमें राजनीतिक व्यक्तियों और कांग्रेस पार्टी का खुलकर वर्णन किया है। वे

कांग्रेस के विरोधी नहीं थे। उस समय कांग्रेस पार्टी समाज सुधार के कार्यों में रमी हुई थी। जिससे शोषित दलों पर गहरा प्रभाव पड़ा। कहीं-कहीं पर इन निबंधों में कांग्रेस पार्टी की आलोचना भी की गयी है। क्योंकि उस समय समाज की ताकतवर हस्तियां कमजोर वर्गों की हत्याएं और यातनाएं दे रही थी। लेखक कहता है कि जिस राजनीतिक व्यक्ति के हाथ में देश की बागडोर आ जाती है वह समाज में गरीबी और गुलामी का युग लाना चाहता है। उनका नारा गैरबराबरी हटाओ नहीं "गरीबी मिटाओ था।

जयप्रकाश नारायण तो पहले से ही कांग्रेस विरोधी थे उन्होंने देश की आजादी में भी बहुत बड़ा योगदान प्राप्त किया था। उनका एक ही नारा था कि "हम विधान सभा भंग करेंगे।" वे हमेशा गरीबों की सहायता करने में जुटे रहते थे। वे चाहते थे कि देश में गरीबी और अमीरी की प्रथा को समूल नष्ट कर दे। लेकिन राजनीतिक हस्तियां उनका हमेशा विरोध करती रही। रघुवीर सहाय के प्रमुख निबंध, तोड़ो और बनाओं, मानवाधिकार, केंद्रिय राजनीति का बिखराव आदि है। इनके सभी निबंध सरल भाषा और एक जैसी ही शैली में लिखे गये हैं।

"वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे"—इस संग्रह में लेखक का विचार है कि "जब मैं बीते रास्ते की तरफ देखता हूं तो मुझे अनेक लोकतंत्रीय मान्यताओं और मूल्यों के पतन को रोकने की एक लम्बी और बार-बार अधूरी कई बार विफल यात्रा के पड़ाव दिखाई देते हैं।[45] जो मारे जाते हैं वे गैर तो नहीं होते। लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि हम अपनों से ही पराये हो जाते हैं। परन्तु निरा अपनापा भी कोई मतलब नहीं रखता क्योंकि निरी करुणा और दया भी सच्ची मानवीय नहीं हो सकती।

इन लेखों में लेखक ने काल खण्डों का भी वर्णन किया है। इनके मुख्य लेख हिन्दू गरीबी-मुस्लिम गरीबी, भारत-पाक रिश्ता, पुलिस का बेजा इस्तेमाल, राजनैतिक हिंसा के विरुद्ध, नीति चाहिए हिंसा नहीं, माया त्यागी को भूल जाओ, गरीबों तुम बहुत हो गये हो, जो आदमी हम बना रहे हैं।

रघुवीर सहाय अपने समस्त जीवन में गरीबों पर हो रहे अत्याचार के विरोध में लड़ते रहे, और उन्हीं को अपना विषय बनाकर रचना करते रहे शोषण की दासता से मुक्त जनता जिस देश में हो वही देश एक बहुत बड़ी शक्ति बन सकता है, अन्यथा वह बड़ी शक्तियों को पूरा करने का एक माध्यम बन कर रह जायेगा । 8 अगस्त और 15 अगस्त के दिन की बहुत बड़ी हानि होगी। .. उन्होंने अपने प्रत्येक संग्रह में औरतों के खिलाफ आवाज उठाई है उन पर हो रहे अत्याचार को खत्म करने के उपाय बताये हैं। हिन्दू -मुस्लिम दंगे हमारे देश में हमेशा से होते आये हैं। वे दंगों के बिल्कुल खिलाफ थे। वे अपने शीर्षक में कहते हैं कि "वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे " अर्थात इस समाज में ऐसी घटनायें मनुष्य कभी नहीं करेंगे जिससे उन्हें फांसी के फंदे पर झूलना पड़े।

इनके निबन्धों में समय-समय पर राजनीतिक, सामाजिक, घटनाओं का विकास होता ही रहा है और वे उनका सामना भी डटकर करते रहे। उनका एक निबंध "यथार्थ यथास्थिति नहीं" है। जिसमें लेखक ने यथार्थ सम्बन्धी लेखों व भेंटवार्ताओं का वर्णन किया है। इस संग्रह में कुछ निबंध "सीढ़ियों पर धूप" में " व लिखने के कारण " में ही लिखे गये हैं यहां पर उनके लेख , वक्तव्य, और भेंट वार्ताए उनकी "यथार्थवादी दृष्टि" की पहचान करायेंगी। इन्होंने "सीढ़ियों पर धूप में का दौर"

में ईमानदारी, ईमानदारी के बाद, कविता और करूणा, रचना-प्रक्रिया आदि निबंधों का रखा है। जो उनके विकास में एक उपलब्धि है। "आत्म-हत्या के विरूद्ध" का दौर में उन्होंने "आत्म-निरीक्षण, स्वतंत्रता के दिनों का संकट और मैं, भीड में रचना, साहित्य की दो तरफा जिम्मेदारी। आदि निबंधों को लिया है।

उनका एक कथन इस प्रकार है--

मैं जानता हूं कि मुझे राजनीति की उथल-पुथल और उससे पैदा होने वाले रास्ते के विकास में हिस्सा लेना है मगर मैं किसी राजनीतिक दल को, सत्ताधारी दल को तो और भी नहीं, यह अधिकार नहीं देता कि वह मुझसे मेरे काम की कैफियत मांगे। मैं जो करता हूं अपनी जिम्मेदारी पर करता हूं, और मेरी बेईमानी की सजा मेरे साहित्यकार की मृत्यु है। पर यह दण्ड मुझे न तो दल के साहित्यिक आलोचक दे सकते हैं और न साहित्य अकादमी के सलाहकार। यह दंड ठीक उसी तरह मेरी अपनी उपलब्धि हो सकता है जैसे साहित्य रचना ठीक मेरा निर्णय है।" [46]

इसके बाद "हंसो हंसो जल्दी हंसो" का दौर प्रारम्भ होता है। इसमें उनके मुख्य लेख, परम्परा, परम्परा और प्रगति, लेखक से बातचीत रघुवीर सहाय से लाहौर लुत्से का साक्षात्कार, लेखक से बातचीत अशोक वाजपेयी और मंगलेश डबराल से बातचीत आदि है।

अशोक वाजपेयी की और मंगलेश डबराल की बातचीत उनके काव्य संग्रहों के बारे में है।

"लोग भूल गये हैं" के दौर में लेखक ने राष्ट्र प्रेम आर कवि, अपनी परीक्षा के लिए, आधुनिक कवि और संगीत, "नदी की बांक पर छाया"

§अज्ञेय§, मुझको मिलते है अदीब - §शमशेर§ व सुरेश शर्मा का रघुवीर सहाय से साक्षात्कार दिया गया है।

निबंधकार के रूप में रघुवीर सहाय का महत्व निश्चित रूप से हैं। एक कुशल शिल्पी की तरह उन्होंने अपनी भाषा-शैली को व्याख्यात्मक आलोचनात्मक रूप प्रदान किया है।

अनुवाद-कार के रूप में रघुवीर सहाय का विकास--

"रघुवीर सहाय" ने कवि, कहानीकार, निबंधकार होने के साथ ही साथ अनुवादकार के रूप में भी प्रसिद्धि प्राप्त की। अनुवाद-कार के के रूप में उनका विकास क्रमशः इस प्रकार है। इन्होंने सर्वप्रथम, विवेकानंद रोम्यारोला, बारह हंगारी कहानियाँ, "राख और हीरे" उपन्यास येर्जी आन्द्रजेयेवस्की द्वारा लिखित, शेक्सपियर के मैकबैथ नाटक का बरनम वन नाम से पद्यानुवाद, शेक्सपियर के ट्वैल्थ-नाईटका हिन्दी में पद्यानुवाद तीन आधुनिक हंगरी नाटक, फेरेंत्स कारिथि का गर्म करना, इस्टवान अर्केन्यू का प्रियतम तोत, चुरका का लोकेशन का हिन्दी में अनुवाद, " "बिरजीस कदर का कुनबा" नाम से, लोकी का हाउस और वर्नार्डा एल्वा का उर्दू गद्य में, तथा आधुनिक हंगारी कविता में इन्होंने बत्तीस कवियों की कविताओं का अनुवाद किया है। "द्रीना नदी का पुल" नामक उपन्यास इवो आंद्रिच द्वारा लिखित का हिन्दी में अनुवाद किया।

इनके कुछ अप्रकाशित अनुवाद भी हैं। शेक्सपियर का ओथेलो और बगरों बसन्त के नाम से मिड समर नाईट ड्रीम, बुधनर का वोयजेक और आकुतागावा का रशोमन आदि अप्रकाशित अनुवाद है। जो विख्यात

रंग मंडलों द्वारा अभिनित किये जा चुके हैं।

इस प्रकार रघुवीर सहाय अनुवादकार के क्षेत्र में भी किसी से कम नहीं है।

पत्रकार के रूप में रघुवीर सहाय का विकास :-

साहित्य के क्षेत्र में रघुवीर सहाय जी की पत्रकारिता निश्चय ही एक अपवाद थी। सर्वप्रथम वे मई 1951 ई० में "प्रतीक" में सहायक सम्पादक होकर दिल्ली आये थे। अगस्त के महीने में "प्रतीक" बन्द हो गया। इसके बाद वे दिल्ली में ही मुक्त लेखन करते रहे। सन् 1953 ई० में वे आकाशवाणी के समाचार विभाग में उपसंवादक बने। इन्होंने मार्च 1957 ई० में आकाशवाणी से त्यागपत्र दे दिया। सितम्बर तक वे मुक्त लेखन करते रहे। मुक्त लेखन करते हुए लखनऊ से निकलने वाली पत्रिका "
"युगचेतना" के दिल्ली प्रतिनिधि रहे। "युगचेतना" के जून-जुलाई अंक में "हमारी हिन्दी" कविता छपी। इस कविता को लेकर लखनऊ के सरकारी हिन्दी सलाहकारों में बावेला मच गया। विद्यानिवास मिश्र उन दिनों सूचना विभाग में उपनिदेशक थे। उन्होंने पत्रिका की सरकारी खरीद की चार सौ प्रतियां खरीदने से मना कर दिया। शिवसिंह सरोज ने इस पत्रिका की प्रतियां जलाने की धमकी दी। "सरस्वती" सम्पादक श्री नारायण चतुर्वेदी ने कवि और कविता के विरुद्ध लेख लिखा। "कविता में अगर हिन्दी दुहाजू की बीबी है तो दुहाजू कौन है? - सभी विरोधियों के द्वारा यह प्रश्न पूछा जाने लगा। इस सम्पूर्ण प्रसंग में यशपाल ने कविता का समर्थन किया। इसी वर्ष बद्रीविशाल पित्ती के निमंत्रण पर अक्तूबर में "कल्पना" के सम्पादक मंडल के सदस्य होकर हैदराबाद आ गये थे। सन् 1959 ई० में मार्च से दो अंकों में अज्ञेय द्वारा सम्पादित

"वार्ड" में सहायक सम्पादक हो गये। इसी वर्ष अगस्त से आकाशवाणी में संवाददाता के रूप में पहले एक साल और तीन साल का अनुबंध मिला। अगस्त सन् 1963 ई० में ये आकाशवाणी से अलग हो गये और दैनिक "नवभारत टाइम्स" में विशेष संवाददाता बने थे। इसके बाद मार्च सन् 1968 ई० में "नवभारत टाइम्स" से स्थानान्तरित होकर समाचार संपादक के रूप में "दिनमान" में नियुक्त हो गये थे। तत्कालीन संपादक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय के विदेश चले जाने के कारण दिसम्बर में इस पत्र में स्थानापन्न संपादक हुए। इसी वर्ष दूरदर्शन ने पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर व्याख्या के साप्ताहिक कार्यक्रम की परिकल्पना की और एक वर्ष तक उसकी प्रस्तुति की। अज्ञेय के एक साल बाद विदेश से वापस आने पर उन्होंने अपना त्यागपत्र दे दिया और रघुवीर सहाय जी कार्यकारी संपादक बन गये।

सन् 1984 में इन्होंने जनसत्ता में कालम लिखना भी आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार रघुवीर सहाय का पत्रकारिता के रूप में विकास हुआ।

रघुवीर सहाय की पत्रकारिता के विषय में प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री कृष्ण कुमार का एक कथन है। "हमारे समय में पत्रकारिता का इतिहास लिखने वाले शायद अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि "दिनमान" एक पत्रिका था ही नहीं, एक तरह का पत्राचार विद्यालय था, जो रमा जैन, अज्ञेय और रघुवीर सहाय की व्यक्तिगत भूमिकाओं के कारण चल सका। वास्तव में काफी सोच-विचार के बावजूद मैं ऐसा कोई समाज-वैज्ञानिक तर्क या आधार नहीं ढूंढ सका हूं जो सत्तर के दशक में "दिनमान" "दिनमान" के चलने और अस्सी के दशक में "दिनमान" का वह रूप

ध्वस्त तथा असंभव हो जाने की सच्चाई को समझा सके, यह एक संयोग ही था। रघुवीर सहाय ने "दिनमान" को जो स्वरूप दिया, वह इस कदर व्यक्ति सापेक्ष था कि उनके निकाले जाने के बाद एक महीने भी नहीं चल सका। उस स्वरूप को नष्ट किये जाने को लेकर थोड़ी बहुत प्रतिक्रिया हुई, पर हिन्दी समाज में कोई बड़ा अभाव महसूस नहीं किया गया न ही "दिनमान" का विकल्प रचने की कोशिश हुई।[47]

रघुवीर सहाय जी ने "दिनमान" पत्रिका के सहारे हिन्दी पत्रकारिता को जिस शिखर तक पहुँचाया, उसकी चर्चा जब होने लगती है तो ऐसा लगता है जैसे राजनीति में गांधी, नेहरू और तिलक की रचना। हिन्दी की सम्पूर्ण पीढ़ी ने पत्रकारिता का सबक रघुवीर सहाय जी के सम्पादन में निकलने वाली "दिनमान" पत्रिका से ही सीखा था। देश की आजादी और लोकतांत्रिक मूल्यों से प्रतिबद्ध वह पत्रकारिता का आधुनिक रूप ही था।

हिन्दी के क्षेत्र में यह भी सभी को मालूम है कि "दिनमान" पत्रिका का आधारभूत ढांचा खड़ा करने का श्रेय अज्ञेय जी को था। लेकिन इससे बड़ा श्रेय उन्होंने रघुवीर सहाय को उत्तराधिकारी के रूप में चुनकर निभाया। रघुवीर सहाय ने यथार्थ को यथास्थिति की दृष्टि से स्वयं भी देखा और दूसरों को भी देखना सीखाया। उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता में वह कार्य किया जो पहले किसी दूसरे पत्रकार नहीं कर पाये थे।

"हिन्दी भाषी समाज में शायद ही कोई ऐसा सचेत युवक हो जिसने सन् 1982 से पहले देखना और समझना सीखा हो और जो "दिनमान"

और उसमें भी रघुवीर सहाय का ऋणी न हो। पत्रकारिता की एक पूरी पीढ़ी का आदर्श रघुवीर सहाय थे। यह बात भी निश्चित रूप से सही है कि उस समय की सफल पत्रकारिता से बहुत से "शलाका पुरूषों" को दिनमान की परम्परा एक कील की तरह चुभती रही है। सबसे ज्यादा घबराहट और परेशानी का बायस आज भी वह पत्रकारिता उनके लिए बनी हुई है। इस प्रकार पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका योगदान हमेशा याद किया जायेगा।

॥खण्ड – ग॥

"रघुवीर सहाय" के जीवन की मुख्य घटनायें :-

कवि रघुवीर सहाय का जन्म सन् 1929 ई० में 9 दिसम्बर को लखनऊ माडल हाउस मुहल्ला में साहित्य के अध्यापक श्री हरदेव सहाय के घर हुआ था। शहर में नौकरी करने वाला यह एक शिक्षित परिवार था जिसकी बैसवाडे में छोटी-मोटी जमींदारी थी। इनके पितामह श्री लक्ष्मी-सहाय पुलिस की नौकरी से सेवानिवृत्त होकर शेष जीवन आर्यसमाज के विचारों का प्रसारण करने के साथ ही साथ निःशुल्क चिकित्सा सेवा का कार्य भी करते थे। सन् 1931 ई0 में इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। इनकी माता सीतापुर के तरीनपुर महल के रईस व जमींदार ठाकुर रामेश्वर-बख्श सिंह की सबसे बड़ी लडकीथी। सन् 1936 ई0 में इनका लखनऊ प्रीपरेटरी स्कूल में पहले दर्जे में दाखिला हुआ था। इनके पिता "बाप एंगलो बंगाली स्कूल में अध्यापक थे। सन् 1938 ई0 में इसी स्कूल में इनका डबल प्रोमोशन के साथ चौथे में दाखिला हुआ। इसी वर्ष पिता की दूसरी शादी हो गई।

सन् 1939 ई० में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई। रघुवीर सहाय पर उनका अत्यधिक स्नेह था। इसी साल एक छोटे भाई का जन्म हुआ जिससे इनके परिवार में दो लडके हो गये। इसके बाद सन् 1944 ई0 में इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की और सन् 1946 ई० में इण्टर पास कर लिया। इसी साल इन्होंने एक कविता लिखी जिसका शीर्षक "कामना" था। इसी समय इनको प्रसारण के माध्यम में शिल्पगत रुचि उत्पन्न हुई जो अन्त तक चलती रही। लेकिन इनकी पहली कविता छप नहीं सकी। इसके बाद सन् 1947 ई० में इन्होंने दूसरी कविता "आदिम संगीत लिखी जो "आजकल" पत्रिका के अगस्त अंक में छपी। इलाहाबाद से निकलने वाली पत्रिका संगम और विश्ववाणी में भी इनकी कवितायें छपी।

सन् 1948 ई० में इन्होंने एक कविता " नया वर्ष" मुक्त छन्द में लिखी जो इसी समय कान्यकुब्ज कालेज पत्रिका में छपी। अज्ञेय के सम्पादन में छपने वाली प्रतीक पत्रिका के पावस अंक में इनकी एक लम्बी कविता सांयकाल छीप। प्रतीक के दो अंकों में और भी कवितायें छपी। इसी साल इन्होंने बी.ए,

की परीक्षा पास की। सन् 1949 ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० अंग्रेजी की परीक्षा देनी चाही लेकिन विश्वविद्यालय के उपकुलपति आचार्य नरेन्द्र देव ने कक्षा में उपस्थिति पूरी न होने के कारण परीक्षा देने से इन्कार कर दिया। फिर ये इलाहाबाद में शमशेर जी और श्री कृष्णदास जी के पास चले गये और कुछ दिन तक वहीं पर रहे।

इसके बाद सन् 1051 ई० में इन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से ही अंग्रेजी ✗× साहित्य में एम०ए० पास किया। यशपाल जी के एक नाटक "नशे-नशे की बात" में इन्होंने अभिनय भी किया। सन् 1952 ई० में "प्रतीक" पत्रिका का सम्पादन बन्द हो गया। इसके बन्द होने के बाद ये दिल्ली में ही मुक्त लेखन करते रहे। फिर आकाशवाणी के संचार विभाग में उपसंपादक बन गये।

26 वर्ष की आयु में इनका विवाह प्रो० महादेव प्रसाद श्रीवास्तव अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग, बी० एस० एस० डी० कॉलेज कानपुर की ज्येष्ठ पुत्री विमलेश्वरी से सम्पन्न हुआ। मार्च 1957 ई० में इन्होंने अकाशवाणी से त्यागपत्र दे दिया और अक्तूबर में "कल्पना" के संपादक मंडल के सदस्य बनकर हैदराबाद चले गये। वही पर मार्च में पहली सन्तान मंजरी का जन्म हुआ।

फरवरी सन् 1958 ई० में श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय और कपिला वात्स्यायन ने सद्यः स्थापित एशियन थियेटर इंस्टीट्यूट (नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा) में रिसर्च आफिसर के रूप में विदेशी नाट्य विशेषज्ञों और देशी छात्रों के साथ काम करने के लिए दिल्ली बुला लिया था। "कल्पना" पत्रिका का कार्य वे यहीं पर रहकर देखते रहे। अपने पिता की मृत्यु के कारण परिवार का सारा दायित्व संभालने से लखनऊ चले गये और अगले वर्ष मार्च तक ये वहीं पर रहे। इसी साल दिसम्बर में दूसरी संतान हेमा का जन्म हुआ।

सन् 1959 ई० में अज्ञेय द्वारा संपादित त्रैमासिक वाक् पत्रिका सहायक सम्पादक के पद पर आसीन हो गये। अगस्त से आकाशवाणी में संवाददाता के रूप में पहले एक साल का और फिर तीन साल का अनुबंध मिला।

सन् 1960 में तीसरी सन्तान गौरी का जन्म हुआ और इसी वर्ष प्रयोगिक दूरदर्शन का उद्घाटन होने पर दूरदर्शन पर नियमित व्याख्यात्मक वार्ताओं का आरम्भ करने के लिये ये चुने गये। सन् 1961 ई० में मार्च में एक पुत्र बसन्त ने जन्म लिया। सन् 1965 में भारत और पाकिस्तान के युद्ध के उपरान्त इन्होंने पाकिस्तान गांवों की यात्रा की। 1967 ई० में सिक्किम में नाथुला सीमांत की यात्रा की। इसके बाद कृषि पर्यवेक्षण के सन्दर्भ में आंध्रप्रदेश, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश की यात्रा की। इसी यात्रा में इन्होंने नागार्जुन सागर पर "अकाल" शीर्षक एक कविता लिखी।

इसके बाद 30 दिसम्बर सन् 1990 को शाम के साढ़े सात बजे रघुवीर सहाय का देहान्त हो गया।

संदर्भ

1. रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ0 138
2. रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ0 138
3. रघुवीर सहाय -आत्महत्या के विरुद्ध - पृ0 83
4. रघुवीर सहाय - हंसो हंसो जल्दी हंसो - पृ0 10
5. रघुवीर सहाय - हंसो हंसो जल्दी हंसो - पृ0 75
6. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - निवेदन - पृ0 10
7. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ0 24
8. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ0 50
9. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - निवेदन - पृ0 7
10. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ0 21
11. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ0 41
12. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ0 27
13. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ0 26
14. रघुवीर सहाय - दिल्ली मेरा परदेश - पृ0 9
15. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण -भूमिका - पृ0 10
16. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - भूमिका - पृ0 10
17. रघुवीर सहाय - लिखने का करणा - पृ0 67
18. रघुवीर सहाय - भंवर लहरे और तरंग - भूमिका - पृ0 9
19. रघुवीर सहाय - अबे हुए सुखी - पृ0 36
20. रघुवीर सहाय - यथार्थ यथा स्थिति नहीं - सम्पादकीय - पृ0 9
21. रघुवीर सहाय - यथार्थ यथा स्थिति नहीं - पृ0 25
22. रघुवीर सहाय - यथार्थ यथा स्थिति नहीं - पृ0 59
23. रघुवीर सहाय - यथार्थ यथास्थिति नहीं - पृ0 155
24. मनमोहन सिंह - प्रतिपक्ष - जनवरी 1991 - पृ0 34
25. रविवार्ता - नवभारत टाइम्स - 29 दिसम्बर -1991

26. अज्ञेय - दूसरे सप्तक की भूमिका - पृ० 138
27. अज्ञेय - दूसरे सप्तक की भूमिका - पृ० 138
28. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 8
29. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 9
30. आलोचना - अक्टूबर - दिसम्बर - सन् 1989 - पृ० 11
31. जनसत्ता - 13 जनवरी सन् 1991
32. विनोद दास, अन्तर्दृष्टि - पृ० 3/4
33. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं, - पृ० 8
34. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 9
35. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 8
36. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ० 9
37. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ० 52
38. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ० 41
39. चन्द्रकला त्रिपाठी - दस्तावेज अंक 48 जुलाई सितम्बर 1990, पृ० 14
40. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ०
41. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 37
42. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 9
43. रघुवीर सहाय - दिल्ली मेरा परदेस की भूमिका - पृ० 11
44. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 35
45. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो, आमुख - पृ० 9
46. रघुवीर सहाय - वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे - भूमिका - पृ०
47. रघुवीर सहाय - यथार्थ यथास्थिति नहीं - पृ० 30
48. कुमार कृष्ण - प्रतिपक्ष - पृ० 17

"तृतीय अध्याय"

(खण्ड-क)

कथ्य की परिभाषा एवं अर्थ :-

साहित्य के मर्म को पकड़ने के लिए उसके बोध और संवेदना से साक्षात्कार करने के लिए प्राय: समीक्षकों और अध्येताओं ने उसे दो दृष्टियों से देखना और परखना चाहा है। कभी उसे भाव और कला की कसौटी पर कसा गया, कभी अनुभूति और अभिव्यक्ति की पड़ताल की गई आज की समीक्षा में "वस्तु" और "रूप", "कथ्य" और "शिल्प" की दृष्टि से साहित्य के मूल्यांकन का प्रचलन है। इस प्रकार कथ्य समीक्षा में उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है जिस अर्थ में वस्तु का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी में इसका पर्याय "कन्टेंट है।[1]

"हिन्दी-शब्दसागर" में कथ्य के जो विभिन्न अर्थ दिये गये हैं, उनमें एक है - "कहने योग्य या कथनीय"।[2]

"साहित्यकार अपने विशाल अनुभव से जगत में से चुनकर जो कुछ किसी रचना में प्रस्तुत करता है ; दूसरे शब्दों में जिसे कथनीय समझता है, वही कथ्य है। साहित्य के कथ्य की सीमा बहुत व्यापक है। साहित्य की वस्तु के अन्तर्गत रस, भाव, विभाव, चरित्र, विचार, इतिवृत्त, प्रकृति आदि यह सब समाविष्ट हो सकता है या होता है, जो कलात्मक रूप ग्रहण करने के लिए साहित्यकी सूक्ष्म या स्थूल सामग्री बन सकता है।"[3]

भारतीय काव्यशास्त्र में कथ्य की आधुनिक अर्थ में चर्चा नहीं हुई है। वस्तु के उद्गम स्रोत और उसकी विषय सीमा के बारे में यत्र-तत्र

जो कुछ कहा गया है, उसमें राजशेखर और भामह की धारणाएं इस प्रकार है--

राजशेखर ने "काव्यमीमांसा" के आठवें अध्याय में काव्य के विषय या अर्थ-प्राप्ति के स्रोतों की चर्चा की है।[4]

आचार्य भामह ने साहित्य की वस्तु की व्यापकता को रेखांकित करते हुए लिखा है कि "ऐसा न कोई शब्द है, न अर्थ न न्याय, न कला, जो काव्य का अंग न बन सके।"[5]

राजशेखर और भामह के विचारों से लगता है कि उन्होंने कथ्य की चर्चा न करके विषय के स्रोतों की ओर संकेत किया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि विषय और वस्तु में अन्तर है। "तीसरा सप्तक" की भूमिका में अज्ञेय ने इस अन्तर को बहुत स्पष्ट कर दिया है।[6]

कथ्य और अन्य समान धर्मी संज्ञाएं :-

कथ्य को समीक्षकों ने सुविधानुसार वस्तु वर्ण्य, तथ्य, तत्व, कथा-तत्व, उद्देश्य, भाव, अन्तर्वस्तु, विषय वस्तु आदि संज्ञाओं से अभिहित किया है। डा० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल ने वस्तु शब्द का प्रयोग करते हुए वर्ण्य, तथ्य और चेतना को उसके समानधर्मी स्वीकार किया है।[7]

ब्यूरेक की कृति "उपन्यास लेखन शिल्प" में "कथ्य" को कथातत्व के रूप में स्वीकार किया है। मुक्तिबोध अपनी एक आलोचना कृति के निबंधों में कथ्य या वस्तु के लिए तत्व शब्द का प्रयोग करते हैं।[8] इस प्रकार हिन्दी साहित्य में कथ्य को लेकर बड़ी अराजकता है। चेतना कथ्य को वस्तु का पर्याय मानना असंगत है। चेतना एक व्यापक और अस्पष्ट शब्द है जो तथ्य कथ्य के निकट होते हुए भी वही नहीं है। प्रो० जगदीश पाण्डेय ने इन दोनों को अलगाते हुए लिखा है कि तथ्य

अनुभूत पदार्थ होता है, कथ्य अन्वेषित। कथ्य में जिज्ञासा की पैठ और तर्कपरक व्यंग्य की पैनी धार की तेजी रहती है।[9]

वास्तव में तथ्य में सब कुछ प्रत्यक्ष होता है जबकि कथ्य में बहुत कुछ अनकहा और गूढ़ होता है। वर्ण्य शब्द भी कथ्य के सम्पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति नहीं कर पाता, क्योंकि कथ्य में बहुत कुछ सांकेतिक होता है। कथातत्व की संज्ञा बहुत स्थूल और सतही है इसमें कहानी के सारांश का बोध होता है। कुछ लोग कथ्य को उद्देश्य मानने की भूल कर बैठते हैं।[10] जो कथ्य को अत्यंत सीमित कर देती है। उद्देश्य कथ्य का का एक अंग मात्र है। कथ्य को उद्देश्य मानने का सरलीकरण प्राध्यापकीय समीक्षादृष्टि की देन है। भाव xxxxxxx बहुत सीमित शब्द है; जिसका अर्थ अभिप्राय: -सा लगता है। कथा-साहित्य के संदर्भ में कथ्य अधिक उपयुक्त है।

हम निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि "कथ्य" एक विशेष रूप से कहा गया "तथ्य" मात्र होता है। जिसको कुछ विद्वान कहानी का सारांश या "उद्देश्य" मानने लगते हैं।

रघुवीर सहाय की कविता का मूल कथ्य :-

विभिन्न प्रतिपादित विषय :-

रघुवीर सहाय की कविताओं का कथ्य अलग-अलग वर्गों को लेकर चलता है। जैसे पूंजीवादी वर्ग, मजदूर वर्ग, स्त्री वर्ग आदि ।

1- पूंजीवादी वर्ग :-

पूंजीवादी वर्ग सामंती समाज के गर्भ से उत्पन्न हुआ। नगर और देहात दोनों में लघु उत्पादकों का विभेदीकरण हुआ, जिसके परिणामस्वरूप मुट्ठी

भर धनी लोगों का आविर्भाव हुआ और बहुत बड़ी तादाद में किसानों तथा दस्तकारों की बर्बादी हुई, जो किराये पर कार्य करने के लिए विवश थे। व्यापारी भी, जिन्होंने बड़ी मात्रा मे धनराशि एकत्र कर ली थी, बड़े-बड़े कारखानों के मालिक बन बैठे। बल प्रयोग ने पूँजीवाद के लिए पूर्वाधारों के विकास की गति को तेज करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

शिवदान सिंह चौहान का एक कथन "पूँजीवाद" के विषय में इस प्रकार है--"पूंजीवादी औद्योगिकरण के उत्कर्ष ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना दिया। संवेदनशील तरूण लेखकों में यह पीड़ा जगी कि मनुष्य मशीन का एक पुर्जा बन गया है, जिसके कारण उसका व्यक्तित्व खंडित और विघटित होता जा रहा है।" [1.1] युद्ध के प्रति पलायनवादी अवैज्ञानिक दृष्टिकोण ने अगर इन्हें इतिहास - विरोधी बनाया तो सारी समस्याओं की जड़ में इस मशीन को देखना उन्हें विज्ञान विरोधी और इसलिए एक हद तक भविष्य-विरोधी भी बना दिया।

आधुनिक समय में जिस तरह युद्ध का कारण अपने हितों की रक्षा करता हुआ साम्राज्यवाद और पूँजीवाद है, उसी तरह मशीन की इस सर्वप्रमुखता के पीछे भी पूँजीवाद का ही हाथ है। रघुवीर सहाय की कविताओं में "आत्म परायेपन" की स्थिति अधिकतर दिखाई देती है।

इस आत्मपरायेपन की मुक्ति की कोशिश; उसके मूल कारण पूंजीवाद को समाप्त करके ही की जा सकती है। इसलिए यह भी जरूरी था कि जन-विरोधी शीतयुद्ध के प्रभाव से मुक्त हुआ जाता तथा उन क्रान्तिकारी शक्तियों का साथ दिया जाता जो पूंजीवादी व्यवस्था को खत्म करना चाहती हैं। रघुवीर सहाय इस आत्मपरायेपन को नियति के रूप में स्वीकार

नहीं करते तथा उसके प्रभावों में रस नहीं लेते, बल्कि उसे समाप्त करने के लिए सक्रिय रहते हैं। अपनी कविता "इतने में किसी ने" में वे लिखते हैं कि ?

1- मेरी प्रतीक्षा का कहीं मान नहीं
छि: छि: यह
नवयुग आजादी का
नवयुग की आजादी [12]

2- मेरा एक जीवन है कविता में
इस हाहाहूती नगरी में मैं अकेला हूं [13]

अपने अकेलेपन की अभिव्यक्ति के साथ रघुवीर सहाय समाज के उस वर्ग का बेगानापन उधारने की कोशिश करते हैं जो इस अलगाव के प्रभाव को झेल रहा है। इस समाप्त हुई दुनिया के बाद भी एक नयी दुनिया है। वह इस अलगाव के परिणामस्वरूप "चुरमुराई, पपड़ियाई, चिपचिपाई तथा बजबजाई चीज हो गई है। इसमें रहने वालों का चरित्र इतना भर गया है कि --

लोग या तो कृपा करते हैं या खुशामद करते हैं
लोग या तो ईर्ष्या करते हैं या चुगली खाते हैं
लोग पश्चाताप करते हैं या घिघियाते हैं
न कोई हंसता है न कोई रोता है
न कोई प्यार करता है न नफरत

लोग या तो दया करते हैं या घमंड
दुनिया एक कुंफदियायी-सी चीज हो गई है।[14]

इसी कविता में रघुवीर सहाय जी कहते हैं कि ये पूंजीवादी लोग कुछ नहीं करते तो फिर करते ही क्या हैं --

खीखियाते हैं, किंकियाते है घुन्नाते हैं
चुल्लू में उल्लू हो जाते हैं
मिनमिनाते हैं, कुड़कुड़ाते हैं
झायं झायं करते हैं रिरियाते हैं
टांय -टांय करते है, हिनहिनाते हैं
गरजते हैं, घिघियाते हैं--
सभी लुललुजे हैं, थुलथुल हैं, लिब लिब हैं
पिल-पिल हैं
सबमें पोल है, सब में झोल है .....[15]

यही अलगाव और सम्बन्धहीनता झेलते लोगों की दुनिया का नरक, जो मनुष्य विरोधी पूंजीवादी व्यवस्था का अभिशाप है। इसी सम्बन्ध-हीनता को कलात्मकता के साथ "प्रभु की दया" कविता में देखा गया है--

बिल्ली रास्ता काट जाया करती है
प्यारी-प्यारी औरतें हरदम बक-बक करती रहती हैं
चाँदनी रात को मैदान में खुले मवेशी
आकर चरते रहते हैं।[16]

"आत्महत्या के विरुद्ध" काव्य संग्रह में रोजमर्रा की जानी-पहचानी दुनिया के हमारे अनुभव को कुछ अधिक गहरा और सार्थक बनाता है। इन कविताओं में सामाजिक, राजनैतिक , स्थितियों, कार्यों परिणतियों, दृष्टिकोणों विचारों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से आधार बनाकर अपने भीतर से व्यक्ति समुदाय और सम्भवतः पूरे देश की आत्मा को पहचानने

का प्रयास है। आजादी मिलने के पिछले बीस वर्षों में हमारा देश और समाज कल्पनातीत आडम्बर, ढोंग और झूठ से ढक गया है है, सर्वग्रासी स्वार्थलिप्सा, सहानुभूतिहीनता और उदासीनता ने समुदाय के हर अंश को, विशेषकर सत्ताधारी और सुविधाभोगी अंश को दबोच लिया है।" [17]

इसी प्रकार जनता पूंजीपति वर्ग द्वारा शोषित हो रही है।

" "नयी कविता के लेखकों और कवियों में आधुनिकता और आधुनिकता की बीच का अन्तर्विरोध मौजूद था। इनकी आधुनिकता नये शासक वर्गों के पूंजीवादी विकास का परिणाम थी और इनकी आधुनिकता नये शासक वर्गों के सामंतीय गठबंधन का परिणाम ।" [18]

पूंजीपति वर्ग को यह भी अच्छी तरह मालूम था कि वैचारिक स्तर पर सामंतीय विचारधारा उसके अस्तित्व के लिए कोई गंभीर चुनौती नहीं है। अपने कर सीमा तक पूँजीवादी आधार और विश्व पूँजीवाद से उसके सम्बन्धों के कारण जो सुपर स्ट्रक्चर और संसाधनों का ढांचा तैयार हो गया था वह आश्वस्त करने के लिए काफी था कि अब भारत के पूँजीपति वर्गको भारतीय पुरातनवाद से कोई गॅम्भीर खतरा नहीं है। अगर कोई खतरा है तो वह समाजवाद से है, मजदूर वर्ग से और उसकी क्रान्तिकारी अभिव्यक्ति से है। भारतीय पूंजीपति वर्ग का एक नारा था--"समाजवादी नमूने का समाज।" उसका रास्ता न कम्युनिज्म था, न पूंजीवाद। इस विषय मे धर्मवीर भारती ने लिखा है कि "उसकी वर्तमान गति पूंजीवाद, जर्जर व्यक्तिवाद और कम्युनिस्ट शासन के बीच एक मध्यवर्ग की ओर है, जहां मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं बन सकता है ।" [19]

इस वर्ग-विभाजित समाज में खर्चीले न्याय के संस्थानों में भी अन्ततः पूंजीवादी, जमींदार वर्ग ही अपनी रक्षा की स्थितियां उत्पन्न करता है। बेजाट ने ठीक ही लिखा है कि यह बुर्जुआ लोकतंत्र "एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा जनता को सत्ता के बारे में अधिक भ्रम दिया जाता है जबकि वास्तव में उन्हें सबसे कम सत्ता दी जाती है।" हिन्दुस्तान के वर्तमान शासन के बुर्जुआ लोकतांत्रिक ढांचे में शोषित जन निरन्तर उपेक्षित होते आये हैं। शासन के वर्तमान ढांचे से रघुवीर सहाय भी असहमत हैं। वे कहते है कि " मैं जानता हूँ कि अगर अपने देश के संदर्भ में देखे तो हमारे यहां जो शक्ति का ढाँचा बना हुआ है.......ऊपर से नीचे तक यानी यह जो पूरी व्यवस्था है, इस सबको हम बिल्कुल बेकार नाकामयाब मानते हैं --यानी एक उद्देश्य के लिए नाकामयाब । उद्देश्य वही है-- समता और मनुष्य और मनुष्य के बीच की गैरबराबरी को मिटाने के लिए वह व्यवस्था बिल्कुल बेकार है।"[20]

आज के यथार्थवादी युग में आम जनता के सन्दर्भ में लिये गये निर्णयों में उसकी कहीं कोई शिरकत नहीं है। शोषक वर्ग के तरफदारी करने वाले शासन का अत्याचार झेलते हुए आम जनता बार-बार आत्महत्या की स्थितियों के विरूद्ध खड़े होने के लिए निरन्तर छटपटा रही है। "आत्म-हत्या के विरूद्ध" काव्य संग्रह इन अत्याचारों का साक्षात उदाहरण है ।

पूंजीवादी लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर पूंजीवादी नेतृत्व, विसंगतियों को समाप्त करने के लिए समय-समय पर "समय आ गया है" कहकर नकली निर्णयात्मक तत्परता दिखलाता है। जबकि यही बात कवि दस वर्ष पहले

कह चुका था। लेकिन तब कवि की यह पुकार किसी ने नहीं सुनी थी। क्योंकि तब इस भ्रष्ट नेतृत्व को ऐसा कहने से अपना हित सिद्ध होता दिखाई नहीं दे रहा था। लेकिन आज नकली पुकार से ही यह सिद्ध होता दिखाई देता है।

मौका अच्छा देखकर प्रधानमंत्री
पद मुक्त होते ही न्यायधीश
पीटा हुआ दलपति अकबारों से
सुन्दर नौजवानों से कहता है
समय आ गया है. 21

इस कविता में शोषक शक्तियों का हित साधक "मुस्टंडा विचारक" वही छद्म उद्घोषणा करता हुआ दिखाई पड़ता है कि "समय आ गया है" ताकि इस नकली गर्जन के बीच यातना झेलते हुए रामलाल के कुचले हुए पांव के दर्द का कोई अर्थ ही न हो। क्योंकि रामलाल के कुंचले हुए पैर से घिसटकर चलने से सही अर्थ सामने आ जायेगा तो ये मुस्टंडा विचारक, मुसद्दीलाल महन्त, प्रधानमंत्री आदि शोषक पूंजीवादी जमींदार वर्ग के हित संरक्षक हैं इनको बाहर निकाल दिया जायेगा। इसलिए इन सबकी यही कोशिश रहती है कि इस दुख को बाहर ही न आने दिया जाये।

रघुवीर सहाय की कविताओं में कई जगह शोषक वर्ग के प्रतिनिधियों की अश्लील और भयावह स्थिति की हंसी भी सुनाई पडती है। जैसे

निर्धन जनता का शोषण है कहकर आप हँसे .
लोकतंत्र का अंतिम क्षण है कहकर आप हँसे
सबके सब भ्रष्टाचारी हैं कहकर आप हँसे

चारों ओर बड़ी लाचारी कहकर आप हँसे
कितने आप सुरक्षित होंगे
मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर फिर से आप हँसे [22]

18 सितम्बर —

सन् 1981 ई० को कांग्रेस (ई) के संसदीय दल की बैठक को सम्बोधित करते हुए प्रतिपक्ष के द्वारा अंतुले प्रसंग के बाद सरकार पर लगाये गये भ्रष्टाचार के आरोपों के जवाब में प्रधानमंत्री ने कहा था कि "भ्रष्टाचार विश्व-व्यापी बिमारी है और भारत भी इससे अछूता नहीं रह सका है।" [23]

संकटग्रस्त पूंजीवाद जो निश्चित रूप से भ्रष्टाचार की स्थितियां उत्पन्न करता है, उसकी प्रवक्ता भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी की यह सलाह आगामी भविष्य के चित्र बना रहा है। "आत्महत्या के विरुद्ध" काव्य-संग्रह में भी एक हंसी थोड़ी भिन्नता लिये हुए सुनाई पड़ती है। जैसे

तब गजब का सफेद कुरता पहने हुए
बोला उपप्रधानमंत्री लेखक-सभा में
हममें हर एक कपड़ों के नीचे नंगा है
फिर मुस्कराया मशीन पर . [24]

रघुवीर सहाय की कविताओं में यह शोषक दल और कोई नहीं है, यही राजनीतिक दल है वहां पर शासक दल की ही अश्लील हंसी सुनाई पड़ती है। भारतीय दल है। यहां पर शासक दल की ही अश्लील हंसी सुनाई पड़ती है। भारतीय पूंजीवाद ने सामंतवाद से समझौता कर रखा है, वह किसी न किसी तरह अपने को बनाये रखना चाहता है। यह बिल्कुल भी सम्भव नहीं है क्योंकि वह इतिहास की गति को रोक नहीं सकता। उसका विनाश निश्चित ही होता है।

रघुवीर सहाय की कवितायें इस संकटकालीन पूंजीवाद को जड़ से मिटाने के लिए प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार कवि के लिए यह आवश्यक है कि मुक्ति के लिए संघर्षशील प्रयत्न भारतीय जनता के सामूहिक रूपों का अनुसरण करे और उसका विकास करे। पूंजीवाद आज भारत में मानवता का विरोधी बन गया है।

मुक्तिबोध ने अपने "सामाजिक विकास और साहित्य" में लिखा है-- "साहित्य और समाज के सम्बन्ध यांत्रिक नहीं है, ह्रासकालीन पूंजीवादी समाज के अन्दर एक ओर, ह्रास ग्रस्त अत्याचारी शोषक वर्ग होता है तो दूसरी ओर क्रान्तिकारी शोषित वर्ग भी सिर उठाता है। जो लेखक इन दानों तत्वों को देखता है और उस क्रान्तिकारी शोषित - वर्ग की हिमायत करता है, उसका साहित्य ह्रासकालीन पूंजीवादी - सामंतवादी समाज के अन्दर जन्म लेकर भी स्वयं ह्रासग्रस्त नहीं हो पाता।[25]

रघुवीर सहाय के कविता संग्रह, "आत्महत्या के विरूद्ध" व हंसो हंसो जल्दी हंसो" शोषक -वर्ग के विरोध में है। हिन्दुस्तान में हो रहे अत्याचारों के पीछे "पूंजीवाद" का हाथ है। इसी लिए कवि ने अपनी रचनाओं के द्वारा उनके अश्लील चेहरों पर प्रहार किया है।

(2) मजदूर वर्ग :-

कवि की एक स्थिति तो मजदूर वर्ग से सम्बन्धित यह आती है कि वर्ग-स्थिति के कारण दलित जन सहसा उससे जुड़ पाने में जरा देर के लिए भय महसूस करते हैं तथा आश्वस्त होना चाहते हैं तो दूसरी ओर दलित जन निरन्तर अमानवीय संदर्भों के बीच इतने कुंद हो जाते हैं कि कवि जब अपनी ओर से उनमें संवाद पैदा करना चाहता है तो उसे असफलता ही प्राप्त होती है। "आत्महत्या के विरूद्ध" की एक कविता --

एक लड़की जिसकी बाद मारी गई है
डर के मारे नहीं बताती मुझको वह
अपना दुःख। [26]

इसी प्रकार एक दूसरी कविता --

मैले नाखून वाले चीकट लड़के ने
नहीं सुना जो मैंने पूछा था
पहले वह चाहता था कि मैं समझ लूं
कि वह मेरा कौन है? [27]

यहां पर कवि को मजदूर वर्ग से अपना रिश्ता स्थापित करते हुए उनके स्वाभाविक अविश्वास का सामना करना पड़ रहा है। दूसरी तरफ किसी तरह वह उनसे संवाद भी करना चाहता है लेकिन उनके सचेतन न होने की स्थिति के कारण संवाद नहीं हो रहा है।
जैसे --

कल मैंने देखा लाख चेहरों में एक चेहरा
कुढ़ता हुआ और उलझा हुआ वह उदास कितना बोदा
वही था नाटक का मुख्य पात्र
पर उसकी उस पीठ पर मैं हाथ नहीं रख सका
वह बहुत चिकनी थी [28]

कवि उसकी ठस पीठ पर हाथ न रखने के कारण संवाद भी नहीं कर सका। यही उनके आत्म-संघर्ष की विडम्बना मजदूर वर्ग के प्रति है।

मजदूर वर्ग से अपना रचनात्मक रिश्ता कायम करने के लिए रघुवीर सहाय जिन मुश्किलों का सामना करते हैं वे मुश्किलें कुछ महत्वपूर्ण सवालों

की तरफ संकेत करती है जिनको कवि हल करने में लगा हुआ है। किसी भी कवि का दलित वर्ग से जुडने के लिए सबसे पहले उसका वर्ग चरित्र बाधक होता है। इसी कारण किसी भी ईमानदार रचनाकार के लिए सबसे पहला काम वर्ग विमुक्त होना है।

रघुवीर सहाय ने एक रचनाकार के लिए दुहरा दायित्व आरम्भ में ही महसूस किया था और कला के संदर्भ में इसकी सार्थकता मानी थी। उन्होंने कहा था कि "जो एक बार व्यक्ति की हैसियत से दुबारा योग देता है अपनी शक्ति और छोटे-छोटे अंशों में दुबारा योग देने में ही उनकी सार्थकता है और यह सार्थकता भी तब है जब वह कला के स्तर पर हो।"[29]

उनका एक कथन इस प्रकार भी है कि "सबसे मुश्किल और एक ही सही रास्ता है कि मैं सब सेनाओं से लडूं।"[30] निश्चित रूप से यह दुहरी हिस्सेदारी तथा लड़ाई अपनी सम्पूर्णता में तभी रचनात्मक होगी जब रचनाकार की विश्वदृष्टि - शोषित जनों व मजदूर वर्गों की विश्वदृष्टि होगी, जिनके लिए कवि लडाई करता रहा है।

रघुवीर सहाय का एक कथन मजदूर वर्ग के सम्बन्ध में इस प्रकार है--

"कल्पना कीजिये कि एक पूरा राष्ट्र जिसके आधे लोग सिर्फ मजदूरी करने के लिए जिंदा रखे जाते हों ताकि उनके आधार पर सत्ता के केन्द्र वर्चस्व बनाये रख सकें, एक राजा जो भय और असुरक्षा उपजाता हो और उसी पर टिका हो, एक सरकार जो जनता की कमजोरियाँ खोजती हो ताकत नहीं, ताकि जानकर उनमें फूट फैला सके तो अनायास एक अन्तर्राष्ट्रीय तस्वीर का बाकी हिस्सा आपको दिखाई देने लगेगा। कुल तस्वीर साम्राज्यवाद का एक नया रूप है जिसमें

बड़ी शक्तियां साधन सम्पन्न राष्ट्रों को अपने साधनों का अपनी जन-शक्ति के लिए उपयोग नहीं करने देती उनको किराये पर ले लेना चाहती है। हमारी अर्थ नीतियां दिन पर दिन संकेत दे रही है कि हमारा शासक वर्ग देश की प्राकृतिक संपदा और मानवी प्रतिभा को आपस में एक-दूसरे के यहां और अब विदेशियों के यहां भी किराये पर चढ़ाता जा रहा है। [31]

रघुवीर सहाय की कविताओं में शोषित जनों का संघर्ष अधिकतर चित्रित हुआ है, जो वे मौजूदा शोषक व्यवस्था में जीते रह सकने के लिए कर रहे हैं -- "हँसो हँसो जल्दी हँसो" की एक कविता--

मैंने कहा डपट कर
ये सेब दागी है
नहीं नहीं साहब जी
उसने कहा होता
आप निश्चिन्त रहें
तभी उसे खांसी का एक दौरा पड़ गया
उसका सीना थामें खाँसी यही कहने लगी। [32]

कवि यहां पर डपटने वाले व्यक्ति के व्यवहार को सही बता रहा है ? या वह उस डपटने वाले वर्ग को जो उस रक्त पायी वर्ग से "नाभिणालक" है। यह कविता वर्गीय संस्कारों के तहत हमें अपने जीवन की ऐसी कसी घटना से जोडती है, जिसमें अपने वर्गीय संस्कारों के तहत ऐसी ज्यादती की थी तो इस अहसास को पैदा करने के साथ यह कविता अपना एक उद्देश्य पूरा करती है। दूसरी तरफ सेब बेचने वाले के जीने मरने के सीधे

जुडी हुई, अपने द्वारा सेब के बचाव की करूणाजन्य कोशिश है जो उसकी शारीरिक असमर्थता के कारण असफल होती लगती है। यही शारीरिक असमर्थता निरन्तर शोषण का शिकार होने का कुफल है। इसी प्रकार सेब बेचेन वाले से डपटते हुए सेब में जब यह कहा जाता है कि "ये सेब दागी हैं" तो इसके बचाव में जो कुछ वह कहना चाहता है, वह भाषा में कह नहीं पाता क्योंकि नहीं-नहीं साहब जी कहने के साथ उसके दुर्बल शरीर में खांसी का दौरा पड़ जाता है। इस कविता की इन लाईनों में बस यही तक की बात कही गयी है लेकिन बाद की स्थिति में वह समझ जाता है कि वह क्या कहना चाहता है? वह कहना चाहता है कि नहीं - नहीं साहब जी आप निश्चिन्त रहे। यह आवाज कवि को सुनाई पड़ती है। क्योंकि कवि मजदूर वर्ग का हमेशा हितैषी रहा है। यह कविता वर्ग विभाजित समाज में शोषण से जुड़े हुए वर्ग द्वारा अनायास ही किया गया अत्याचार किस तरह एक शोषित और असमर्थ मनुष्य के लिए बचाव के संदर्भ में आज जीने मरने के सवाल से जुड़ा हुआ है, यह कविता यथार्थ के जटिल आयाम को उद्घाटित करती है।

महात्मा गांधी के लिए "गरीबों की सेवा और गरीबों का राज्य उनके लिए दो अलग-अलग चीजें नहीं थीं। गरीबों के राज्य की उनकी कल्पना में साधन वर्ग संघर्ष नहीं था पर लक्ष्य शोषणमुक्त समाज था और उसके लिए उन्होंने एक मौलिक सूत्र को पकड़ा था उत्पादन के साधनों पर अधिकार रखने की साम्यवादी, विचार-धारा उसके सामने भारत के संदर्भ में तब अधूरी और अप्रासंगिक थी--वह मौलिक सूत्र था उत्पादन की विधियों पर अधिकार का।" [33]

रघुवीर सहाय का विचार खेतिहर मजदूरों को अपने पैरों पर खड़ा करना, प्राकृतिक उपचार द्वारा शहर के शोषण से मुक्त रखना था।

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" में कवि ने "साईकिल रिक्शा" कविता लिखी है। जिसमे "आदमी ढोता आदमी" निबंध की समानता दिखलाई पड़ती है। जैसे --

यह महज़ सुनने में लगता है साम्यवाद
हम अपने घोड़े को इंसान भी समझें
खास तौर से जब वह सचमुच इंसान हो।
ग्लानि से भरकर रिक्शे से उतर पड़े,
पछतायें क्यों उसकी रोजी ली,
फिर तरस खाकर बख्शीश दे।
तीनों परिस्थितियों में हम हैं लदे हुए, वह हमें ढोता है।
सिर्फ जब ढलाई पर दोनों झगड़ते हैं
हैसियत उनकी बराबर हो जाती है।
आओ इक्कीसवीं सदी के इंजीनियर
ईजाद साईकिल रिक्शा ऐसी करें
जिसमें सवारी और घोड़ा अगल बगल
तफरहीन बैठे हो।[34]

हम रिक्शे पर बैठकर जिंदगी का इतना अधिक वक्त गुजारते हैं कि यह बात सोचकर देखने का समय ही नहीं पाते। वरना मान लिजिये कि रिक्शा पर बैठे-बैठे ख्याल आये कि यह एक घिनौनी स्थिति है जिसमें आप बैठे यानी पडे हुए हैं तो क्या करेंगे ? क्या करेंगे, इसके जितने विकल्प सोच निकालेंगे सब उतने ही बेहूदा होंगे जितना उन पर बैठे रहना है। एक यह है कि फौरन उतर पड़े और रिक्शेवाले की रोजी रोटी छिनने की ग्लानि से भर कर उसे यों ही कुछ पैसे दे डालना

चाहें। इससे क्या अन्तर हो जायेगा ? " मैं तुमको मुझे ढोने के पैसे दे रहा हूं" और "मैं तुमको बख्शीश दे रहा हूं" में मानव सम्बन्ध की किस्म एक ही है और फिर बहुत सम्भव है कि वे पैसे आप मुंह पर मार दे। इस तरह वह आपको याद दिलायेगा कि आप उस सम्बन्ध की अनदेखी नहीं कर सकते जो रिक्शे पर बैठकर आप उस आदमी से बनाते हैं--आदमी और घोड़े का सम्बन्ध। मगर मान लिजिये सचमुच ही वह बिना मेहनत किये मुफ्त के पैसे लेने से इंकार कर दे तो इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि वह आपको ढोने को तरस रहा है। वह सिर्फ अपने आत्मसम्मान के लिए आपसे भिड़ रहा है और निश्चय ही आत्म-सम्मान रिक्शा खींचने की अपेक्षा अधिक उत्पादक श्रम में अधिक है। " 35

कवि कहता है कि हमें रिक्शा वाले के साथ इंसानियत का व्यवहार करना चाहिए उसे जानवर नहीं समझना चाहिए। आदमी ढोने वाले आदमी से आपकी बातचीत अपने आप ही ऐसी हो जाती है मानो उसका सबसे बड़ा शोषण इस शोषण व्यवस्था वाले समाज का सबसे निचला आदमी ही कर रहा हो।

साईकिल रिक्शा शरीर की ताकत से घुमाने वाली एक मशीन है। उसके साथ जब यह शर्त मिला दीजाती है कि एक आदमी खाली बैठा रहेगा और दूसरा पहिया चलायेगा तो यह सम्भव ही नहीं रह जाता कि दोनों आदमी में बराबरी का सम्बन्ध है। क्योंकि यह श्रम ही शोषण की ओर बराबरी के मिटने के प्रथम चरण की स्थिति है।

हिन्दुस्तान और बंगलादेश के मित्र सम्बन्ध की प्रशंसित में जो तमाम बड़ी-बड़ी बातें कही जाती हैं उनके बावजूद दोनों की दोस्ती का सबसे

ठोस प्रमाण एक बहुत मामूली चीज है --साईकिल-रिक्शा।[36]

इनकी एक कविता " अखबार वाला " में अकबार बेचने वाला एक लड़का है जिसका नाम राजू है। वह गर्मी के महीने में तपती दोपहरी में धूप में खड़ा होकर अकबार बेच रहा है। उसकी एक प्रति पर पांच पैसे कमीशन है। लेकिन कम पैसे पर भी वह बेच सकता है। अगर हम उस पर तरस खायें और उसको पांच रुपये दे लेकिन अगर वह लेने से मना कर दे। शोषक दल यह सोच रहा है कि अकबार में जो खबर है वह हमारा ही आतंक है। लेकिन वातानुकूलित कक्ष में रामू जहां पर खड़ा था उस भूमि पर कब्जा करने के लिए बातचीत चल रही है। अकबार वाला मजदूर है और उसके खड़े होकर अकबार बेचने की जगह पर भी लोग कब्जा करने के लिए सोच रहे हैं। यह अत्याचार मजदूरों के प्रति एक साधारण सी बात है। आज के वर्तमान युग में भी शोषक दलों की कमी नहीं है।

धधकती धूप में रामू खड़ा है
खड़ा भुलभुल में बदलता पांव रह रह
बेचता अकबार जिसमें बड़े सौदे हो रहे हैं।
एक प्रति पर पांच पैसें कमीशन है,
और कम पर भी वह उसे बेचता है
अगर हम तरस खाये, पांच रूपये दें
अगर खैरात वह ले ले
लगी पूंजी हमारी है छपाई कल हमारी है
खबर हमको पता है, हमारा आतंक है,
हमने बनाई है

यहां चलती सड़क पर इस खबर को हम खरीदे क्यों ?
कमाई पांच दस अखबार भर की क्यों न जाने दें ?
वहां जब छांह में रामू दुआएं दे रहा होगा
खबर वातानुकूलित कक्ष में तय कर रही होगी
करेगा कौन रामू के तले की भूमि पर कब्जा।" 37

इसी प्रकार की एक कहानी रघुवीर सहाय के कहानी संग्रह में संकलित है जिसमें ﴾एक छोटी सी यात्रा﴿ "ईउनिंग न्यूज" बेचने वाले दो लडके हैं एक छोटा एक बड़ा। लेखक छोटे से अकबार खरीदकर संवेदना प्रकट करता है और उसके पास बाकी बचे पैसे देने के लिए हैं लेकिन बडा लडका बस चलने के साथ ही लेखक के पैसे वापस कर देता है।

"हँसो हँसो जल्दी हँसो" की कविता में हँसी एक सिर्फ हँसी ही नहीं है बल्कि वह एक ऐसी हँसी हंसने वाले के अस्तित्व का उद्घोष है। लेकिन वर्तमान दौर में हंसी खत्म होती जा रही है और एक दिखावटी हंसी का इस्तेमाल आत्मश्लार्थ किया जा रहा है।

हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है
हँसो अपने पर न हंसना क्योंकि उसकी कडवाहट
पकड़ ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसों कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि यह शख्स शर्म में शामिल नहीं
और मारे जाओंगे 38

इस कविता में शोषित जनों की विवशता को प्रदर्शित किया गया है। इस कविता में वह व्यक्ति जो सलाह दे रहा है उसके सोच की केन्द्रिय चिन्ता

यह है कि वर्तमान दौर में किस तरह समाज के दमनकारी वर्ग से तात्कालिक रूप से अपने को बचा लिया जाये। दरअसल मजदूर वर्ग के विरुद्ध जो लोग लड़ सकते हैं उनमें से अधिकांश ने जिस पतन और नीचता को स्वीकार किया है उस मानसिकता वाले समूह से विरोध की क्या उम्मीद हम कर सकते हैं? कवि कहता है कि --

ऐसे मौकों पर हंसो, जो कि अनिवार्य हो
जैसे गरीब पर ताकतवर की मार
जहां कोई कुछ नहीं कर सकता
उस गरीब के सिवाय और
वह भी अक्सर हंसता है [39]

यहां पर ताकतवर लोगों द्वारा मजदूर वर्ग (गरीब) पर मार पड़ रही है और वह विरोध करने के बदले हंस कर टालता है ताकि अधिक मार न पड़े।

रघुवीर सहाय कहते हैं कि "मैंने कई लोगों को हंसते हुए देखा और यह पाया कि हंसकर ये लोग बहुत कुछ छिपाना चाह रहे हैं, लेकिन उनकी हंसी बहुत कुछ कह देती है और इस हालत में पड़े हुए लोगों की असहायता और अवशता ने मुझे बहुत बेचैन किया।" [40]

कवि की यह बेचैनी मानवीय संवेदना की सबसे निकट की अनुभूति की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के निरन्तर भ्रष्ट होते चले जाने से उत्पन्न हुई है। जीवन यात्रा के आरम्भिक दिनों में ही हंसी, जो मुक्ति के एहसास की पहली संवेदनात्मक मानवीय अभिव्यक्ति है, वर्तमान दौर

में एक तरह से उस पर पाबंदी लग गई है। आज के मनुष्य का अपनी संवेदना के साथ स्वयं किये जाने वाले भ्रष्टाचार को देखकर रघुवीर सहाय कहते हैं कि "एक बहुत बड़े समाज की तस्वीर मेरे दिमाग में आती है कि जहां लोग कमजोर, कायर और साथ में चालाक हैं और वे ऐसी कोई हँसी बर्दाश्त नहीं करेंगे जो एक स्वतंत्र आदमी की हँसी हो।"[41] इस प्रकार जो स्वतंत्र आदमी गुलाम बनने से इंकार करता है वह कभी भी संस्थान के लिए खतरा बन जाता है।

शोषित वर्ग की स्थिति के वास्तविक कारणों को स्पष्ट करने, वर्तमान शासन व्यवस्था की भ्रष्ट नीतियों को उजागर करने, नये उद्योगपतियों तथा बड़े किसानों की सामन्ती मनोवृत्ति को विश्लेषित करना, राजनैतिक स्तर पर समाजवादी सिद्धान्तों का महत्व सिद्ध करना, मानव-अधिकारों के लिए लड़ना, सहानुभूति तथा पक्षधरता के लिए दया की अपेक्षा अधिकार भावना को मजबूत करना, नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार का भंडाफोड़ करना मनुष्य के भीतर दोहरे मूल्यों की विसंगति को स्पष्ट करना, महानगरी सभ्यता के विष के व्याख्यातीत करना, नारी जीवन के अन्तर्द्वन्द्वों को तथा मजदूर वर्ग की महिला के लिए लड़ाई लड़ना आदि अनेक समकालीन प्रसंगों पर आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से परिपक्व विचार करते हुए समन्वय, सहयोग, सामंजस्य तथा समझौतों के स्थान पर टकराव, विरोध, असहमति, अस्वीकृति एवं प्रतिरोध को स्वर देना समकालीन कविता ने प्रतिपक्ष की सार्थक भूमिका का निर्वाह किया है।[42]

§3§ <u>स्त्री वर्ग</u> :-

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" में कवि ने औरतों पर काफी कवितायें लिखीं हैं। इनकी कविताओं में समकालीन संस्कृति और समाज के नासूरों की टटोल है। "मेरी बेटी, हकीम और औरत, पागल औरत, दयावती का कुनबा,

बच्चे की मां, गदराई लड़कियाँ, कुछ का वक्तव्य, विदाई, कस्बे में दिन ढ़ले, वो छोटे बच्चे, परिवार, जैसी तमाम कविताओं में औरत है। "इस दुनिया में, इस देश में, इस समाज में और इस परिवार में, जुल्म की शक्ल सिर्फ औरत बताती है, मर्द महज सब लोगों जैसा हो जाता है।" [43]

"लोग भूल गये हैं" कविता संग्रह के निवेदन में कवि कहता है कि "संघर्ष की रणनीतियां उन्हीं के . आदर्शों की पूर्ति करती दिखाई दे रही है जिनके विरूद्ध संघर्ष है"। सीढ़ियों पर धूप में की एक कविता --

नारी बिचारी है
पुरूष की मारी है
तन से क्षुधित है
मन से मुदित है
लपक कर झपककर
अंत में चित्त है [44]

नारी को पहले से ही समाज में सताया जाता रहा है तभी उसका स्वरूप ऐसा बन गया है जैसा कि कवि ने यहां पर वर्णन किया है।

रघुवीर सहाय की कविताओं में मानवीय करूणा स्त्रियों और बच्चों की यातनामय जिन्दगी की अभिव्यक्ति द्वारा सर्वाधिक व्यक्त

हुई है। मानवीय करूणा के संदर्भ में अपनी कविताओं में स्त्रियों और बच्चों के प्राधान्य के बारे में रघुवीर सहाय का कहना है कि "इन कविताओं में औरतें और बच्चे ज्यादा इसलिए आते हैं कि ये मेरे सबसे नजदीक हैं। और इसलिए भी हो सकता है कि जिस तरह के मानसिक आध्यात्मिक जुल्म का दर्द मैं देखता हूं वह सबसे ज्यादा औरतों और बच्चों पर ही होता है : कम से कम उनके जीवन में प्रकट - दिखाई देता है।" [45]

इस अर्धसामन्ती अर्धपूंजीवादी समाज में शोषण का सर्वाधिक आखेट स्त्रियों को अपनी कविताओं में लाते हुए रघुवीर सहाय ने मुक्तिबोध की तरह आत्मदया और भावुकता में नहीं फंसते बल्कि जिन सामाजिक स्थितियों के बीच से अत्याचार हो रहे हैं वह उनको समझने की कोशिश भी करता है -- जैसे

कई कोठरियां की कतार में
उनमें से किसी में एक औरत ले जाई गई
थोड़ी देर बाद उसका रोना सुनाई दिया
उसी रोने में हमें जाननी थी एक पूरी कथा
उसके बचपन से जवानी तक की कथा [46]

इस प्रकार समाज में औरतों पर पहले से अत्याचार होते आये हैं। कवि कहता है कि हमें उस औरत के रोने से ही सारी कथा जान लेनी चाहिए। क्योंकि उस औरत पर बचपन से जवानी तक अत्याचार ही होते आये हैं।

"हँसो-हँसो जल्दी हँसो" में पुरूष प्रधान अर्धसामन्ती और अर्ध-पूंजीवादी समाज के अन्तर्गत स्त्रियों का अकेलापन "अकेली औरत" कविता में नगण्यता और "किले में औरत" ये एकान्त भय, उन्होंने कहा यह एक चाल है, भय आदि में मूर्त करने की पहल की गई है।

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" में कवि कहता है कि ट्रेन में सफर में हिचकोले खाती हुई एक कामगार औरत, जिसके हाथ में एक पोटली है, और दूसरे हाथ में एक छोटा सा बच्चा, बच्चे को जांघ पर लिटाकर सुलाना चाहती है। वह थकी हुई है इसलिए बच्चे पर झल्लाती है और बच्चे के मुंह से दूध की बोतल लगा देती है। थकान के कारण स्त्री को जम्हाई आ रही है। कवि इस चित्र को करूणा के बगैर ही पूरा करना चाहता है। --

दूध जब पी चुका
फिर उसे पट करके ठोकने लगी
ठोकती जाये जुम्हाती
सो गया तब उसकी शक्ल पर
अपनी आँखों समेत
एक क्षण के लिए उसकी परछाईयां पड़ी [47]

कविता में वात्सल्य रस छलका नहीं पड़ता और न ही माँ और बच्चे के बीच की स्वाभाविक क्रिया के यन्त्रवत दिखाने के कारण यहां पर दिखाया गया है कि यह सम्बन्ध सूख गया है। कवि बड़े स्थिर भाव से इस दृश्य का आकलन करता है और एक कामगार मां और बच्चे का सम्बन्ध बनाता है जो परछाई की तरह और एक क्षण के लिये बच्चे के चेहरे पर पड़ती है।

रघुवीर सहाय के इस संग्रह में भारत का साधारण मनुष्य ही केन्द्रित है, अपनी अलग-अलग परिस्थितियों और मुद्राओं में। लेकिन वहाँ पर भी स्त्री उनकी कविताओं की धुरी बनती है।

कस्बे में दिन ढ़ले
युवती के चेहरे पर
लालटेन की आभा
अब और कोहरे में
सोया हुआ आंगन
करती है पार उसे रोशनी लिए युवती।[48]

यहां पर युवती के चेहरे पर पड़ने वाली लालटेन जैसे उसके व्यर्थ जीवन को ही प्रकाशित करती है। अब और कोहरे से घिरे जिस आंगन को वह पार कर रही है, वह उसे दबोचता हुआ उसके जीवन को बेकार करता हुआ हमारा ही समाज ही तो है। एक-दूसरे रूप में यहां एक स्त्री दिखाई पड़ती है।

हाथ बालों पर जिनके नहीं फेरा गया
बैठकर दो चार के संग
तजुर्बे अपने सुनाने को नहीं मौका मिला
औरतें वे सूखकर रह गई

उनकी बच्चियों ने जवां होकर दादियों की काठी पाई।[49]

"कस्बे में दिन ढ़ले" और "औरतें" कविता की औरत एक ही है रघुवीर सहाय की कविताओं की एक खूबी यह रही है कि वे जो चित्र कविता में देखते हैं या उनमें जो स्थिति बयान की जाती है। पहले वे अपने आप में सार्थक होती है। पहली कविता में सिर्फ एक

कस्बे की नौजवान लड़की लालटेन लेकर शाम के समय घर के आँगन को पार करने का चित्र सार्थक है, यहीं चित्र हमारे समाज की आम नौजवान लड़कियों के व्यर्थ होते जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है।

रघुवीर सहाय की कविताओं में काम, परिश्रम की अधिकता और एक रस जीवन की ऊब के चलते एक युवती के असमय ही अधेड़ हो जाने की नियति का आतंक बार-बार व्यक्त होता है। चालीस की उम्र की औरत भी उनकी कविताओं में एकाधिक बार उपस्थित हुआ है। वे अपने ऊपर दुहराव के आरोप का खतरा उठाकर भी करते हैं। लेकिन मार्के की बात उन्हें सदैव याद रहती है वे नई बोतल में पुरानी शराब नहीं भरते। उनकी प्रत्येक कविता में नया तेवर दिखलाई पडता है। "हकीम औरत में" एक बीस साल की लड़की बीमार होकर हकीम के पास आई है। नब्ज देखते-देखते हकीम उसके चेहरे पर नजर डालता है। इस संग्रह की कविताओं में ऐसे अनेकों मोड़ हैं जहां नये आश्चर्य का सामना हो जाता है।

रघुवीर सहाय की कुछ कवितायें बच्चों के ऊपर भी लिखी गई है। कवि की ज्यादातर चिंता बच्चों के यातनामय वर्तमान के साथ ही उनके डरावने भविष्य को लेकर भी है। यह अवस्था डरावने भविष्य की आशंका व्यवस्था के वर्तमान आतंक से पैदा हुई है।

बड़ी हो रही है लड़की मैं -----

वह बड़ी होगी
डरी और दुबली रहेगी
और मैं न होऊंगा

वे किताबें वे उम्मीदें न होंगी
जो उनके बचपन में थी
कविता न होगी, साहस न होगा
एक और ही युग होगा जिसमें
ताकत ही ताकत होगी
और चीख न होगी--[50]

यही भयावह आशंका "आत्महत्या के विरुद्ध" में भी मिल जाती है--

दोहराने दो मुझको अपनी बच्ची पर बाप का दुलार
वह जो अगली शताब्दी में विचित्र कोई मौत पाने की है" [51]

लेकिन "हँसो हँसो जल्दी हँसो" की कविताओं में यह भयद आशंका यथार्थ के और भी जटिल होने के कारण निकट का सत्य बन जाती है।

जैसे --

मैंने देखा मेरे एक बड़ा लड़का था
परदेश में था वह
जिस दिन उसे आना था नहीं आया
फिर सहसा जाना कि वह कभी था ही नहीं. [52]

इसके अलावा वर्तमान व्यवस्था में गरीबी में पलते हुए असुरक्षित बच्चों की जिंदगी ﴾आभार सोनार दिल्ली﴿ व्यवस्था द्वारा उनके इस्तेमाल --﴾फूलमाला हाथों में﴿ उनकी निराजन्य अब ﴾दर्द﴿ और फिर उनके डरावने भविष्य ﴾जीने का खेल﴿ से इस संग्रह की कविताओं को देखा जा सकता है।

जिसमें वे मानवीय करूणा का संसार रचते हैं।

स्त्रियों और बच्चों की शोषित ज़िंदगी की विडम्बनाओं को लेकर लिखी गई ये कवितायें इसलिए महत्त्व रखती हैं कि ये हमें जिस व्यापक मानवीय करूणा के संसार में ले जाती है वह संसार कवि की आत्मदया के विरूद्ध होने के कारण भावुकतावाद के दायरे में नहीं उलझता। बल्कि रचनात्मकता को नया आयाम देता है।

"लिखने के कारण" निबंध में कवि कहता है कि "मैं खुद जानना चाहूंगा कि क्या इन कविताओं को पढ़कर पाठक एक तरह की पीड़ा के विलास में डूब जाते हैं, जिसमें आत्मपीड़न का परपीड़न का सुख मिलने लगता है यानी यह होता है कि उसमें जो भी चरित्र है उनकी खोज करना चाहते हैं, उनके पास जाना चाहते हैं, उनको छूना, समझना देखना चाहते है, क्योंकि उनके लिए वे वास्तविक हो जाते हैं।" 53

अपनी कविताओं के रचना संसार में वास्तविकता की पहचान को वे गहरा करना चाहते हैं। इस समाजमें औरतों के दुखों की कुछ सीमा नहीं है। कवि ने एक कविता इसी प्रकार से लिखी है --"दयावती का कुनबा" यह कहानी बहुत लम्बी है। इसमें एक औरत पर दिन-पर दिन आते हुए दुखों की कहानी है। दयावती के शादी के बाद उसको चार बच्चे पैदा हुए। ससुराल में हर तरह के अत्याचार वह झेलती रही। इसके बाद बड़े होकर उसके पहले बेटे के तीन कन्यायें पैदा हुईं। वह लड़का पेट का मरीज था, दारू और सिगरेट अधिक पीता था, इसलिए वह महंगी दवाओं के बिना से मर गया क्योंकि प्राकृतिक इलाज उस गरीबी में असम्भव था। इसके बाद उसकी विधवा ही घुट-घुटकर मर गई। दूसरा लड़का भी इसी तरह गरीबी में गुजर गया और तीसरे ने अपनी बीबी से

झगड़ा करके विष खा लिया था। इसके बाद दयावती ने अपनी पोतियों को घर का काम-काज सिखाया और उनके लिए दामाद ढूँढ कर, दोनों विधवाओं को छोड़कर दयावती अपने प्राण त्याग देती है। कवि कहता है-- कि --

यह सब संक्षेप में मैंने बताया है
क्योंकि दयावती की कहानी बहुत लम्बी है
एक साल पति की सुश्रूषा करते हुए
कई बरस कम पढ़ी औरत के
सीने पिरोने की मेहनत मजूरी के
लड़की को रोजी कमाने के लायक बनाने के
इसमें दामाद खोजने को भी जोड़ ले
तो अंतिम सांस तक घिसटती दयावती
दोनों- विधवाओं को छोड़ गुजर जाती है
पोतियों की खबर हमें पता नहीं
वे अपनीदादी की तरह कहां
बोझ कम करने के लिए विदा होती हैं। [54]

इस प्रकार कवि ने बच्चों और स्त्रियों पर काफी कवितायें लिखी हैं। उन्होंने खुद कहा भी है कि मेरी कविताओं में औरतें, और बच्चे इसलिए आते हैं। क्योंकि वे मेरे जीवन के अधिक निकट हैं। स्त्रियां, इसलिए शोषित होती रही हैं क्योंकि वे एक जुट नहीं हैं।

[खण्ड - ब]

"रघुवीर सहाय की कविता के प्रेरणा स्रोत :--

रघुवीर सहाय की प्रेरणा के निम्नलिखित प्रेरणा स्रोत है --
[1] वैयक्तिक [2] सामाजिक [3] राजनैतिक [4] पत्रकारिता

1- वैयक्तिक :-

रघुवीर सहाय ने अपने कविता संग्रहों में अपने वैयक्तिक जीवन की अभिव्यक्ति की है। कवि ने स्वाभाविकता की तलाश में जीवन की साधारण स्थितियों के बीच कविता सम्भव करने में सर्जन प्रक्रिया के दौरान सहज आत्मस्वीकार की प्रवृत्ति तथा अपनी सीमा के यथार्थ के दौरान सहज आत्मस्वीकार की प्रवृत्ति तथा अपनी सीमा के यथार्थ की पहचान ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनकी एक कविता--

यही मैं हूँ
और यही मैं होता हूँ
थका, या उन्हीं के से वस्त्र पहले, जो मुझे प्रिय हैं--
दुखी मन से उतर आती है पिता की छवि
अभी तक जिन्हें कष्टों से नहीं निष्कृति
उन्हीं अपने पिता की मैं अनुकृति हूँ
यही मैं हूँ। 55

यहां पर उन्होंने अपने पिता की छवि को याद किया है। वे अपने पिता के कष्टों के बारे में भी सोचते हैं और कहतेहैं कि उन्हीं की एक अनुकृति हूं। कवि अपने पिता के जीवन के अनुसार ही अनुसरण करता है। एक दूसरी कविता "शक्ति दो" में वे कहते हैं --

शक्ति दो बल दो, हे पिता
जब दुख के भार से मन थकने को आए
और यह नहीं दो तो यही कहो
अपने पुत्रों और छोटे भाईयों से यही कहो
कैसे तुमने किया होगा अपनी पीढ़ी में क्या उपाय
कैसे सहा होगा, पिता, कैसे तुम बचे होंगे।[56]

रघुवीर सहाय कहते हैं कि हे पिता हमें समाज से लड़ने के लिए व जीवन में सभी परिस्थितियों का सामना करने के लिए शक्ति दो जिससे हम अपने जीवन को सफल बना सकें। धीरे-धीरे जिंदगी को ज्यादा समझने में पैदा हुआ वास्तविकता का यह अहसास यथार्थ के उन पक्षों से जुड़ गया जो समाज में शोषित मनुष्य के "आत्मपरायेपन" तथा अपने होने की चिन्ता से सम्बन्धित है। इसी प्रकार रघुवीर सहाय में यह स्वाभाविक सहज जीवन अधिक दिनों तक नहीं रह सका। रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं कि "जीवन की ये मार्मिक अनुभूतियाँ तीखेपन में बदल गईं।"[57]

रघुवीर सहाय को उनके जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं अपनी तरफ ज्यादा खींचती है, जिनके बीच अधिकांशतः जीवन घटित होता है। इस साधारण जीवन को घेरे हुए छोटी-छोटी घटनाओं में "जीवन की खोज" नई कविता के आरम्भिक दौर में रघुवीर सहाय की कविताओं की दिलचस्प और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है। वे जीवन को उसकी स्वाभाविकता में प्राप्त करना चाहते हैं। यह स्वाभाविकता जीवन को सम्पूर्णता में जीने का प्रयास करने वाले व्यक्ति के संवेदनशील मन की स्वाभाविकता ही है। जैसे -=

आज फिर शुरू हुआ-जीवन
आज मैंने एक छोटी सी सरल कविता पढ़ी
आज मैंने सूरज को डूबते हुए देर तक देखा

जी भर आज मैंने शीतल जल से स्नान किया
आज एक छोटी सी बच्ची आई किलक मेरे कंधे पर चढ़ी
आज मैंने आदि से अन्त तक पूरा गान किया
आज फिर शुरू हुआ जीवन [58]

यहां पर कवि ने उपनी दिनचर्या का वर्णन किया है। पूरी दिनचर्या से कविता में जिन समान्य स्थितियों का चुनाव किया गया है उनके प्रति कवि की सिर्फ आत्मीयता ही कविता में महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि यहां महत्वपूर्ण है जीवन की समान्यताओं के बीच जीवन की स्वाभाविक रचनाशीलता की सार्थक पकड़। रामस्वरूप चतुर्वेदी का एक कथन इस प्रकार है--"जीवन कैसे फिर प्रकृति में शुरू होता है और रचना का आज कैसे जीवन में बार-बार अवतरित होता है, यह ...... इस कविता की मूल भूमि है।"[59]

अशोक वाजपेयी इस कविता में जीवन के एक नये आरम्भ का स्वच्छ सीधा अनुभव देखते हैं।" यहां जीवन की नई शुरूआत खोई हुई स्वाभाविकता को फिर से तलाशने के कारण पैदा हुआ है। जीवन अपनी छोटी से छोटी घटना में भी उतना ही जीवन है यहां पर उसे महसूस करने का सवाल है।[60] "दूसरे सप्तक" में भी रघुवीर सहाय ने एक कविता लिखी है --

मेरे जीवन की कोई घटना हेय नहीं [61]

दूसरे सप्तक में ही "पहला-पानी" मुंह अंधेरे, कविता में इन्होंने जीवन के साधारण चित्रों में सौन्दर्य की तलाश की है। निराला ने भी "अनामिका" शीर्षक कविता में ऐसे ही चित्रों को दर्शाया है। "दूसरा सप्तक" में कवि ने अपनी अधिकांश कविताओं में जीवन की स्वाभाविकता और साधारणतया के चित्र प्रस्तुत किये हैं। "सीढ़ियों पर धूप में" यह प्रवृत्ति थोड़े परिवर्तन

के साथली गयी है। इस प्रकार सीढ़ियों पर धूप में की कुछ कवितायें जैसे--"बौर", "आओ नहाए", "जभी पानी बरसता है", "रूमाल", तथा "पानी" आदि है।

जभी पानी बरसता है तभी घर की याद आती है
यह नहीं कि वहां हमारी प्रिया, विरहिन, धर्मपत्नी है
यह नहीं कि वहां खुला कुछ है पड़ा जो भीग जायेगा
बल्कि यह कि वहां सभी कमरों कुठरियों की दीवालों पर
उसी छत है।[62]

उनकी एक कविता "रूमाल" में उनको अपने रूमाल की याद आती है जिससे उन्होंने पसीना, नाक और पैन की निब पोंछी थी।

वह मेरा रूमाल कहां है ?
कहां रह गया ?
कहीं उसे मैं छोड आया हूं कुर्सी पर ?
वह कितना मैला था
उससे मैंने जूता नाक पसीना और कलम की निब पोछी थी।[63]

इसी प्रकार "बौर" कविता में नीम के बौर की सहज गंध में कवि एक दूसरे सुख का परिचय पाता है --

नीम में बौर आया, इसकी सहज गंध होती है
मन को खोल देती है गंध वह, जब मति मंद होती है
प्राणों ने एकऔर सुख का परिचय पाया.[64]

यह सुख " दिल्ली मेरा परदेस" की इन पंक्तियों में भी है जिसमें कवि कहता है कि बसन्त आ गया है" और नीम में फिर फूल आना शुरू होंगे। खुशबू से भारी हवा में एक झपक सी होगी और हलका सा आलस्य भी, पर नीम फूलता चला जायेगा, ठीक गर्मियों के मध्य तक और तब जैसे सारी मिठास खोकर खंखड हो जायेगा, परिपक्व और केवल उपयोगी वस्तुएं देने योग्य।" [65]

कवि ने "मेरा एक जीवन है" कविता में अपने बीते हुए जीवन की याद करता है और कहता है कि अब मेरे साथ कोई भी नहीं । इस हाहाहूती नगरी में मैं बिल्कुल अकेला हूं।

सारे संसार में फैल जायेगा एक दिन मेरा संसार
सभी मुझे करेंगे - दो चार को छोड़ कभी-न-कभी प्यार
डूब जायेगा तंत्रीनाद कवित्त रस में, राग में, रंग में
मेरा यह ममत्व--, जिससे मैं जीवित हूं। [66]

कुछ पंक्तियों में कवि अपने घर की याद भी करता है। जिस शहर में कवि पैदा हुआ था उसका वर्णन करते हुए कहता है कि उसके मुंडेर कुछ चौड़े हुए दिखाई देते हैं, उसकी छत भी बहुत नीची है और जीना बहुत खड़ा और बाहरी दरवाजा जब बन्द करते हैं तो बहुत ही आवाज करता है। जैसे --

फिर उसी शहर में, जहां पैदा हुआ
उनसठ बरस, हुए
और उसी घर में किवंदती के अनुसार जो मेरा घर था।
ये मुंडेर कुछ चौड़े हो गये लगते हैं,
छत कुछ नीची अधिक,
जीना, ज्यादा खड़ा-चौखट अधिक घिसी
और सदर दरवाजा भिड़ते ही खड़-खड़ करता है। [67]

"हँसो–हँसो जल्दी हँसो" की एक कविता "जीने का खेल" में कवि ने अपने अन्तिम क्षणों की कल्पना की है । जैसे --

एक दिन
मेरे अपने जीवन में ही खत्म होने वाला
है यह खेल

इस घर की दीवार पर मेरी तस्वीर होगी
बच्चे आयेंगे पर मेरी कल्पना में नहीं – अपने
समय में आयेंगे
और उनकी बोली में उनका तर्क नहीं होगा
जिसको आज सुनता हूं --[68]

इस प्रकार कवि ने अपने व्यक्तित्व की चर्चा भी अपनी कविताओं में की है। "रघुवीर सहाय के रचनाशील व्यक्तित्व की सबसे बड़ी खूबी शायद उनकी सम्पन्न और आत्मप्रबुद्ध जनतांत्रिक मूल्यों के पक्षधर, उदघोषक या वकील थे बल्कि इस बात में थी कि उन्होंने इन मूल्यों को निर्दिष्ट और इनके पक्ष को परिभाषित मानकर इस तरफ से आंखें नहीं मूंद ली। उन्होंने किसी जड़ अमूर्तता में इन्हें ग्रहण नहीं किया बल्कि ठोस आलोचना करते हुए बार-बार परखा। यह निरन्तर जागृत, सचेत चीज को उलटती, पलटती, खोजती, बचाती और नष्ट करती हुई कठोर आलोचनाशीलता ही रघुवीर सहाय की संवेदनशीलता की सबसे बड़ी उल्लेखनीय विशेषता है। जो विद्वान इसे निरी आधुनिकता, मानकर बड़ी आसानी से पल्ला झाड़ लेते है वे यह नहीं देख पाते कि कवि ने

इस विवेक को समाज के भीतर मनुष्यों और संस्थाओं के आपसी सम्बन्धों के भीतर अत्याचार, अन्याय और पतन के अनगिन

दृश्य रूपों की चर्चा की व्यथा भरी मुश्किल, छानबीन के दौरान विकसित किया था।[69]

§2§ सामाजिक :-

भारतीय समाजवादी आन्दोलन, राष्ट्रीयता, लोकतंत्र तथा समाजवाद के सिद्धान्तों पर आधारित था। एक नई समतायुक्त सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था और एक नये मनुष्य का निर्माण रघुवीर सहाय का लक्ष्य था। दल और राजनीति तो उपादान मात्र थे। भारतीय समाजवादी दृष्टिकोण में भारत एक राष्ट्र के रूप में और भारतीय जन एक मनुष्य के रूप में सम्पूर्ण मानवता से भी उतनी ही गहराई से जुड़े माने गये जितने भारतीय राष्ट्रीयता से। डा० लोहिया की मृत्यु के बाद भारतीय समाजवादी आन्दोलन विचारधारा और कार्यक्रम के धुंधलेपन, दूरगामी और तात्कालिक लक्ष्यों में विभेद कर पाने की क्षमता के अभाव तथा नेताओं की आपसी छीना-झपटी के कारण लगातार बिखराव की ओर बढ़ता जा रहा था। रघुवीर जीने बिना किसी दलगत विवाद में पड़े भी, भारतीय समाजवादी आन्दोलन और विशेष रूप से डा० लोहिया के दार्शनिक-राजनैतिक सिद्धान्तों की मूलभूत स्थापनाओं के संदर्भ में एक "नवसमाजवादी" विश्लेषण प्रदान किया।

रघुवीर सहाय अपनी कविता "बेसुरे लोग" में जाँति-पाँति के भेदभाव को मिटाने की कोशिश करते हैं। यहां पर कवि ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का वर्णन किया है। --

मैं जहाँ रहता हूं, हिन्दू और मुसलमान
दोनों बेसुरे हैं। भजन और कीर्तन
करते हैं, ढोलक और चिमटे की
ठक ठक सुन पड़ती है
भजन के शब्द नहीं अजान दी जाती है।[70]

लोहिया के शब्दों में --"जाति व्यवस्था का विरोध तो महात्मा बुद्ध के जमाने से कबीर के युग तक बराबर होता आया है और महात्मा गाँधी ने भी जहां वर्ण व्यवस्था का पक्ष लिया है वहां उन्होंने भी "जाति व्यवस्था" के खिलाफ काफी जोरदार लड़ाई लड़ी। अब सवाल यह उठता है कि जब जाति-व्यवस्था के खिलाफ गुजरात में स्वामी दयानंद, यूरोप के दीनबंधु सी० एफ० एण्ड्रूज, महाराष्ट्र के फुले, मद्रास के रामास्वामी नैकर, सी० एन० अन्ना दुरै, बड़ौदा स्टेट के डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर तथा बिहार के जगजीवन राम लड़ाई लड़ रहे थे तब उन्होंने महात्मा गांधी को ही "भारतीय समाजवाद के जनक" बनने का सम्मान क्यों दिया? इसका जवाब देते हुए डॉक्टर लोहिया ने कहा था कि जहां महात्मा गांधी की दृष्टि में एक समग्रता थी, जहां उनके पास समाज-परिवर्तन की एक व्यापक रूपरेखा थी, वहां इन कथित समाज-सुधारकों (विशेषतः जो सीमित हरिजन सुधार की बात कर रहे थे) की दृष्टि में संकीर्णता थी और उससे सामाजिक वैषम्य के बढ़ने की अधिक सम्भावना थी। [71]

रघुवीर सहाय लोहियावादी प्रवृत्ति के थे। रघुवीर सहाय ने समकालीन सामाजिक यथार्थ के समानान्तर एक रचनात्मक प्रति संसार की रचना की है, जिससे उन्हें समकालीन सामाजिक यथार्थ को और ज्यादा गहराई से समझाने तथा संवेदना के स्तर पर महसूस कराने में अधिक सफलता मिली है। एक और विशेषता जो इन कविताओं में हमें दिखाई पड़ती है। वह है अपने वैयक्तिक जीवन का विरोधाभास --जैसे--

मुझे कुछ करना था, पर मैं कुछ और कर रहा हूँ,
मुझे कुछ और करना था, इस अधूरे संसार में मुझे
पूरा करना था मकान मालिक के वायदे के अलावा कुछ
और मुझे, करना था इस ठसाठस भरे कमरे में
हाथ में तश्तरी लिये, खड़े-खड़े खाते रहने के अतिरिक्त। [72]

जिन साधारण लोगों की दर्दनाक स्थितियों को रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है वे लोग, शोषण के आतंक के बीच असंगठित हैं। इसलिए सामाजिक असहायता के शिकार भी हैं। "सड़क पर रपट" कविता में शोषित समाज की ज्यादती के निरन्तर बढ़ते चले जाने तथा शोषित मनुष्य की यंत्रणा के और भी आत्यंतिक और जटिल होते जाने की मयद स्थितियां बयान की गई हैं। जैसे --

"इस वर्ष मैंने देखा बल्कि एक दिन देखा
एक दिन अस्पताल एक दिन स्कूल के सामने
खड़ा हुआ एक लंगड़ा बूढ़ा एक दिन वहां लड़का पार
जाने को एक घंटे इंतजार में
कि कोई कार वाला गाड़ी धीमी करे

इस वर्ष मैंने और अधिक मोटर मालिक देखे नियम
तोड़कर
बाएं हाथ से अगली गाड़ी से अगिया जाते हुए
उन लड़कों यहां जिक्र नहीं किया गया
जो इन्हें देखकर खून का घूंट पीकर रह जाते हैं
क्योंकि उनमें से कोई दुर्घटना में शामिल नहीं हुआ।"[73]

रघुवीर सहाय समाज के शोषण की - स्थितियों का भी वर्णन करते हैं। उनका आग्रह यह है कि शोषण के शिकार पहले अपनी स्थिति को पहचान करें, फिर अपनी मुक्ति के लिए शोषक वर्ग के विरुद्ध खड़ा हों, क्योंकि शोषक वर्ग के विरुद्ध निर्णायक लड़ाई अन्ततः शोषित वर्ग स्वयं ही लड़ता है। "हंसो हंसो जल्दी हंसो" की एक कविता --" ऐसे मौकों पर हँसो ......

जो अनिवार्य हों, जैसे गरीब पर ताकतवर की मार
जहां कोई कुछ नहीं कर सकता
उस गरीब के सिवाय
और वह भी अक्सर हँसता है. [74]

रघुवीर सहाय वर्तमान समाज में स्त्री की "स्थिति तथा उसकी गुलामी-भरी जिन्दगी को देखकर दुखी होते हैं। स्त्री को अपनी इस गुलाम स्थिति की पहचान कैसे हो सकती है ताकि वह इस युद्ध के विरुद्ध खड़ी हो सके। इनकी भूल फूल, सनीचर, हमारी हिन्दी जैसी कुछ कवितायें हैं, जो स्त्रियों पर व्यंग्य कसती है। उन्होंने हिन्दी को एक दुहाजू की बीबी के रूप में व्यक्त किया है--

हमारी हिन्दी दुहाज़ू की एक नई बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली

घर से निकलने का सवाल ही नहीं उठता
औरतों को चाहिए घर ही में है
एक महाभारत है एक रामायण है तुलसीदास की भी
राधेश्याम की भी

घर में सब कुछ है जो औरतों को चाहिए
सीलन भी और अंदर की कोठरी में पांच सेर सोना भी
और संतान भी जिसका जिगर बढ़ गया है

हमारी हिन्दी सुहागिन है सती है खुश है
उसकी साध यही है कि खसम से पहले मरे
और तो सब ठीक है पर पहले खसम उससे बचे
तब तो वह अपनी साध पूरी करे... [75]

रघुवीर सहाय ने बार-बार यह स्पष्ट किया है कि हिंदी के सरकारीसलाहकारों ने 1947 के बाद सरकार से एक अघोषित समझौता कर लिया था। समझौता इस बात को लेकर था कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचारित तो किया जायेगा लेकिन उसे कभी इस योग्य नहीं बनने दिया जायेगा कि वह राष्ट्रभाषा बन सके। इससे अंग्रेजी तो बनी ही रहेगी, हिन्दी भी ऐसी विकसित होगी जो सिर्फ अंग्रेजी का स्थानापन्न होगी।

आज के वर्तमान दौर में हिन्दी को महज अनुवाद की भाषा बनाकर उसे राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने का दावा करने वाले हिन्दी के सलाहकार, सरकारी संस्थानों में मूर्ख हिन्दी अधिकारी तथा जड़ हिंदी अध्यापक हिन्दी को अपना जीवनयापन तथा सुख सुविधा का उपकरण बताते हुए अंततः शासक वर्ग के हितों को पुष्ट कर रहे हैं तथा भाषा में विकास के बदले सड़न पैदा कर रहे हैं।

समाजवादी भारतीय चिन्तन में लोहिया ने हिंदी के विषय में इस प्रकार कहा है कि " केन्द्र की भाषा हिन्दी रहे और हर प्रांत में अपनी-अपनी भाषा चले। केन्द्र का राज्यों से व्यवहार हिन्दी में हो और जब तक कि वे हिन्दी न जान लें, केन्द्र को चिट्ठी अपनी भाषाओं में लिखें। स्नातक स्तर तक की पढ़ाई का माध्यम अपनी क्षेत्रीय भाषायें हों और उसके बाद का हिन्दी में। बी०ए० तक अपनी भाषाओं के साथ हिन्दी भी वैकल्पिक विषय रहे। छोटी-छोटी अदालतों का काम अपनी भाषाओं में हो तथा उच्च और सर्वोच्च न्यायालय में हिन्दी होनी चाहिए।[7]

रघुवीर सहाय ने हिंदी से सम्बन्धित कई कवितायें लिखी, जैसे हिन्दी प्रेमियों के दो शब्द, भाषा की पूजा बन्द करो। रघुवीर सहाय

कहते हैं कि "भाषा के ठेकेदार, जो अंग्रेजी जगह, ठीक उसी तरह, उसी जगह हिंदी की प्रतिष्ठा चाहते है ताकि हिन्दी भी एक तरह की अंग्रेजी बन जाये।" [77]

डा. राम मनोहर लोहिया जी कहते हैं कि भाषा को सुधारने का काम जितना भाषा शास्त्री या शब्द कोष निर्माता करता है उससे ज्यादा वकील, जज, राजपुरूष, अध्यापक, लेखक, वक्ता वैज्ञानिक इत्यादि किया करते हैं अपने इस्तेमाल के द्वारा । इनके इस्तेमाल से भाषा सुधरती है न कि सुधर जाने के बाद लोग इसका इस्तेमाल करने बैठते हैं। [78]

रचना की सम्पूर्णता रघुवीर सहाय को सामाजिक यथार्थ की समझ तथा उसके साथ सार्थक रिश्ता कायम करने से सम्भव हुई है, क्योंकि इनकी दृष्टि में "समाज की समझ का मतलब है, समाज में मनुष्य और मनुष्य के बीच गैर इंसानी रिश्ते होते हैं उनकी समझ-कहां से वे पैदा होते हैं इसकी समझ और उनकी जड़ों तक पहुंच, इतिहास की समझ। [79] इस समझ को एक को भी सार्थक पक्षधरता से जुड़ना चाहिए " कि इन रिश्तों को ऐसे ही नहीं रहने देना है। " क्योंकि इंसान और इंसान के बीच एक गैर बराबरी का रिश्ता है। और इस रिश्ते को कोई आदमी मानता है कि ऐसे ही रहना चाहिए तो वह कोई रचना नहीं कर सकता।" [80]

सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में रघुवीर सहाय की प्रतिबद्धता उनकी रचना का राजनीति से स्वतंत्र रिश्ता स्थापित करती हुई दिखाई पडती है। नेमिचंद्र जैन की एक राय उसकी प्रकृति के बारे में इस प्रकार है--" मोटे तौर पर वामपंथी या स्थापित व्यवस्था विरोधी और जनसाधारण की ओर उन्मुख है।" [81]

रघुवीर सहाय ने अपने एक निबंध संग्रह "वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे" में लिखा है कि हिन्दू-मुसलमान संघर्ष की प्रवृत्ति भारत की समाजवादी आकांक्षाओं की सबसे बड़ी शत्रु है। वह समाज की अन्यायी-व्यवस्थाओं को बदलने के स्वप्न को, जो कि स्वाधीनता का ही दूसरा नाम है, एक हिंसक चीज का विकृत रूप दे देती है और जाति तथा शोषण के मेल से बनी मानव द्वेषी भारतीय समाज-व्यवस्था को फूट की असंख्य दिशाओं में एक साथ ढकेल देती है। दास भाव से शासन की नकल करता हुआ प्रत्येक वर्ग एक हिंसक चीज अपने से कमजोर पर उतारता है। दंगे ऐश्वर्यशाली बस्तियों में नहीं होते, मारे जाते हैं तो रोज कुआ खोदकर पानी पीने वाले ही मारे जाते हैं। इस स्थिति में यह व्यंग्य हिंसा है कि यही निर्बल लोग हिन्दू-मुसलमान एकता के सच्चे समर्थक हैं, क्योंकि उनके लिए जाति और धर्म के न्यस्त स्वार्थों से कहीं अधिक प्राथमिक रोजी-रोटी का सवाल है।

इसी स्तर पर हिन्दू और मुसलमान दोनों में भारतीय चरित्र और स्वाभाव की सबसे गहरी समानताएं देखी जा सकती हैं। एक बार यदि ये समानताएं खंडित हो गई : तो ऐसा कुछ भी नहीं बचेगा, जो रचनात्मक हो। केवल धर्म के ठेकेदारों का राजनैतिक अखाड़े में ताल ठोकने का कर्कश शब्द बचा होगा और उसी को वे धर्म कहेंगे। यो ही धर्म घृणा का वाहक बनता जा रहा है।

"सीढ़ियों पर धूप में" काव्य-संग्रह में कवि की बड़ी सहजता से रोजमर्रा की जिन्दगी के सामान्य से अनुभावों को उठाता है, उनमें प्रतिबिम्ब सामाजिक रिश्तों और उनके पीछे की सोच को लेकर सवाल पर सवाल करता हुआ आलोचनात्मक ढंग से सामाजिक ढांचे की बुनियादी कमजोरियों तक पहुंचता है। वह कह उठता है कि --

यह क्या है जो इस जूते में गड़ता है
यह कील कहां से रोज निकल आती है
इस दुख को रोज समझना क्यों पड़ता है.[82]

ऐसे ही साधारण सवाल से और धीरे-धीरे श्रम के शोषण की प्रक्रिया और गैर बराबरी के बुनियादी विश्वास पर टिके सामाजिक ढांचे और उससे नियंत्रित जीवन मूल्यों तथा व्यवहार के रूपों की तीखी आलोचना का परिप्रेक्ष्य सामने आता है। इन स्थितियों के लिए जिम्मेदार सामाजिक शक्तियों की पहचान होने लगती है। जैसे --

इन कष्ट को उठाने का कोई मतलब है
या है यह केवल अत्याचार किसी का
"यह तो है ही, शुभचिंतक यों कहते हैं,
अपमान, अकेलापन, फाका, बीमारी
क्यों है, और वह सब हम ही तो सहते हैं ?[83]

इन्हीं दुखों के सामान्य अनुभव को तर्कसंगत प्रश्नाकुलता और शोषित मनुष्यों के साथ बुनियादी सहानुभूति के स्तर से उपजी अपनी पक्षधरता के सहारे, कवि उसकी सामाजिक जड़ों से जोड़कर सम्पूर्णतः प्रत्यक्ष करता है। यही यथार्थ की पहचान और अनुभव की व्याख्या से अलग अपनी पहचान और अपनी व्यवस्था की खोज की इस प्रक्रिया में वह अपने को बदला हुआ पाता है। कविता के अन्त तक अनुभव की यह साझेदारी एक हमकद निश्चय की साझेदारी में परिवर्तित हो जाती है । जैसे --

हमको तो अपने हक मिलने चाहिए
हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
"कम से कम" वाली बात न हमसे कहिये ..[84]

इसी प्रकार दूसरी कवितायें, दु...., सभी लुजलुजे हैं और पढ़िये गीता, अपने आप में बंद उस निश्चित दुनिया पर तीखी व्यंगात्मक बौछार करती हैं। जिसके भीतर कभी यह शंका पैदा ही नहीं होती कि उसके व्यवहार और विश्वास गलत हैं या ठीक हैं।

"लोग भूल गये हैं" काव्य-संग्रह में रघुवीर सहाय अपनी पूरी ईमानदारी के बावजूद एक हद से आगे बढ़कर यथार्थ की जड़ों को न तो बदलना ही चाहती है और न उनके खिलाफ संघर्ष करना। इस संग्रह की कवितायें "मझदार से या कहे कि बीच भंवर से लिखी हुई कवितायें हैं"। "कवि का विश्वास है कि अपनी कविता के वर्तमान दौर में से एक बार बाहर आकर अपना अधूरापन पाठकों को दिखाने के पीछे समाज के वर्तमान दौर का दबाव है जो कवि पर पड रहा है। अपने को पूरा करना अपने अधूरे-पन को समाज के सामने परीक्षा और पडताल के वास्ते लाये बिना आज सम्भव नहीं रह गया है।" 85

जैसे -----

आज के समाज का मानस यही है "तुम कहते हो इस कविता में".

बगैर यह जाने कि तुम कितना कम इस समाज को जानते हो

हम लिखते हैं कि
उसकी स्मृतियों में फिलहाल एक चीख और गिड़गिडाहट की हिंसा है
उसकी आँखों में कल की छीनाझपटी भागमभाग का पैबन्द इतिहास

उसके भीतर शब्द रहित भय और जख्मी आग है

यह तो हम लिखते हैं पर उस व्यक्ति में है
जो शब्द वे हम जानते हैं

जो शब्द हम जानते हैं उसकी अभिव्यक्ति नहीं
विज्ञापन हमारा है। [86]

"हँसो-हँसो जल्दी हँसो" की कवितायें भी सामाजिक चेहरों के बीच ज्यादा दूरी बनाये रखने और उसे बेहद जरूरी मानने वाले जीवन व्यवहार तथा मूल्यहीनता के आम माहौल की तीखी आलोचना करती है। जीवन के सभी पक्षों में नैतिक गिरावट के निर्लज्ज स्वीकार तथा सोच और व्यवहार में सिनिकल रवैये के विस्तार से समाज में मूल्यहीनता का ऐसा वातावरण बनाया जाता है । जिसके बीच विवेकपूर्ण सोच और मानवीय व्यवहार हास्यास्पद से लगने लगे।

रघुवीर सहाय "लोहियावादी समाजवाद" के पक्ष में थे। रघुवीर सहाय (सम्पादक-दिनमान) ने इस लेखक को यह बतलाया कि लोहिया लोकसभा में तीन आने जैसे बहस चलाकर देश को अन्दर से गरमाते थे और जाति तोड़ो, दाम बांधों तथा अंग्रेजी हटाओ जैसे आन्दोलन चलाकर देश को बाहर से गरमाते थे। इस तरह वे देश में समाजवाद की ज्वाला को धधकाए रखते थे। इसके विपरीत मधुलिमये, रामचन्द्र जसे लोग यह समझते हैं कि संसद की लाइब्रेरी में छः घंटे बैठकर तथा दो घंटे भाषण देकर देश में समाजवाद ला रहे हैं। प्रसिद्ध किसान नेता ए० के० गोपालन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि अगर आपको किसी क्रांतिकारी नेता को खतम करना है तो आप उसे संसद में चुनवा दीजिये बाकी बचा काम तो नई दिल्ली में काम करने वाले विदेशी दूतावास अपने आप लेंगें। जहां कि विलासिता तथा वैभव का नंगा नाच होता है जिसमें कि कठोर विश्वामित्र भी किसी मेनका के चक्कर में फंसकर अपनी तपस्या का फल गंवा देते हैं। [87]

§3§ राजनीतिक :-

रघुवीर सहाय का "आत्महत्या के विरुद्ध" काव्य संग्रह राजनीतिक काव्य संग्रह है। जिस जनता के पक्ष में रघुवीर सहाय राजनीति को अपने रचनाकर्म से सर्जनात्मक अनुभव देना चाहते हैं, आत्महत्या के विरुद्ध की कविता "नेता क्षमा करें" में वे उस जनता के साथ अपने यथार्थ रिश्ते को एक कवि होने के नाते से सर्जनात्मक बनाने के प्रयास को स्पष्ट करते हैं। इस कविता की शुरू में ही कवि यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में अपने कवि की सीमायें स्पष्ट करते हुए देश के नेताओं और लोगों की उन परम्परित झूठी और सर्जनात्मक अपेक्षाओं को पूरा न कर पाने के लिए क्षमा याचना कर रहे हैं। इसके साथ ही साथ वर्तमान यथार्थ की जटिलता के विषय में नेता और जनता के बीच अपना रिश्ता कायम रखते हैं।

नेता क्षमा करें कविता में --

लोगों, मेरे देश के लोगों और उनके नेताओं
मैं सिर्फ एक कवि हूं
फिर कुछ लोग उठे बोले कि आइए तोड़ें पुरानी-फिलहाल मूर्तियां
साथ न दो सिर्फ हाथ ही दो उठा
झोले में बन्द कर एक नई मूर्ति मुझे दे गये । 88

इस कविता में मूर्ति को तोड़ने का प्रसंग है। पहले तो नेताओं ने मूर्ति तोड़ने का आदेश दिया। इसके बाद उसी जगह एक नई मूर्ति स्थापित कर दी। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने पाखंड और अत्याचार का नकली विरोध किया। कवि कहता है कि मेरे देश के लोगों और नेताओं से मैं कहना चाहता हूं कि मैं सिर्फ एक कवि हूं।

आधुनिक समाज में प्रचलित पाखंडी नेताओं के नेतृत्व ने संचार और प्रचार के माध्यमों द्वारा भाषा की रचनात्मकता और उसके अर्थ को साँचों में ढालकर उसका व्यवसायीकरण कर दिया है। कवि ईमानदारी के साथ कुछ कहना चाह रहा है लेकिन उसका अर्थ लोग दूसरा ही निकाल लेते हैं --

मैंने कोशिश की थी कुछ कहूं उनसे
लेकिन जब कहा तुमको प्यार करता हूं
मेरे शब्द एक लहरियाता देशगाना बन
उकड़ू बैठे लोगों पर भिनभिनाने लगे. 89

जब कवि कहता है कि वह उनसे प्यार करता है तो उसका यह कथ्य जन-समुदाय के बीच असफल होता दिखाई देता है। " मैं तुम्हें प्यार करता हूं" जैसे कथन को राजनैतिक नेताओं ने इतना भ्रष्ट कर दिया है कि उसमें पेशेवर आत्मीयता झलकती है। रघुवीर सहाय यहां पर जनता के साथ एक संवादयुक्त भाषा की खोज करना चाहते हैं। आगे कवि कह उठता है कि --

अपनी एक मूर्ति बनाता हूं और ढहाता हूं
और आप कहते हैं कि कविता की है
क्या मुझे दूसरों को तोड़ने की फुर्सत है। 90

कवि की यह महत्वपूर्ण कोशिश ही उनकी कविता है। वे निश्चित रूप से जनता के ईमानदार संवाद की पहल में जो अपने सर्जन की तस्वीर बार-बार बनायेंगे उसे बाहरी मूर्तियां तोड़ने का समय ही कहां है। मुख्य बात कवि के लिए यह है कि जिसके लिए मूर्तियां तोड़ी जा रही हैं, उससे

एक ईमानदार और रचनात्मक रिश्ता पहले स्थापित हो जिससे कवि यथार्थ को संभव कर सके। उन्होंने अपने वक्तव्य में लिखा है कि "अपनी उस कला परम्परा के लिए जिसमें मैं अपनी एक मूर्ति बनाता और ढहाता हूं और आप कहते हैं कि कविता की है।" 91

कवि रघुवीर सहाय कहते हैं कि (लेखक के लिए राजनीति से अलग रहना हर हालत में बेमानी और बेईमानी है। परन्तु राजनीतिक पार्टी का गुलाम हो जाना सिर्फ उसी हालत में बेईमानी है, जब आप यह हरकत समाज के नाम पर कर रहे हों।" 92

राजनीति के साथ अपनी रचनाकारिता के स्वतंत्र रिश्ते को उन्होंने बाद में अधिक स्पष्टता के साथ सामने रखा है। वे कहते हैं कि "मैं यह मानकर चलता हूं कि राजनीति एक अच्छे और सही अर्थ में एक रचनात्मक कर्म के रूप में अनिवार्य है और होनी चाहिए, वहां मैं यह भी मानकर चलता हूं कि राजनीति एक अच्छे और सही अर्थ में एक रचनात्मक कर्म के रूप में अनिवार्य है। और होनी भी चाहिए, वहां मैं यह मानकर चलता हूं कि मेरा जो लेखन है या मेरा जो साहित्य रचना का जो काम है, वह इससे स्वतंत्र है।" 93

आत्महत्या के विरुद्ध में वे कहते हैं कि राजनीति के प्रति मेरा जो यह रवैया है वह एक संकटकालीन रवैया है। यह वर्तमान परिस्थिति में रचना सम्भव करने की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। रघुवीर सहाय कहते हैं कि "मैं जो कुछ कर रहा हूं वह, राजनीति में जो कुछ लोग कर रहे हैं, उनके साथ मेल खा सकता है, उनका सहायक भी हो सकता है, उनमें मुझे शक्ति मिल सकती है - मानसिक-शक्ति - और मुझसे उन्हें भी मानसिक शक्ति मिल सकती है, लेकिन हम दोनों बराबर के स्तर के लोग हैं, हम दोनों में से कोई एक दूसरे का गुलाम नहीं हो सकता। हमारे

और उनके बीच बराबर एक तनाव रहना चाहिए। क्योंकि अगर यह तनाव नहीं होगा तो मेरा रचनाकार जिन्दा नहीं सकेगा। क्योंकि मैंने जहां यह माना है कि राजनीति यानी सामूहिक कर्म आवश्यक है, समाज को बदलने के लिए वहां मैंने यह भी माना है कि मैं एक व्यक्ति हूं, निजी मैं और मेरे कलाकार सहित मैं समाज के लिए बहुत आवश्यक है।[94] उनका मुख्य काम समाज में सच्चाई को समझना और ढूंढना है।

कवि ने अपनी साठोत्तरी दौर की कविताओं में एक वर्तमान व्यवस्था के मनुष्य विरोधी दूहरे चरित्र को नंगा करने की लगातार कोशिश की है तथा लोकतंत्र के नाम पर लोकतांत्रिक संस्थानों और उनके उपकरणों को भ्रष्ट करने वाले जन-प्रतिनिधि के अश्लील चरित्र और उनके खोखलेपन को उजागर किया है। कवि कहता है कि --

सिंहासन ऊँचा है, सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के
एक परिवार के
मुंह बाये खड़े हैं लड़के सरकार के
लूले काने बहरे विविध प्रकार के
हल्की सी दुर्गन्ध से भर गया है सभाकक्ष
सुनो वहाँ कहता है
मेरा प्रतिनिधि
मेरी हत्या की करुण कथा
हंसती है सभा
तोंद मटका
ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर

फिर मेरी मृत्यु से डरकर चिंचियाकर
कहती है
अशिव है अशोभन है मिथ्या है. 95

देश में संसद लोकतंत्र को बनाये रखने के लिए सबसे अधिक प्रतिनिधि संस्था है। इस हिन्दुस्तान में अधिकतर नेता ऐसे हैं जो गैर जिम्मेदार और भ्रष्टाचारी हैं। जनता का शोषण अधिकतर शासक दल के लोग ही करते हैं। इनमें अगर एक भी प्रतिनिधि सच्चा और ईमानदार है तो दूसरे भ्रष्टाचारी प्रतिनिधि उनकी आवाज को दबाते ही रहते हैं इसलिए वे देश के हित में कुछ भी नहीं कर सकते ।

"रचनाकार की शक्ति किसी भी जन-प्रतिनिधि एम० एल० एम० या एम० बी० से कम नहीं होती। रचनाकार भी अपने समय तथा समाज का प्रतिनिधित्व करता है। वह भी सर्वहारा वर्ग के दुखदर्द को दर्शाता है और उनका पक्षधर भी है। वह व्यवस्था को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं कर लेता, वरन् सामाजिक विसंगतियों को दूर करने, शासन की भूमिका का पर्यवेक्षण करता है तथा अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। अपनी यह प्रतिक्रिया राजनीतिक लाभ के लिए करता वरन जनमत को अपनी स्थिति के सम्बन्ध में अधिक सचेतन बनाने के लिए करता है। राजनीति में उसका प्रतिनिधि दल-बदल भी कर सकता है। लेकिन रचनाकार दल-बदल नहीं कर सकता, किसी प्रकार के प्रलोभन के समक्ष घुटने नहीं टेक सकता।" 96

मुक्तिबोध के पश्चात, रघुवीर सहाय , नागार्जुन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राजकमल चौधरी, धूमिल की रचनाओं में विरोध की स्पष्ट गूँज है। लेकिन रघुवीर सहाय ने इस गूंज को गहराई के साथ अपने भीतर अनुभव किया है और ज्ञानात्मक संवेदना के चित्र भी खींचे हैं --

एक बार जानबूझकर चीखना होगा
जिंदा रहने के लिए 97

रघुवीर सहाय कहते हैं कि मैं कवि हूं, मैं राजनीति में हिस्सा लेता हूं इसलिए कविता करता हूं, जैसे ही यह कहूंगा कि मेरी मृत्यु निश्चित है। यह जो समय है वह तमाम राजनीतिक व्यवस्थाओं के टूटने का समय रहा है, ऐसे समय पर सतही तौर पर यह मान लेना कि कविता और राजनीति का सम्बन्ध है, बहुत बडा धोखा होगा। वह साहित्य के मोर्चे को राजनीति के मोर्चे से एकदम स्वतंत्र मानते हैं और साहित्य को किसी तरह सामाजिक परिवर्तन में सहायक नहीं मानते ।" 98

रघुवीर सहाय ने राजनीति का एक विकृत रूप प्रदर्शित किया है। "आत्महत्या के विरुद्ध" की कविता अपने आप और बेकार में वे सामान्य भारतीय जीवन को पूरी तरह से व्यर्थ बताते हैं और उपहास करते हैं-जैसे --

देश की व्यवस्था का विराट वैभव
व्याप्त है चारों ओर
एक कोने में दुबक ही तो सकता हूं
सब लोग जो कुछ रचाते हैं उसमें
केवल अपना मत नहीं दे ही तो सकता हूं
वह मैं करता हूं
किसी से नहीं डरता हूं
अपने आप और बेकार . 99

कवि ने यहां पर रचना नीडर होकर की है। वे कहते हैं कि देश का विराट वैभव चारों तरफ फैला हुआ है। कवि सभी राजनीतिक दलों को

एक पलड़े में रखकर तुलना करता है--

टूटते टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जायेगा कि
बीस साल धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोलाभाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्यवाही करेंगे
हाय-हाय करता हुआ हाँ-हाँ करता हुआ हें-हें करता
हुआ, दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एक जुट होगा
जितना बड़ा दल होगा उतना ही खायेगा देश को। 100

इस कविता में अधिकांश नागरिक, संसदीय जनतंत्र और दक्षिणपंथी से लेकर वामपंथी राजनीतिक दल - इन सबों का एक स्वर में विरोध किया गया है। यही स्थायी रूप से विरोध पक्ष में रहने की राजनीति है, जो पूंजीवादी जनतंत्र में सीमित अधिकारों के महत्व, संसदीय प्रणाली की उपयोगिता और वामपंथी दलों की भूमिका को समझने से इंकार करती है।

हिन्दी कविता के साठोत्तरी दौर के आस-पास राजनीतिक, विद्रोह के प्रबल स्वर उभरने लगते हैं। सन् साठ के पश्चात भारत की संकटापन्न स्थिति स्पष्ट होने लगी थी। यह अवस्था प्राय: राष्ट्रीय प्रतिरक्षा, जातीय संकट, सामाजिक क्रान्ति सांस्कृतिक जागरण, स्वातंत्र्य चेष्टा तथा युद्ध अकाल, प्राकृतिक उत्पात तथा सामाजिक-राजनीतिक

अन्य अत्याचार या उत्पीडा से पैदा होती है। भारत में इनमें से अधिकांश कारण उपस्थित थे किन्तु इसका सबसे बड़ा दायित्व सम्भवतः राजनीति पर ही था। समाज में निरन्तर बढ़ता हुआ उत्पीड़न और विदेशी आक्रमण के कारण राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के उभरते हुए प्रश्न समकालीन खोखली राजनीति के कारण ही उपस्थित हुए। राजनीति बढ़ते हुए खोखलेपन का प्रमुख कारण है -व्यापारिक भावना। स्वतंत्रता के पश्चात से ही अधिकांश नेता राजनीति को व्यपार समझने लगे थे। राजधर्म राष्ट्र की समृद्धि का प्रतीक बन गया जिसके कारण देश की आर्थिक, सामाजिक, नैतिक परिस्थितियां निरन्तर बिगडती गईं। प्रत्येक राजनीतिक विचारधारा अन्ततः तानाशाही में परिवर्तित होती रही जिसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप समकालीन कवि किसी भी राजनीतिक विचारधारा के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सका। राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं के प्रति भी उसकी मुद्रा विद्रोह की ही रही है। [101] रघुवीर सहाय में विरोध की दृष्टि इस प्रकार से दिखाई गई है। वे हमेशा एक भ्रष्टाचारी नेताओं की राजनीति है। जैसे --

हँसती है सभा
तोंद मटका
ठठाकर
अकेले अपराचित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डरकर चिंचियाकर
कहती है
अशिव है अशोभन है मिथ्या है. [102]

यहां पर कवि कहता है कि नेताओं की सभा एक अकेले अपराजित व्यक्ति की लाचारी पर तोंद मटका-मटका कर हंसती है। और

खुश होती है कि अकेला आदमी राजनीतिक नेताओं के सामने कुछ भी करने से असहमत है।

राजनीति के समान साहित्य विपक्षी दल नहीं बन सकता लेकिन वह बेहतर प्रतिपक्ष बनने की पहल अवश्य ही कर सकता है ताकि व्यक्ति अपनी लड़ाई लड़ने एवं अपने आस-पास घात लगाकर बैठे भेड़ियों को पहचान सके और उनके विरुद्ध मजबूती से खड़ा हो सके। कविता एक अस्त्र भले ही न हो लेकिन आन्तरिक शक्ति तथा संकल्प अवश्य है। आज आवश्यकता अस्त्र की कम है संकल्प की अधिक है । नारे और भाषण के उद्घोष का विरोध व्यक्त करने के सतही साधन हैं, चिन्तन एवं निश्चय के स्तर : पर विरोध व्यक्त करने के सतही साधन हैं, चिन्तन एवं निश्चय के स्तर पर विरोध को जन्म देना उसको महसूस करना रचना द्वारा ही सम्भव है। रचना मात्र दुर्घटना नहीं है वरन् दुर्घटना से तीखी चोट एवं तराश है जो व्यक्ति को अनुभूति देती है। कविता की यात्रा संवेदना तक समाप्त नहीं होनी चाहिए वरन् संवेदना से आरम्भ होनी चाहिए, दर्द अनुभव करना अलग बात है। कविता इसीलिए प्रतिरोधी शक्ति की जननी है। यह प्रतिरोध दो स्तरों पर हो रहा है, दीन-हीन शोषित एवं उपेक्षित सर्वहारा वर्ग जो अपने अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ने में न तो समर्थ है और न उसे कारणों का ज्ञान है जो उसकी वर्तमान दशा का उत्तरदायी है।"[103]

इस प्रकार रघुवीर सहाय राजनीति के विरोधी कवि हैं। वे राजनीतिक नेताओं पर अपनी कविता में तीखा प्रहार करते हैं।

§4§ पत्रकारिता :-

"रघुवीर जी की अपनी पत्रकारिता निश्चय ही एक अपवाद थी। हमारे समय में पत्रकारिता का इतिहास लिखने वाले शायद अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचें कि "दिनमान" एक पत्रिका थी ही नहीं, एक तरह का पत्राचार विद्यालय था, जो रमा जैन, अज्ञेय और रघुवीर सहाय की व्यक्तिगत भूमिकाओं के कारण चल सका। वास्तव में काफी सोच विचार के बावजूद मैं ऐसा कोई समाजवैज्ञानिक तर्क या आधार नहीं ढूंढ सका हूं जो सत्तर के दशक में "दिनमान" के चलने और अस्सी के दशक में "दिनमान" का वह रूप ध्वस्त तथा असम्भव हो जाने की सच्चाई को समझा सके। वह एक संयोग ही था। रघुवीर सहाय ने "दिनमान" को जो स्वरूप दिया, वह इस कदर व्यक्ति सापेक्ष था कि उनके निकाले जाने के बाद एक महीने भी नहीं चल सका। उस स्वरूप के नष्ट किये जाने को लेकर थोड़ी बहुत प्रतिक्रिया हुई, पर हिंदी भाषी समाज में कोई बड़ा अभाव महसूस नहीं किया गया। न ही "दिनमान" का विकल्प रचने की कोशिश हुई"।[104]

"लोग भूल गये हैं" कविता-संग्रह में उनकी एक कविता है- "आज्ञातवासी" जिसमें स्वतंत्रता के दिनों में जो तनाव पैदा हो गया था, उसी का वर्णन किया है।

सेंसर के दिनों में एक लेखक जी
एक दैननन्दिनी लिखते थे
एक दिन उसमें यह दर्ज किया
वह पहला ही दिन था
मैंने उनका लिखा यहां पद्य में मानो उलथा कर दिया है
आये अखबार नहीं
स्थिति में तनाव था
घर पर भी लगता था
च० प० ने फोन किया

"रेडियो पर प्र० म० बोली है और मैं छुट्टी गया" [105]
उनके निबंधों में भी उसकी पत्रकारिता का प्रभाव है। उनके निबंध संग्रहों में ज्यादातर लेख उनकी किसी न किसी पत्रिका में छप चुके थे। इसके बाद कवि ने उनको एकत्र कर निबंध संग्रहों के रूप में प्रकाशित किया।

सन् 1960 को लगभग धर्मवीर भारती ने "धर्मयुग" पत्रिका का संपादन किया तो कवि रघुवीर सहाय को उसमें पाक्षिक स्तम्भ लिखने का अवसर मिला था। "दिल्ली मेरा परदेस" निबंध संग्रह "दिल्ली की डायरी से" शीर्षक से मई 1960 ई० में प्रकाशित होना शुरू हुआ था। रघुवीर सहाय कहते हैं कि "हिन्दी पत्रकारिता में स्तम्भ लिखना कोई नई चीज नहीं है किन्तु जहां तक मुझे याद है इस किस्म का स्तम्भ उन दिनों किसी भी पत्रिका में नहीं था जैसा कि मैं लिखना चाहता था।" [106]

उनकी एक कविता है "खोज खबर" में एक अनजान व्यक्ति का वर्णन है जो हत्यारा है, लेकिन राजनीतिक नेताओं ने उसके चेहरे को छिपा दिया है। वह स्वयं ही एकाकी गरिमा से प्रकट हो गया। केवल एक व्यक्ति ही अपराध के विरुद्ध बोला है इसलिए हमको उसे पुरस्कार देना चाहिए । जैसे --

अनजाने व्यक्ति ने जान पर खेल कर
लोगों के सामने चेहरा दिखला दिया
जिसने भाषा की हत्या वह है --जाने न पाये
उसे अब छिपा दिया गया है

आँखों में उदासी सी एक चीज दिखती है
यह तुमने मरने के पहले का वृतान्त क्यों लिखा ? [107]

उनकी एक कविता टेलिविजन वे लिखते हैं कि

कल जब मैं घर लौट रहा था देखा उलट गई है बस
सोचा मेरा बच्चा इसमें आता रहा न हो वापस
टेलिविजन ने खबर सुनाई पैंतीस घायल एक मरा
खाली बस दिखला दी खाली दिखा नहीं कोई चेहरा
वह चेहरा जो जिया था मरा व्याकुल जिसके लिए हिया
उसके लिए समाचारों के बाद समय ही नहीं दिया। 108

कवि कहता है खबरों में ठीक-ठीक यह नहीं बताया जाता कि वे कौन कौन से चेहरे थे जो घायल हुए और जो मरे, आजकल सभी जगह राजनीति की भ्रष्टाचारी भावना ही फैली हुई है। कवि कहता है कि जो खबरों को प्रदर्शित करने वाले हैं वे सब एक दूसरे के दुश्मन होते हैं और दूरदर्शन एक दुर्दर्शन बनकर रह गया है।

उनकी एक कविता है बलात्कार --जिसमें स्त्रियों की असहायता को दर्शाया गया है।

औरतों के चेहरे समाज के दर्पण हैं
पुरुषों जैसे
किन्तु जो दर्द दिखलाते हैं उनमें मिठास है
पुरुष गिड़गिड़ाते हैं आँखें सिर्फ चुपचाप थाम लेती है बेबसी 109

28 दिसम्बर सन् 1991--को "दिनमान" पत्रिका में एक कहानी कवि द्वारा लिखी गई छापी गई है। जिसमें बलात्कार की कहानी है। एक प्रभावशाली पत्रिका में पूरे पृष्ठ पर ओडिसा की लड़की का चित्र

बहुत बड़े आकार में छापा गया है। उसके पास ही एक बड़े मंत्री का फोटो कुछ छोटा करके छापा गया है। लड़की का चेहरा एक साधारण लड़की का चेहरा है और वह एक राजनीतिक व्यक्ति का चेहरा है इसलिए उस पर पर्दा डाल दिया गया है। यह एक मंत्री की एक साधारण लड़की के साथ बलात्कार की कहानी है। इसलिए पत्रिकाओं में भी खबरों को ठीक तरह से बयान नहीं करते।

ग्यारह जनवरी 1992 को दिल्ली में एक कार्यक्रम रघुवीर सहाय की याद में किया गया। "हिंदी के दिवंगत कवि रघुवीर सहाय की याद में हंगरी सूचना और सांस्कृतिक केन्द्र की ओर से एक साहित्यिक कार्यक्रम किया गया। इस मौके पर रघुवीर सहाय के साहित्य और पत्रकारिता पर विचार हुआ, फिर उनकी कुछ मौलिक और हिन्दी से हंगरी में अनुदित कविताओं की आवृत्ति भी हुई। इसमें उसकी, अधिनायक, आपकी हँसी, नींद, बलात्कार, मरघट, खोज- खबर, चेहरा, अकाल आदि कवितायें थी।" 110

एक जनवरी 1991 को, सुप्रसिद्ध कवि, कथाकार, विचारक रघुवीर सहाय की स्मृति में स्थापित पहला "रघुवीर सहाय पुरस्कार" वर्ष 1991 के लिए सुपरिचित कवि वीरेन डंगवाल के पहले कविता संग्रह "इसी दुनिया में" को दिया गया है।" यह पुरस्कार साहित्यिक पत्रिका "पल प्रतिपल" के संपादक "देश निर्मोही " और "आधार प्रकाशन द्वारा शुरू किया गया है।" 111

वे पहले "नवजीवन" पत्रिका में लखनऊ में प्रतीक के दिल्ली में, कल्पना के हैदराबाद में, "एशियाई थियेटर संस्थान में नई दिल्ली , वाक्-नई दिल्ली

आकाशवाणी - दूरदर्शन और नवभारत टाइम्स और दिनमान आदि पत्र-पत्रिकाओं से सम्बन्धित रहे।

रघुवीर सहाय जी ने दिनमान में सम्पादक का पद प्राप्त करके उसका उपयोग साधारण लोगों को संवाद में महत्व दिलाने के लिये किया। यही उनका पत्रकारिता में विशिष्ट राजनैतिक प्रयोग था। "दिनमान पत्रिका" न केवल पाठकों के पास गया बल्कि उन्हें खींचकर खबरों और टिप्पणियों के संवाद वृत्त के केन्द्र में ले गया। स्कूलों से लेकर कचहरियों तक की दर्जनों विषयों पर बहुमूल्य तथ्यपरक सामग्री "दिनमान" ने अपने पाठकों के सहयोग से प्राप्त की थी। उनकी एक लम्बी लड़ाई भाषा के लिए थी। इसके लिए उन्होंने अपनी हार की सूचना एक ईमानदार योद्धा की तरह दी थी। लोग भूल गये हैं मैं ----

हम लड़ रहे थे समाज को बदलने का युग
पर हिंदी का प्रश्न अब हिन्दी का प्रश्न नहीं रह गया
हम हार चुके है
हिन्दी है मालिक की
फिर आजादी के लिए लड़ने की भाषा फिर क्या होगी।[112]

रघुवीर सहाय का चेहरा जो हमारा भी चेहरा था । वह हिन्दी के एक बड़े आधुनिक कवि का चेहरा नहीं था । बल्कि एक चेहरा हिन्दी के एक "रिवौल्यूशनरी" पत्रकार का चेहरा था। "दिनमान" को रघुवीर सहाय ने जिस शिखर तक पहुँचाया था उसकी चर्चा जब होने लगती है तो ऐसा लगता है जैसे राजनीति में गांधी और तिलक की चर्चा। "दिनमान" में अज्ञेय की भी एक बहुत बड़ी भूमिका थी। लेकिन उससे भी बड़ी भूमिका

उन्होंने रघुवीर सहाय को संपादक का पद सौंपकर निभाई थी।

रघुवीर सहाय ने समाज के निम्न मध्यवर्गीय और मध्यवर्गीय तबके के लोगों को "दिनमान" से जोड़ा। यह कार्य पहले किसी भी संपादक ने नहीं किया था। "दिनमान" ने हिन्दी भाषी समाज के बारे में नये सिरे से बहस शुरू की और उसकी परिवर्तन की आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित किया।" शायद ही हिन्दी भाषी का कोई सचेत युवक हो, जिसने सन् 1982 से पहले -देखना, समझना सीखा हो और जो "दिनमान" और उसमें भी रघुवीर सहाय का ऋणी न हो। पत्रकारिता की एक पूरी पीढ़ी का आदर्श वह थे। साथ ही यह भी सही है कि आज की सफल पत्रकारिता के बहुत से "शलाका पुरुषों" को दिनमान की वह परम्परा एक कील की तरह चुभती है। सबसे ज्यादा घबराहट और परेशानी का "बायस" आज भी पत्रकारिता उनके लिए बनी हुई है।" 113

रघुवीर सहाय एक अविस्मरणीय पत्रकार थे। यह अतिशयोक्ति नहीं, एक तथ्य है कि स्वाधीन भारत के वे उन दुर्लभ पत्रकारों में थे जिन्होंने विचारों के इंजेक्शन लगाकर मूल्यों पर आधारित वैचारिक पत्रकारिता को जीवित रखा। यह सुखद है कि रघुवीर सहाय के मन में साहित्य और पत्रकारिता का विरोध नहीं है। उनकी पत्रकारिता भी साहित्यिक होने पर शर्म महसूस नहीं करती।" रघुवीर सहाय के सर्जन-संसार में पत्रकारिता और साहित्य गलबहियाँ डालकर घूमते हैं। वे एक दूसरे का सत्व खींचकर दोनों विधाओं को पुष्ट और स्वस्थ बनाते हैं। साहित्य के मानवीय मूल्य तथा सौन्दर्य बोध जैसे गुणों को उनकी पत्रकारिता सादर अपनाती है, और उनका साहित्य पत्रकारिता सरीखी विश्लेषणपरकता और यथा-तथ्यता के संस्कार में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योग है। रघुवीर की अनेक कवितायें, जो उनके संपादकीय से निःसृत लगती हैं। खंड की सोच के विरोध में यह एक अखण्डित सोच का प्रतिफल है। वे चीजों और विचारों को साहित्य के विभिन्न खानों में बांटने के बजाय एक समुच्चय में देखते हैं।" 114

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" संग्रह में "साईकिल रिक्शा मजदूर" कवि को "अबे हुए सुखी" के निबंध आदमी ढोता आदमी के बरक्स रखे तो कई रोचक निष्कर्ष निकल जाते हैं। जैसे --

यह महज सुनने में लगता है साम्यवाद
हम अपने घोड़े को भी इंसान समझे
खासतौर से जब वह सचमुच इंसान हो

पत्रकारों क्यों उसकी रोजी ली
फिर तरस खाकर बख्शीश दे। 115

कवि कहता है वह भी एक पत्रकार की तरह ही इंसान है आप जिस रिक्शा वाले को घोड़ा समझ कर बैठे हैं वह भी एक तुम्हारे जैसा ही इंसान है।

रघुवीर सहाय की पैनी नजर उसके संवेदनशील मस्तिष्क का ही प्रमाण है, वह समय जिसमें "दिनमान" जैसे श्रेष्ठ रचनात्मक साप्ताहिक के वे सम्पादक रहे। इसी प्रकार उन्हें पत्रकारिता के इतिहास में हमेशा याद किया जायेगा। "दिनमान" की संरचना भी उनकी ही एक देन थी।

संदर्भ

1. व्यवहारिक हिन्दी अंग्रेजी कोश - संपादक महेन्द्र चतुर्वेदी, भोलानाथ तिवारी - पृ० - 100
2. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर - संपादक - रामचन्द्र वर्मा - पृ० 191
3. डा० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल - जयशंकर प्रसाद, वस्तु और कला पृ० 5
4. केदारनाथ शर्मा- काव्य मीमांसा - पृ० 87
5. भामह - काव्यालंकार - पृ० 54
6. अज्ञेय - तीसरा सप्तक - भूमिका - पृ० 7
7. जयशंकर प्रसाद - वस्तु और कला - पृ० 5, 6, 7, 8
8. मुक्ति बोध - नयी कविता का आत्मसंघर्ष - पृ० 104
9. पारसनाथ मिश्र - मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल - पृ० 7
10. रामदरश मिश्र - हिन्दी समीक्षा : स्वरूप और संदर्भ - पृ० 305
11. आलोचना - अंक 33 सन् 1965
12. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 174
13. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूपमें - पृ० 87
14. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 138-139
15. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 140-141
16. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 147
17. आलोचना - नेमिचन्द्र जैन - अंक 15, पृ० 98
18. सुधीश पचौरी - नयी कविता का वैचारिक आधार - पृ० 89
19. धर्मवीर भारती - मानवमूल्य और साहित्य - पृ० 89
20. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 104

21. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 89

22. रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 16

23. दैनिक हिन्दुस्तान - 19 सितम्बर 1981, पृ० 1

24. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 1

25. मुक्तिबोध रचनावली - पृ० 25-1051

26. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 51

27. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 56

28. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 20

29. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 25

30. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 8

31. रघुवीर सहाय - वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे - पृ० 9-10

32. रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हंसो - पृ० 14

33. रघुवीर सहाय - अबे हुए सुखी - पृ० 6

34. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 84

35. रघुवीर सहाय - अबे हुए सुखी - पृ० 10

36. रघुवीर सहाय - अबे हुए सुखी - पृ० 9

37. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 75

38. रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 25

39. रघुवीर सहाय - हंसो-हंसो जल्दी हंसो - पृ० 26

40. रघुवीर सहाय - हंसो-हंसो जल्दी हंसो - पृ०

40. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 101

41. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 98

42. मधुमती - प्रकाश आतुर-जुलाई 1985 - पृ० 62

43. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ०

44. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 172

45. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 164

46. रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 12
47. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 70
48. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 33
49. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 44
50. रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 23
51. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 43
52. रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 46
53. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 161
54. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 64
55. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 85
56. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 86
57. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन - पृ० 65
58. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 165
59. रामस्वरूप चतुर्वेदी - कविता यात्रा, रत्नाकर से रघुवीर सहाय पृ० 78
60. देवी शंकर अवस्थी - विवेक के रंग - पृ० 130
61. रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 148
62. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 132
63. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 148
64. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 104
65. रघुवीर सहाय - दिल्ली मेरा परदेस - पृ० 74
66. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 88
67. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 67
68. रघुवीर सहाय - हंसो-हंसो जल्दी हंसो - पृ० 2
69. प्रतिपक्ष - जनवरी 1991 - पृ० 34
70. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 55

71. राममनोहर लोहिया - जाति प्रथा - नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1964,

वे जब जेल में रामास्वामी नौकर से भी मिलने गये तो उन्हें भी यह समझाया गया कि एक तरफ तो उन्हें जनजातियों, महिलाओं और मुसलमानों को साथ लेकर चलना होगा तथा दूसरी तरफ उन्हें अपनी दृष्टि को व्यापक बनाना होगा, अन्यथा उनके आन्दोलन के परिणाम भी कूपमंडूकता तथा उग्रप्रतिक्रियावाद में ही निकलेगा- भारतीय सामाजिक चिन्तन - लीला राम गुर्जर

72. लीलाराम गुर्जर - भारतीय सामाजिक चिन्तन - पृ० 29
73. रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 31-32
74. रघुवीर सहाय - हँसो-हँसो जल्दी हँसो - पृ० 26
75. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 79-78
76. लीलाराम गुर्जर - भारतीय सामाजिक चिन्तन - पृ० 177
77. रघुवीर सहाय - लिखेने का कारण् - पृ० 109
78. लोकसभा में लोहिया भाग 8 - पृ० 250
79. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 158
80. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 147
81. आलोचना -पृ० 68 - 1068
82. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 106
83. रघुवीर सहाय -सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 107
84. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 109
85. डा० राजकुमार शर्मा - कविता की रचना यात्रा- पृ० 132
86. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं- पृ० 87
87. प्रकाश शास्त्री - भारत में समाजवादी आन्दोलन - पृ० 86
88. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 32
89. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 32
90. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 33

91. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - वक्तव्य
92. कल्पना - अगस्त - 1965 - पृ० 77
93. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 105
94. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 105
95. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 16 - 17
96. मधुमती - जुलाई 85 - पृ० 55
97. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 26
98. कृष्ण कुमार - दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में - पृ० 106
99. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 33
100. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 79
101. डा० सुखबीर सिंह - हिन्दी कविता के समकालीन चेतना - पृ० 107
102. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 18
103. मधुमती - जुलाई 1985, पृ० 55
104. प्रतिपक्ष - जनवरी 1991, पृ० 17
105. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 86
106. रघुवीर सहाय - दिल्ली मेरा परदेस - भूमिका
107. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - 82
108. रघुवीर सहाय - हंसो-हंसो जल्दी हंसो - 47
109. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 63
110. जनसत्ता - 11 - 1 - 92
111. नवभारत टाइम्स - 1 जनवरी 1991
112. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं। पृ० 20
113. प्रतिपक्ष - जनवरी 1991
114. अन्तर्दृष्टि - 3/5
155. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ० 84

"चतुर्थ अध्याय"

==============

(खण्ड – क)

रघुवीर सहाय की कविता की वस्तु की प्रकृति का अध्ययन :-

रघुवीर सहाय की कविता की प्रकृति वैयक्तिक (पारिवारिक), सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि की है।

वैयक्तिक प्रवृत्ति :-

इस प्रकृति में कवि ने अपनी जमीन की कुछ घटनाओं व परिवार से सम्बन्धित कविताओं को लिया है। "रघुवीर सहाय बिना प्रश्न के किसी घटना को अपनी कविता में, परिणामी तथ्य के रूप में स्वीकार नहीं करते। प्रश्न पूछते ही तथ्य समस्या बन जाते हैं और जीवन प्रक्रिया में उनकी जड़े और नसें फैली हुई दिखलाई पड़ने लगती हैं। इसलिए उनको यह सुविधा नहीं मिलती कि वे कुछ जीवन तथ्यों को काव्य-सामग्री के रूप में चुन कर अपनी कवि की प्रयोगशाला में तरह-तरह के विचारों के घोल और रसायन डालकर भाषा की खूबसूरत संरचनायें तैयार करें। उन्हें जीवन-तथ्यों के कारणों और प्रक्रिया की चिन्ता काव्य की एक चिन्ता है।" [1]

"परिवार" कविता में कवि ने लड़के और लड़की के अन्तर को स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि मेरे सभी लड़के परदेशमें अपनी अपनी लड़ाईयाँ लड़ते रहते हैं और मुझे कभी बताते तक नहीं। लड़कियाँ बाप की तीमारदारी करती हैं और सबको खुश रखने का प्रयत्न करती हैं, जो लड़का कभी नहीं कर पाता। इस प्रकार कवि लड़की को अधिक महत्व देता है --

ये सब मेरे लड़के
जहां कहीं भी हों परदेस में
अपनी लड़ाइयां लड़ते हैं
बार-बार लौटकर मुझको बताते नहीं
लड़कियां बाप की एवज़ी करती है
सबको खुश करती हैं
जो वह रख नहीं सका [2]

"मेरी बेटी" कविता में कवि अपनी बेटी को पहचान नहीं पाता है क्योंकि उसमें कुछ बदलाव दिखलाई पड़ता है --

दुबली थकी हारी एक नौकरी काम पर जाती थी
दूर से मैंने उसे आते हुए देखा
पर जितनी देर मे मैंने पहचाना वह मेरी ही बेटी थी
उतनी ही देर में कितनी बदल गई थी। [3]

"दूसरा सप्तक" में कवि ने "कोशिश" कविता में कहा है कि "मेरे जीवन की कोई घटना हेय नहीं।" "मैं अपने जीवन में कुछ भी नहीं कर सका, इसका मुझको बिल्कुल भी दुख नहीं है; लेकिन आगे जो करना है उसकी चिन्ता मुझे परेशान कर रही है। मैं अपने पिछले वायदे और बातें याद कर रहा हूं, क्योंकि अब होने के लिए कुछ और बाकी नहीं रह गया है --

मेरे जीवन की कोई घटना हेय नहीं
कुछ कर न सका, इसका मुझको खेद नहीं
लेकिन अब जो करना है उसकी चिन्ता है
बन नहीं सका मैं खुद ही अपना उदाहरण [4]

"सीढ़ियों पर धूप में" की कविताओं में कवि ने युग-जीवन, पारिवारिक

परिस्थितियों, मनः स्थितियों को प्रकट किया है।- जैसे --
मेरा एक जीवन है

उसमें मेरे मित्र, मेरे हितैषी हैं
मेरे गुरुजन हैं
उसमें मेरा कोई अन्यतम भी है
पर मेरा एक औरजीवन है
जिसमें मैं अकेला हूं । [5]

इनकी कविताओं में निजी-जीवन के सुख और दुख भी हैं, जिसको कवि ने तटस्थ अनुभूति की मनःस्थिति के रूप में व्यंजित किया है। कवि की अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों में प्रणय मूलक व्यंजनाएं हैं जिनमें श्रृंगारिक वर्णन के माध्यम से आज के जीवन-अनुभव को व्यक्त किया है --

प्राण मत गाओ प्रणय के गान
पथ लगता है अधिक सुनसान
मेरे गीत गाने से। [6]

एकदूसरी कविता "सीढ़ियों पर धूप में" से ---

तुम क्या करती हो मेरी लाड़ली
अपनी व्यथा के संकोच से मुक्त होकर
जब मैं तुम्हें प्यार करता हूं । [7]

रघुवीर सहाय ने औसत मानसिकता और साधारण जीवन के जाने-पहचाने चित्रों से नया अर्थ, नयी संगति देने का प्रयास किया है। कवि ने उन विषयों पर भी लिखा है जिनको उसने स्वयं की जिन्दगी में भोगा है। वह भोगी हुई अनुभूति कवि की वैयक्तिक अनुभूति न रहकर सामूहिक-सी बन गई है।

"आखिरी वक्त" कविता में कवि कहता है कि मैंने भी गरीबी से ऊपर उठने का प्रयास किया, लेकिन वह सफल नहीं हुआ --

मैंने सब पुराने कपड़े हटा दिये
जो कि रखे थे कि शायद फिर गरीबी आ जायेगी
उनकी जगह नये कपड़े हो जायें यह चाहा
वह इच्छा आखिरी वक्त की इच्छा लगने लगी [8]

"मेरा एक जीवन है" में कवि अपने व्यक्तिगत जीवन का वर्णन करता हुआ कहता है कि मैं अपने जीवन में सब स्थानों पर घूमा हूं, लेकिन आज इस हाहाहूती नगरी में बिल्कुल अकेला हूं --

पर मेरा एक और जीवन है
जिसमें मैं अकेला हूं
जिस नगर के गलियारों, फुटपाथों, मैदानों में घूमा हूं
हंसा खेला हूं।
उसके अनेक हैं नागर, सेठ, म्युनिसिपल कमिश्नर, नेता
और सैलानी, शतरंजबाज और आवारे
पर मैं इस हाहाहूती नगरी में अकेला हूं [9]

कवि "युद्ध-विराम" में अपने एक अनुभव का वर्णन कर रहा है। "इसके पहले मैं लगभग स्वप्न में सुनी एक पंक्ति सोच रहा था। "मित्रों" से शुरू होती थी वह और इस शुरूआत को बदलने की इच्छा बरबस हो रही थी या वह शायद शुरू से ही कोई और पंक्ति थी। मैं सोच रहा था कि जीवन का एक मूल्यवान क्षण होता है, जिसमें हम अपने मित्र के पास अपने विचार

बांटने जाते हैं, हम अपने शत्रु के सामने होते हैं, उससे परामर्श करने के लिए यह विचार मेरा है। यह भेंट पहले से तय नहीं होती है। शायद हम एकाएक अपने एकान्त से उकताकर एक बार अपने उस चेहरे से टकराने जाते हैं जो कहीं दर्पण के पीछे है। इतना विराट एकान्त मुझे किसी काम का नहीं रखेगा जहाँ मैं ही मैं हूं। युद्ध में विराम सभी सभ्य समाजों में होता है, युद्ध विराम में हम क्या करते हैं, यही रचनाकार को योद्धा से अलग करता है। हम शत्रु के पास जाते हैं क्योंकि यही व्यक्तित्व के विकास की आधुनिक जरूरत है।" [10]

रघुवीर सहाय ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों को भी कविता में स्थान दिया है –

एक दिन मेरे अपने जीवन में ही खत्म होने वाला है यह खेल
इस घर की दीवार पर मेरी तस्वीर होगी
बच्चे आयेंगे पर मेरी कल्पना में नहीं– अपने समय से आयेंगे
और उनकी बोली में उनका तर्क नहीं होगा
जिसको आज सुनता हूं।

यहां पर कवि ने अपने अन्तिम समय की कल्पना भर की है। इसी प्रकार रघुवीर सहाय की प्रकृति वैयक्तिक और पारिवारिक भी रही है–।

सामाजिक प्रकृति :-

अपने कविता-संग्रहों में कवि ने सामाजिक और आर्थिक प्रवृत्तियों को भी पहचाना है। समाज में हो रहे वर्ग-संघर्ष का कड़ा विरोध किया है। "हमने यह देखा" कविता में कवि की आर्थिक स्थिति का वर्णन है--

फिर ख़त्म हो गये अपने सारे पैसे
सब चला गया सुख - दुख बदटेखाते में
रह गये फ़कत हम तुम वैसे के वैसे
फिर अपना पिछला दर्द अचानक जागा
फिर हमने जी लेने की तैयारी की
उस वक्त तकाजा करने आया आग। ।।

यहां पर कवि ने अपनी "गरीबी" का वर्णन किया है। दुखों से कवि ने कभी भी हार नहीं मानी। सभी संघर्षों का डटकर मुकाबला किया।

रघुवीर सहाय रचनात्मकता और आजादी को समता की लड़ाई और कविता को मानवीय आकांक्षा और मानवीय उत्कर्ष का पर्याय मानते हैं। उनकी कविता में अर्थ के दो स्रोत हैं --एक आजादी और दूसरा समता की लड़ाई। समता की लड़ाई तो ऐतिहासिक -सामाजिक कर्म है ही, लेकिन आजादी ? आजादी किसी ? व्यक्ति मनुष्य की या सामाजिक मनुष्य की ? व्यक्ति स्वातंत्र्य की अभी तक बची सुविधा का फायदा उठाकर वे अपने रचनाकार को कोई रियायत नहीं देना चाहते ? उनके यहां व्यक्ति और सामाजिक मनुष्य, दो नितान्त भिन्न श्रेणियां नहीं हैं , यानी कि आजादी की अन्तर्वस्तु भी सामाजिक है।

अपनी कविता में इस सामाजिक चेतना से लैस होने के बाद रघुवीर सहाय जी को रचनाकार और ईमानदार आदमी का अकेलापन, दिखाई पड़ता है। उनका अकेलापन समाज- विच्छिन्न मानवीय चेतना है, जो जीवन की चरम सार्थकता का एकांत स्रोत है। जैसे --

अपराध संगठित, राजनीति संगठित, दमन तंत्र संगठित
केवल अपराध के विरुद्ध जो कि बोला था अकेला है - 12
लोकतंत्र का अन्तिम क्षण है कहकर आप हंसे
चारों ओर बड़ी लाचारी कहकर आप हंसे
कितने आप सुरक्षित होंगे मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर फिर से आप हंसे 13

दोनों कविताओं में जो अकेला है उससे बच सकने की गुंजाइश नहीं है। लेकिन बचे या न बचे, उसका अकेलापन, सत्ता, व्यवस्था और ताकत के तंत्र के लिए खतरनाक और असुविधाजनक बना रहेगा। इस अकेलापन न अभिशाप है और न ही वरदान। यह मनुष्य की नियति की व्याख्या भी नहीं है। यह साहस और कर्म है और इसकी सारवस्तु ऐतिहासिक है। यही "आत्महत्या के विरुद्ध" होना है, उसी को लोग भूल गये हैं। इसी का पता बताने के लिए कवि ने चिट्ठियां लिखी हैं।

रघुवीर सहाय बिना प्रश्न के किसी भी घटना को अपनी कविता में, परिणामी तथ्य के रूप में स्वीकार नहीं करते। प्रश्न पूछते ही तथा समस्या बन जाते हैं और पूरी जीवन-प्रक्रिया में उसकी जड़ें और नसें फैली हुई दिखाई पड़ने लगती हैं। उनके जीवन-तथ्यों के कारणों और प्रक्रिया की चिन्ता, काव्य की चिन्ता है --जैसे :-

युग नया आ गया - हुकुम होगा कि दस बरस पहले का वह दमन
वास्तविक यथार्थ में क्यों हुआ था
क्यों गला बच्चे का घोंटा गया था

यह उसकी घुटन से अधिक वर्तमान है
वह बता, कहना यही सत्य मेरा यथार्थ है
क्योंकि इस दुख का मैं भागीदार हूं
यह मेरा ज्ञान इतिहास का सत्य है
जो तथ्यों की भूल के कारण झूठ न होगा --[14]

यहां पर घुटन से अधिक मूल्यवान है, गला घोटने का कारण, दुख के तटस्था दृष्टा होने से अधिक मूल्यवान है उसमें भागीदारी और इतिहास के तथ्य से अधिक मूल्यवान है इतिहास की सच्चाई। कवि की कविताओं में भारतीय समाज की परम्परागत संस्थाएं नासूर की तरह टीसती हैं, ठेठ देहाती की गर्द और धूल भरी भौंचक-सी जिन्दगी, आधुनिक ठाट और बाट वाले सुखी लोगों के सामने प्रश्न चिन्ह की तरह खड़ी रहती है। इनकी कविता में स्वाधीनता-आन्दोलन के दौरान पाये और बरते गये मूल्यों का उत्तराधिकार इतिहास विच्छिन्न आधुनिकता को असुविधाजनक स्थिति में डालनेके लिए काफी है।

भारतीय मानस में बसने वाली हजारों सालों की भूख, अपमान, पीड़ा और करुणा ने इस रचनात्मकता पर घिराव डाला हुआ है। इस खास बिन्दु पर रघुवीर सहाय एक ऐतिहासिक अनुभूति के कवि के रूप में उभरते हैं, जिसमें मानव-करुणा का हाहाकार, कुहराम मचा हुआ है। परन्तु इस कविता में बोध के स्तर पर सह पाना बड़ा ही कठिन कार्य दिखलाई पड़ता है।

जैसे --

कितना अच्छा था छायावादी
एक दुख लेकर वह एक गान देता था
कितना कुशल था प्रगतिवादी

हर दुख का कारण वह पहचान लेता था
कितना महान था गीतकार
जो दुख के मारे अपनी जान देता था
कितना अकेला हूं मैं इस समाज में
जहां सदा मरता है एक और मतदाता [15]

यह "मरता मतदाता" ही कवि की पहली और आखिरी चिन्ता है। यह चिन्ता अनेक मुद्राओं और आकृतियों में झांकती रहती है और कवि को अभाव एवं यातना की अनुभूति में अकेला कर जाती है। इसलिए कवि का सामान्य जीवन अनुभवों को परोसता है, अद्वितीय अनुभवों की बात ही नहीं करता। उसे मालूम है कि अनुभव की "अद्वितीयता" का नारा जनता से अलग हो जाता है।

रघुवीर सहाय का झुकाव किसी राजनैतिक मतवाद की ओर नहीं है किन्तु उनके मन का .. मानव डा० राम मनोहर लोहिया की चिन्त भूमि को पकड़कर चलता है। जहां पर विरोध के पक्ष में वह अकेला पड़ जाता है। डॉ० लोहिया स्वयं अनेक नये विचारों के व्याख्याता तो रहे, किन्तु एक विचारधारा के पिछलग्गू नहीं रहे। वे पूंजीवाद, साम्यवाद, अधिनायक वाद-विरोधी हमेशा ही रहे, लेकिन भारतीय लोकतंत्र के समर्थक भी। रघुवीर सहाय में लोहिया का एक गुण साफ दिखलाई पड़ता है कि वे लोकतंत्र के प्रबल समर्थक होकर भी संसदीय लोकतंत्र की सीमाओं के धारदार आलोचक हैं। इसी प्रकार रघुवीर सहाय की कविताओं में विशेष रूप से "लोग भूल गये हैं" में अपरिमित करुणा और क्रोध का संसार है। सम्पूर्ण मानव-जाति के प्रति व्यापक संवेदना के साथ और भारतीय समाज और स्थिति की बुनियादी जरूरतों के साथ कवि अपनी कविता में होने का अहसास कराता है। जैसे --

यही मेरा घर है यही मेरा कारखाना
जितनी जगह कमरे में है उससे कम मैंने ली है
बहुत नहीं चाहिये बहुत चाहने का मतलब लूटना होगा । [16]

कवि की महत्वाकांक्षा एक नये समाज को बनाने की है, जिसके लिए सामाजिक संस्थाओं का बदलना बहुत जरूरी कार्य है। व्यक्तित्व के स्तर पर वे जनता के मानसिक परिवर्तन के भी पक्ष में है।

"जीवन की अब" और "भूतही मुस्कान" के अर्थ को खोजना ही पड़ेगा-- उन्हीं के अन्दर आदमी की पीड़ा बन्द रहती है--

हम अब गये
एक अब और भूतही मुस्कान दोनों मिलकर
एक खुशी और एक बेफिक्री बनते हैं
आज के समाज का मानस यही है तुम कहते हो इस कविता में
बगैर जाने कि तुम कितना कम इस समाज को जानते हो
कितना कम जानते हो तुम उस डर के कारणों को
आज की संस्कृति का जो मूल स्रोत है
और क्या जानते हो तुम अतीत को?
तुम नहीं जानते तुम्हारे पुरखे कितने वर्ष हुए कहां थे -- [17]

अपने पुरखों के रिश्तों यातना का इतिहास समझकर नये मानव को यह समझना होगा कि हमारे दुख हमारी कामना की देन है --उन्हें समाप्त करने के लिए मानवघाती सत्ता के चरित्र को नंगा करना होगा। क्योंकि --

यह संस्कृति उसको पोसती है जो सत्य से विरक्त है
देह से सशक्त और दानशील धीर है [16]

वर्तमान समाज में स्त्रियों और बच्चों पर अधिकतर अत्याचार होते देखे गये हैं। कवि की वर्ग स्थिति के कारण दलित जन सहसा उससे जुड़ पाने में जरा देर के लिए भय महसूस करते हैं और आश्वस्त होना चाहते हैं तो दूसरी ओर दलित जन निरन्तर अमानवीय संदर्भों के बीच इतने कुंठ हो जाते हैं कि कवि जब उनकी ओर से उनसे संवाद पैदा करना चाहता है तो उसको असफलता ही प्राप्त होती है। जैसे --

एक लड़की जिसकी बाढ़ मारी गई है
डर के मारे नहीं बताती मुझको वह
अपना दुख :[19]

जनता से जुड़कर उससे रचनात्मक रिश्ता कायम करने की पहल में रघुवीर सहाय जिन मुश्किलों और अवरोधों से जूझते रहते हैं वे स्थितियां कुछ बड़े महत्व के सवालों की ओर संकेत करती हैं, जिसे हल किये बिना सार्थक रचना सम्भव नहीं।

दलित जन से जुड़ने में पहली समस्या, किसी भी कवि का अपना वर्ग चरित्र है, अगर वह दलित वर्ग में नहीं आता है। इस प्रकार एक ईमानदार रचनाकार के लिए वर्ग-विमुक्त होना बहुत आवश्यक है।

"खड़ी स्त्री", चलती स्त्री, एक लड़की, अभी तक खड़ी स्त्री, और दूसरी छोटी-छोटी कविताओं में स्त्रियों की शोषित जिन्दगी की विडम्बनात्मक भयपूर्ण स्थिति है। जैसे --

ग्रीष्म फिर आ गया
फिर हरे पत्तों के बीच
खड़ी है वह
ओंठ नम

और भरा-भरा-सा चेहरा लिए
बदली की रोशनी-सी नीचे को देखती
निखरता रह
उसे कवि, न कह, न हंस, न रो कि वह अपनी
व्यथा इस कदर भी नहीं जानती[20]

यहां पर वर्तमान सामाजिक स्थितियों के बीच असहाय स्त्री कितनी व्यथाओं से घिरी हुई है। उसके लिए अधिक सोच का विषय यह है कि वह अपने दुखः को जानती भी नहीं, वह उससे बेखबर क्यों बैठी है? कवि कहता है कि शोषण का शिकार व्यक्ति पहले अपनी स्थिति की पहचान करे, बाद में शोषितों के प्रति निर्णायक कदम बढ़ाये। यही रघुवीर सहाय की समाज सुधारवादी प्रवृत्ति है।

राजनीतिक प्रवृत्ति की अवधारणा :-

रघुवीर सहाय के काव्यों में राजनीति की अवधारणा मुख्य कथ्य है।

"राजनीतिक चेतना, राजनीतिक सम्बन्धों, निर्भरताओं, संस्थाओं, मानदण्डों इत्यादि की पद्धति है और इस कारण वह अपने सामने खड़ी वस्तु के रूप में राजनीति के विश्व को प्रतिबिम्बित तथा सक्रियतः अभिव्यक्त करती है। कोई भी वर्गाधारित सामाजिक, आर्थिक विरचना क्यों न हो, उसमें राजनीतिक चेतना का मूल्यपरक पक्ष समूहों अथवा व्यक्तियों के कार्यकलाप से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ होता है।"[21]

राजनीतिक कार्यकलाप का गठन राजनीतिक चेतना के गठन की कुंजी है। इसलिए अतीत की राजनीतिक चेतना की विभिन्न पद्धतियों और

प्रकारों के स्वरूप . को उन विशिष्टताओं का विश्लेषण करके ही जाना जा सकता है। जो राजनीतिक कार्यकलाप के ढांचों तथा प्रारूपों के इतिहास में पाई जाती है।

राजनीतिक चेतना, राजनीतिक अभिशासन की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है तथा सर्वथा यथार्थ तत्व है उसकी बदौलत ही सामाजिक, राजनीतिक पद्धति कार्य करती है।

राजनैतिक चेतना की विचाराधीन निर्मितियों के सह-सम्बन्धों को हम ऐसे भी व्यक्त कर सकते हैं जैसे - "सामान्य, विशिष्ट, एकल, सम्पूर्ण अंश, बहुविध, वैयक्तिक, राजनैतिक चेतनाओं के लिए समाज की राजनीतिक चेतना उनके परस्पर सम्पर्क का माध्यम होती है। इसमें विशिष्ठ और एकल के सभी मूल्यवान तत्व समाविष्ट होते हैं।" [22]

राजनीति और साहित्य का जो रिश्ता रघुवीर सहाय के माध्यम से सामने आया वह विचारों, निष्ठाओं, मूल्यों का रिश्ता अधिक है। पार्टी, शास्त्र, कर्मकाण्ड या पण्डो-पुरोहितों की अर्चना-उपासना से जुड़ा रिश्ता वह नहीं है। इसकी तह में उसकी वह उत्कट लोकतांत्रिक स्वाधीनता की छटपटाहट है जो न केवल अपनी अभिव्यक्ति और समझ को बल्कि हर व्यक्ति की समझ और अभिव्यक्ति को बराबर सम्मान देती है। इसमें जिरह है, बहस है, असहमति है,--लेकिन, हिंसा, ताकत का प्रदर्शन या बेरुखी नहीं है। यही कारण है कि विचारधाराओं के तमगे बांटने वाले उन्हें किसी खास "वाद" के तमगे से विभूषित नहीं कर पाते हैं। जीवन, विचार और रचना में, स्वतंत्रता, स्वतंत्र सत्ता बनाये रखते हुए अन्य सत्ताओं के साथ सह जीवन की यह कठिन यात्रा थी।

इसलिए कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि उन्हे अपनी विचारधारा का मानने वाले नेतागणभी कुर्सी पाते ही उन्हें भूल जाया करते थें।" [23]

रघुवीर सहाय के विचारों पर राजनीति में लोहिया, जयप्रकाश-नारायण और नरेन्द्रदेव के विचारों का गहरा प्रभाव था। इन तीनों विभूतियों की लोकोन्मुख राजनीतिक विचारधाराओं का उन पर अलग से कोई असर नहीं हुआ। रघुवीर सहाय के पहले "काव्य-संग्रह" "सीढ़ियों पर धूप में" लोहिया, जयप्रकाश या नरेन्द्र देव के जो विचार आज भी अक्सर, उदाहरण के रूप में दिये जाते हैं, उनको ग्रहण करने की संवेदना उनमें पहले से ही मौजूद थी। रघुवीर जी राजनीतिक चिंतक, कार्यकर्त्ता या नेता तो नहीं थे। इसलिए उनकी विचारधारा एक राजनीतिक व्यक्ति जैसी नहीं थी। उनकी विचारों को देखने से हमें लगता है कि रघुवीर सहाय के सरोकार ज्यादा बड़े, बहुत गहरे, और व्यापक थे।

लोकतंत्र और समाजवाद की विचारधारा उनके निकट एक ऐसी जरखेज जमीन के रूप में रही है कि जिसे वे हर पल, हर दिन, उन मूल्यों, आस्थाओं और व्यापक आकांक्षाओं की कसौटी पर कसते रहते है जो उनकी संवेदना के अभिन्न अंग थे। रघुवीर सहाय राजनीति को राज्य से बांधकर चलने के विरुद्ध थे। वे राजनीति को जीवन के तमाम क्षेत्रों से और समाज के व्यपकतम समुदाय में प्रत्येक व्यक्ति से सम्बद्ध मानते थे। इसलिए जो आलोचक जो राजसत्ता से ही सम्बन्धित थे जिनका एक मात्र ध्येय और केन्द्र राजनीति ही है और वे राजनेता, जो जीवन के सभी प्रसंगों को राजनीतिक प्रचार और उपयोग का एकमात्र नुक्ता मानते आये हैं, उस प्रखर ताप को कभी सहन नहीं कर पाते जो रघुवीर सहाय ने राजनीति और साहित्य के समन्वय से पैदा किया था।

"आत्महत्या के विरुद्ध" की कुछ कवितायें राजनैतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक यथार्थ का सही दस्तावेज है। राजनीतिक विसंगतियों का ऐसा साका चालू भाषा में मिलना असम्भव है। जैसे -

गांव-गांव में दिया जन-जन को
विश्वास
नेकराम नेहरू ने
कि अन्याय आराम से होगा
आम राय से होगा नहीं तो कुछ नहीं होगा।[24]

कवि कहता है कि राजनीतिक दल जितना बड़ा होगा उतना ही देश को हानि पहुंचायेगा। सभी राजनीतिक मनुष्य अपने-अपने पाप-कर्मों को छिपाते हैं और जनता से हमेशा लाभ उठाते हैं। जैसे --

बीस साल धोखा दिया गया
वहीं फिर मुझे कहा जायेगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोला भाला मंत्री
मामला बताओं हम कार्रवाई करेंगे
हाय-हाय करता हुआ हां-हां करता हुआ हें-हें करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा
जितना बड़ा दल होगा उतना ही खायेगा देश को[25]

कवि ने राजनीतिक विसंगतियों को गहराई में जाकर देखा और परखा है इसी प्रकार बावजूद तीखे आवेश से यह कविता सामने आती है --

बांध में दरार
पाखंड वक्तव्य में
घटतौल न्याय में
मिलावट दवाई में
नीति में टोटका
अहंकार भाषण में
आचरण में खो हटकर हमने मैंने विरोध किया [26]

राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा आम मनुष्यों को दी जा रही यातनाओं का कवि ने कड़ा विरोध किया है और उनके कर्तव्यों को उजागर किया है, क्योंकि उन्हीं की लापरवाही से दवाईयों में मिलावट, न्याय की जगह अन्याय और भाषण देने वालों के मन में अहंकार पैदा हो गया है। रघुवीर सहाय में राजनीति की अर्थहीनता और बदलाव की बेचैनी मौजूद थी।

इन सब स्थितियों का जिम्मेदार वह तंत्र और नेतृत्व था जिसने आजादी के बाद सामाजिक आधारों को बिना बदले जनता के शासन-लोकतंत्र की कल्पना की थी और इसी लोकतंत्र के साथ उन्होंने जनता की मुक्ति और उनके विकास का झूठा वायदा किया था। परन्तु समय के साथ-साथ इस तंत्र के लोकतांत्रिक दावों और समाजवादी नारों का असत्य प्रकट हो गया।

जैसे --

दूर.......
राजधानी से कोई कस्बा दोपहर बाद छटपटाता है
एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन
दोनों, बाप मिस्तरी, और बीस बरस का नरेन
दोनों पहले से जानते हैं पेंच की मरी हुई चूड़ियां
नेहरू युग के औजारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन [27]

यहां पर कवि "नेहरू-युग" का वर्णन करते हैं जिसमें भ्रम और खोखलापन है। यहां पर सभी व्यवस्थायें मनुष्य के विरुद्ध चल रही हैं। इसी प्रकार कवि अन्याय और घुटन की स्थिति से निकल कर अपनी दुनिया में लौटने का प्रयास करता है। जहां पर एक फटा कोट, एक चौकी व लालटेन लेकर मिस्त्री बाप और बीस साल का नरेन्द्र मजदूर होकर निराशा की जिन्दगी व्यतीत कर रहे हैं। नेहरू युग के औजारों की मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन" यह पंक्ति नेहरू युग का मूल्यांकन करती दिखाई पड़ती है।

जब नेहरू जी अपने अन्तिम दौर में थे। "तब वक्त ही ऐसा था नेहरू जो अभी तक हर नये काम के प्रेरक माने जाते थे, अब अपने जीवन के अन्तिम दौर में थे। उनका राजनैतिक वर्चस्व अखंड था परन्तु उनके इर्द-गिर्द सत्ता के दायरे बनाने वालों ने मान लिया था कि इस राष्ट्र में राष्ट्रनिर्माण अपने आप बढ़ते रहने की और हर संकट झेल लेने की ताकत है ही --हमें अपना निजी भविष्य ही अभीष्ट होना चाहिए। [28]

समाज में राजनीतिक शक्तियों द्वारा हो रहे अत्याचार का कवि कड़ा विरोध और भर्त्सना करता है। वे कहते हैं कि "विराट भीड़ों के समाज को बदलने का आज सिर्फ एक ही साधन है। वह है उस सत्ता का उपयोग जो समुदाय का एक-एक व्यक्ति अलग-अलग निर्णयों से कुछ हाथों में देता है। सरकार, जो राज्य की प्रतिनिधि है, जो समाज की प्रतिनिधि है, जैसी भी वह हो, अधूरी, टूटी, नकली, मिलावटी, मूर्ख, वही अकेला कारगर साधन भीड़ के हाथ में है। मैं इस साधन के अधिक से अधिक सही इस्तेमाल के लड़े बिना नहीं रह सकता, पर इसका मतलब यह नहीं कि मैं भीड़ का कायल हूं। मैं बदमाशों, गधों, आधे पागलों और मक्कारों के लिए एक जिम्मेदारी महसूस करता हूं, पर जो कुछ मैं रचता हूं सिर्फ अपनी जिम्मेदारी पर रचता हूं--या फिर नहीं रचता, फिलहाल अपने को रचने योग्य बनाये रखता हूं।" [29]

"स्वाधीन व्यक्ति" कविता में कवि कहता है कि --

एक मेरी मुश्किल है जनता
जिससे मुझे नफरत है सच्ची और निस्संग
जिस पर कि मेरा क्रोध बार-बार न्यौछावर होता है। [30]

कवि समाज पर अपना क्रोध न्यौछावर कर रहा है। वे कहते हैं कि "समाज को बदलने के लिए, राजनीतिक दल या संगठन, विचारों का संगठन, उसके अनुरूप ऐसे काम जिनसे कि सत्ता का संतुलन समाज में बदलना शुरू हो या बदल जाये --ऐसे राजनीतिक कर्म के अभाव में एक ऐसा आदमी जिसने सच्चाई को पकड़ने और अपने शिल्प के साथ उसकी

मुठभेड़ करने को अपना कर्म मानता है वह बहुत अकेला, अपूर्ण और असहाय महसूस करता है।" [31]

हिन्दुस्तान के वर्तमान शासन के बुर्जुआ लोकतांत्रिक ढांचे में शोषित मनुष्य हमेशा से ही शोषण के शिकार होते आये हैं। शासन का जो वर्तमान ढांचा आज भी मौजूद है उससे रघुवीर सहाय बिल्कुल भी सहमत नहीं है।

वे कहते हैं कि " मैं मानता हूं कि अगर अपने देश के संदर्भ में देखे तो हमारे यहां जो शक्ति का ढांचा बना हुआ है या हमारा जो राजनीतिक संगठन है ऊपर से नीचे तक इस सबको, यानी यह जो पूरी व्यवस्था है इस सबको हम बिल्कुल बेकार और नाकामयाब मानते हैं -- यानी एक उद्देश्य के लिए नाकामयाब। उद्देश्य वही है - समता; और मनुष्य और मनुष्य के बीच की गैरबराबरी को मिटाने के लिए यह व्यवस्था बिल्कुल बेकार है। " [32]

रघुवीर सहाय ने वर्तमान व्यवस्था के मनुष्य के विरोध में खड़े चरित्र को नंगा करने की लगातार कोशिश की और लोकतंत्र के नाम पर लोकतांत्रिक संस्थाओं और उनके उपकरणों को भ्रष्ट करने वाले जन-प्रतिनिधि के अलीक चरित्रों का खोखलापन हमेशा उघाड़ते हुए उस पर तीखा प्रहार किया है --

जैसे --

सिंहासन ऊंचा है, सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के, एक परिवार के
मुंह बाये बैठे हैं लड़के सरकार के

लूले, काने, बहरे विविध प्रकार के
हल्की सी दुर्गन्ध से भर गया है सभाकक्ष
सुनो वहां कहता है मेरा प्रतिनिधि
मेरी हत्या की करूण कथा
हंसती है सभा
तोंद मटका
ठठाकर, अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डरकर चिंचियाकर कहती है
अशिव है अशोभन है मिथ्या है। [33]

कवि कहता है कि इस राजनीति में नेता बहरे, काने, लूले, लंगड़े कैसे भी हों वे अपना ही राज्य समझता है। किसी भी मनुष्य की करूण कथाओं को सुनकर हंसते रहते हैं और अपनी बात को ही सच्ची और दृढ़ समझते हैं। आज के इस माहौल में भ्रष्टाचारी नेताओं का ही राज्य है और रहेगा भी।

संसद जो लोकतंत्र को कायम करने की सबसे अधिक प्रतिनिधि संस्था है। हिन्दुस्तान अधिकतर गैर जिम्मेदार और भ्रष्टाचारी नेताओं से भरा हुआ है। जिसमें ज्यादातार नेता शोषक शासक दल के हैं; जिनके पूर्वाग्रह और मूर्खताओं के बीच जनता के सही प्रतिनिधि की आवाज को भी बन्द कर दिया जाता है। व्यवस्था के पोषक और भ्रष्टाचार के आकंठ में डूबे हुए ये प्रतिनिधि संसद में ऐसी बहसों और मांगों से जुड़े हुए हैं जो एकदम शर्मनाक हरकते है -

जैसे --

सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
ये जो बजाते हैं
खुशामद भंड-भंड-भड कोई नहीं हो सकती
राष्ट्र की
संसद एक मन्दिर है जहां किसी को द्रोही कहा नहीं जा सकता
दूध पिये, मुंह पोंछे आ बैठे जीवनदानी गोंद
दानी सदस्य तोंद सम्मुख धर
बोले कविता में देश प्रेम लाना . . हरियाणा प्रेम लाना
आइसक्रीम लाना है।[34]

लेकिन ने ठीक ही कहा था कि लोकतंत्र संसद एक गप-शप की दुकान मात्र है, जिसमें बातचीत और बहस के जरिये आम आदमी को मूर्ख बनाया जाता है। बुर्जुआ लोकतंत्र न सिर्फ सत्ता पक्ष यह सिद्धान्त विहीन समझौता करके किसी भी तरह शासन में बने रहने की कोशिश करता रहता है बल्कि बुर्जुआ विचारधारा के दल भी सत्ता में बने रहने के लिए ऐसे समझौते करते हैं, और बहस करते रहते है जिनका शोषित जनता से कोई सरोकार नहीं होता ।

बुर्जुआ लोकतंत्र में बुर्जुआ विचारधारा वाला पक्ष वास्तविक पक्ष नहीं होता क्योंकि उनको वास्तविक क्रांतिकारी शक्तियों द्वारा जब शासन छीनने का डर होता है तो यह बुर्जुआ विचारधारा वाला पक्ष जनता की भलाई के लिए कोई प्रयास नहीं करते। जैसे रघुवीर सहाय

लिखते हैं कि --

पांच दल आपस में समझौता किये हुए
बड़े-बड़े लटके हुए स्तन हिलाते हुए
जांघ ठोक एक बहुत दूर की विदेश नीति पर
हौंकते डौंकते मुंह नोच लेते हैं
अपने मतदाता का [35]

रघुवीर सहाय ने "आत्महत्या के विरुद्ध" की भूमिका में ठीक ही लिखा है कि "ऐसे लोकतंत्र ने हमें इंसान की शानदार जिन्दगी और कुत्ते की मौत के बीच चांप लिया है।" [36] इस संग्रह में कवि ने आम जनता जो यंत्रणायें झेल रही है उसी का वर्णन किया है जो इस भ्रष्ट और बुर्जुआ लोकतंत्र की विसंगतियों का ही एक कुफल है।

"लोग भूल गये हैं" काव्य संग्रह में आज की मानव द्रोही राजनीति का सीधा साक्षात्कार करता है। आजादी के बाद के भारत की हाय-हत्या भरी आत्मा को यहां हम ठीक-ठाक देख सकते हैं। अवसरवादी, भ्रष्ट, सत्ताधारी अंश ने कितनी चालाकी के साथ जनता की स्वतंत्रता और आबादी को हड़पकर अपने पक्ष में कर लिया है --"भविष्य" कविता में इसका वर्णन किया गया है--

होशियार, हलचल है बहुत गतिविधियां हैं
तीन साल से जो अध्यक्ष थे बने हुए
दो मुंही भाषा के बूते को एक साथ

निर्भीक दिखते थे पाखंडी भी थे
आज इन दो को छोड़ कुछ भी नहीं रह गया
अब वह बर्बरता के बूते अध्यक्ष है

× × × ×

यह अत्याचारी के मन में डर बैठा है
और दूसरे अनुचरों के मन में अविश्वास
कभी सोचता है वह उससे हंसकर बोले
जिसकी हत्या की थी
कभी चाहता है जब तक बने बने रहो
और इसके बच्चों को भी मारकर खा जाओ।[37]

आज के इस भ्रष्टाचारी माहौल में पाखंडी, भ्रष्टाचारी नेता दो तरह की बातें करते रहते हैं। जनता को हमेशा शोषित करते रहते हैं।

"इसी अत्याचारी के चरित्र को नंगा करना रघुवीर सहाय के रचनाकार का रचना-धर्म है। मतदाता, संसद, जुलूस, नारा, सड़क, घर, बाजार सभी की बात करते हुए वे राजनीति से मार खाती जनता को नहीं भूल पाते"। उन्होंने कविता और राजनीति का सीधा सम्बन्ध माना है।

आज के युग की सच्चाई भी यही है कि आज का कवि - कर्म राजनीतिक चर्चा के बिना बिल्कुल अधूरा रह जाता है।" राजनीति ने

मानव को अब इस कदर घेरा हुआ है कि वह कवि की अन्तर्मानसिकता का माहौल बन गई है--जिस पर बात किये बिना जीवन पर बात करना ही रचना में असम्भव हो गया है। आज का आदमी एक ऐसे कठिन समय से गुजर रहा है कि उसकी हर यंत्रणा यातना का इतिहास राजनीति से जुड़ा हुआ है। एक और सर्वग्रासी अमानवीय तंत्र और दूसरी ओर हजारों करों से सताया हुआ आदमी छटपटा रहा है। पाखंड, झूठ, धोखा, आडम्बर, और भ्रष्टाचार के बीच बेचैन आदमी को जो घाव मिले हैं उसे भी आज का संवेदनशील कवि चाहे वह मुक्तिबोध हो या सर्वेश्वर-दयाल सक्सेना, भवानीप्रसाद मिश्र या रघुवीर सहाय अपने-अपने ढंग से सृजन में शब्द देते रहे हैं। इसलिए इन कवियों ने "अद्वितीयता" के पाखंडपूर्ण दुर्ग पर हमला किया है।[38]

"लोग भूल गये हैं" के वक्तव्य में रघुवीर सहाय लिखते हैं कि "जैसे राजनीति में वैसे ही कविता में भी जनके साथ कानूनी रिश्ते तो बने हुए हैं, लेकिन एक इंसानी रिश्ता रह नहीं गया है। इससे कवि भी राजनीतिक की तरह आत्मरहित बनता जा रहा है।"[39] इस प्रकार इस वक्तव्य से पता चलता है कि कठिन होते कविकर्म ने कविता को अनेक स्तरों पर आज चुनौती दी है। "आज अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियों ने मानवीय रिश्तों को बिगाड़ने की प्रक्रिया में वह स्थिति पैदा कर दी है कि अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले जन मानवीय अधिकार की अपनी हर लड़ाई को एक पराजय बनता हुआ पा रहे हैं। संघर्ष की रणनीतियां उन्हीं के आदर्शों की पूर्ति करती दिखाई दे रही हैं। जिनके विरुद्ध संघर्ष है" --[40] क्योंकि संघर्ष का

आधार नये मानवीय रिश्तों की खोज नहीं रह गया है।

रघुवीर सहाय की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं —

कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूंगा
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर एक कायर
टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ ऊब मत रूठ
मत डूब सिर्फ टूट [41]

इस सामूहिक चुप्पी के एक आतंक भरे माहौल के बीच बोल उठने-- अमानवीय परिदृश्य में हस्तक्षेप की वैयक्तिक भूमिका निभाने — का यह नैतिक संकल्प जरूरी पहल का सबसे बडा तकाजा कवि खुद से करता है। यह तकाजा समूची आजादी को हासिल करने की लम्बी लडाई लडने के लिए अभिव्यक्ति की आजादी को पाने और उसकी सही इस्तेमाल का तकाजा है। लेकिन, इस सच के लिए सबसे जरूरी यह है कि उस मन का "सही तरह" और "अच्छी तरह" टूटना यानी कि आत्मसंघर्ष की ठोस प्रक्रिया में उस मानसिक गठन का टूटना जो इस सामाजिक ढांचे और लम्बे इतिहास की देन है। दूसरों की कायरता तोडने से पहले ही अपने मानसिक गठन में जड़ जमाये बैठे उस संस्कारी, कायर को तोड़ना, जो बुनियादी मानवीय मूल्यों और सामाजिक अधिकारों पर सत्ता के हमले की हर स्थिति में मौन की मुद्रा में आत्मसुरक्षा ढूंढता है। इसी प्रकार सामूहिक वाणी पर अंकुश लगाने वाली समाज स्थित सत्ता के खिलाफ लड़ने के लिए, व्यक्ति की वाणी पर भीतर से अंकुश लगाने वाली मन: स्थिति कायरता का टूटना जरूरी है।

रघुवीर सहाय ने एक जगह खुद ही स्वीकार किया है कि "राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध को अधिकाधिक समझना आधुनिक संवेदना की शर्त है। इस शर्त से कतराना मनुष्य की आज की अवस्था को मनुष्य की सामर्थ से बाहर मानकर चलने के बराबर है। वैसा मान ले तो फिर रचने के लिए नहीं रह जाता ....सत्ता और वाणी का द्वन्द्व तीव्रतर होता जा रहा है और संस्थानों की वृद्धि, जो संगठित समाज में अनिवार्य है, सत्ता को वाणी के मुकाबले अधिकाधिक शक्तिवान बनाती जा रही है। इस आक्रमण के सामने लिखते रहना और अपने लिए हर बार अद्वितीय लिखते रहना लेखक के लिए जीवित रहने का अन्तिम .....उपाय है। अन्य वे सब उपाय जो राज्य के अधिकारों को सीमित और भाषा को जीवित रखने में सहायक हो, लेखक को वैसे ही करने चाहिए जैसे औरों को करने चाहिए।"[42]

रघुवीर सहाय अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं कि "अगर अपने देश के संदर्भ में देखें तो हमारे यहां जो शक्ति का ढांचा बना हुआ है या हमारे जो राजनीतिक संगठन हैं, ऊपर से नीचे तक इस सबको, यानी यह जो पूरी व्यवस्था है......मनुष्य और मनुष्य के बीच की गैरबराबरी को मिटाने के लिए यह व्यवस्था बिल्कुल बेकार है--मेरा कर्म है लिखना या सच्चाई का ढूंढना और पकड़ना। ऐसा काम करने वाला आदमी किसी समाज में उस वक्त अपने को बहुत असहाय और अपूर्ण अनुभव करने लगता है जबकि राजनीति रचनात्मक रूप में खुलकर न हो रही हो, अच्छी तरह राजनीति न हो रही हो, काफी राजनीति न हो रही हो।"[43]

व्यक्ति के निजी अनुभव संदर्भों से लेकर व्यापक सामाजिक संदर्भों तक फैली समस्याओं को सही जमीन पर और वस्तुपरक ढंग से समझने के लिए

मौजूदा राजनीति और उसे चलाने वाली शक्तियों की ठोस जानकारी और उसके प्रति अपना रवैया निश्चित करने की जरूरत को रेखांकित करने वाले इस दृष्टिकोण ने रघुवीर सहाय को शुरुआती दौर से ही अपने समकालीन नई कवितावादियों से कुछ अलग कर दिया था। "नई कविता की राजनीतिक विरोध खुले तौर पर उस राजनीति का विरोध था जो सामाजिक ढांचे को बदलने की प्रक्रिया से जुड़ी हुई थी। इस धारणा के पीछे जहां एक तरफ शीतयुद्ध की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सीधा प्रभाव था वहीं दूसरी तरफ आजादी के बाद निरन्तर विकास कर रहे उस मध्यवर्ग के भ्रम भी मौजूद थे जो आजादी की लड़ाई का पूरा श्रेय पूंजीपति वर्ग की प्रतिनिधि कांग्रेस को देते हुए उसे एक लम्बे समय से जनता के हितों का प्रतिनिधि मानता रहा और उसकी नीतियों के तहत तेजी से होने वाले पूंजीजीवी वर्ग के विकास को जनता और राष्ट्र के विकास के रूप में परिभाषित करता रहा था।" [49]

आजादी के आंदोलन के दौरान विकसित स्वस्थ मानवीय मूल्यों की विरासत के प्रति आस्था भाव से कुछ समाजवादी विचारों से तथा कुछ कांग्रेस की नीतियों और नेहरू शाही व्यवस्था के विपक्ष में विकसित लोहियावादी राजनीति के प्रभाव की वजह से रघुवीर सहाय की विचारधारा नई कविता की विचारधारा से कुछ भिन्न थी।

सन् 1951 में "प्रतीक" के संपादकीय में रघुवीर सहाय ने लिखा भी था कि "व्यक्तित्व के टुकड़े कर देने वाली पूँजीवादी जीवन व्यवस्था

हमारी जिजीविषा के टुकड़े नहीं कर पाती, यह सही है, परन्तु दो व्यर्थ कर देती है। दोहरे या तिहरे व्यक्तित्व की अवश्यम्भाविता स्वीकार भी कर ले तो जीने का काम कुछ सरल नहीं हो जाता ।" [45]

"आत्महत्या के विरुद्ध" की कवितायें अकाल, मेरा प्रतिनिधि, आत्महत्या के विरुद्ध, फिल्म के बाद चीख, एक अधेड़ भारतीय आत्मा, सभी कविताओं में जनता के बीच के रिश्तों को - मामूली स्थितियों के सीधे-सादे चरित्रों के सामान्य ढंग से रेखांकन के द्वारा एक द्वन्द्वात्मक सेटिंग के बीच उभारा गया है । ये कवितायें हमें सार्थक ढंग से उत्तेजित करती हैं।

रघुवीर सहाय कहते है कि "मैं कवि हूं, मैं राजनीति में हिस्सा लेता हूं, इसलिए कविता करता हूं, जैसे ही यह कहूंगा, मेरी मृत्यु निश्चित है। यह जो समय है वह तमाम राजनीतिक व्यवस्थाओं के टूटने का समय रहा है। ऐसे समय पर सतही तौर पर यह मान लेना कि कविता और राजनीति का सम्बन्धहै, बहुत बड़ा धोखा होगा। वह साहित्य के मोर्चे को राजनीति के मोर्चे से एकदम स्वतंत्र मानते हैं और साहित्य को किसी तरह सामाजिक परिवर्तन में सहायक नहीं मानते।" [46]

रघुवीर सहाय की कविताओं में "हत्या की राजनीति " को भी स्थान दिया गया है। "हँसो-हँसो जल्दी हँसो " में "रामदास" कविता एक राजनीतिक हत्या है। जैसे --

चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था

अन्त समय आ गया पास था
उसे बता दिया गया था कि उसकी हत्या होगी
धीरे-धीरे चला अकेले, सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मौन थे सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह उस दिन उसकी हत्या होगी
खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रखकर
सधे कदम रख कर के आये
लोग सिमट कर आंख गड़ाये
लगे देखने उसको जिसकी तय था हत्या होगी
निकल गली से एक हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फब्बारा
कहा नहीं था आखिर उसकी हत्या होगी [47]

इस प्रकार रामदास की मृत्यु का सबको पता था लेकिन सभी मनुष्य कुछ नहीं कर सके। हत्यारा सबके बीच में आकर रामदास की हत्या कर जाता है लेकिन सब चुप-चाप खड़े देखते रहते हैं, कोई कुछ नहीं कर पाता; क्योंकि यह एक राजनीतिक हत्या थी। इसी प्रकार "आत्महत्या के विरुद्ध" में भी एक कविता इसी प्रकार की है, जिसमें

कवि ने झूठ और मक्कारी से भरी व्यवस्था के नितान्त मनुष्य विरोधी चरित्र का पर्दाफाश किया है --

एक दिन आखिरकार दुपहर में छुरे से मारा गया खुशीराम
वह अशुभ दिन था, कोई राजनीति का मसला [48]

यहां भी यह राजनीतिक हत्या ही है। रघुवीर सहाय ने अपनी एक कविता "कैंसर" में रोग की राजनीति को प्रकट किया है। जैसे --

कैंसर से बहुत दिन बचे रह लेने का एक ही उपाय है
कि पता मत लगने दो कि तुम्हें कैंसर है दूसरों को
और खुद को भी, खुद को ज्यादा जरूरी है।
मगर जिन्हें डाक्टर बता देता है उन्हें यह भी बताता है
कि रोगी से मत कहो, रोगी की राजनीति यह है कि वह
समाज में आरक्षित है, मित्रों की राजनीति है यह
मरता है उसे मारने में विजय है। इसलिए जो रोगी का कैंसर
जानते हैं उन्हें पतनशील जाति से संवाद की
आक्रामक सभ्यता में नियत अमानुषित सम्बन्ध की
रक्षा करनी है, रोगी की नहीं।" [49]

इस प्रकार अगर किसी को कैंसर है तो उसको नहीं बताना चाहिए कि आपको कैंसर है। अगर किसी को डाक्टर बता भी देता है तो वह कहता है कि रोगी को नहीं बताना। मित्रों को भी यह नहीं कहना चाहिए कि अब वह समाज में आरक्षित है। इसी प्रकार रोगी अपना समय व्यतीत कर सकता है।

रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं मे राजनीति का खुलकर विरोध किया है। राजनीति में रघुवीर सहाय का अनन्य योगदान है जिसको कोई भी नकार नहीं सकता।

वे कहते हैं कि "मैं जानता हूं कि मुझे राजनीति की उथल-पुथल में उससे पैदा होने वाले रास्ते के विकास में हिस्सा लेना है मगर मैं किसी राजनैतिक दल को, सत्ताधारी दल को तो और भी नहीं, यह अधिकार नहीं देता कि वह मुझ से मेरे काम की कैफियत मांगे। मैं जो करता हूं अपनी जिम्मेदारी पर करता हूं और मेरी बेईमानी की सजा मेरे साहित्यकार की मृत्यु है। पर यह दंड मुझे न तो दल के साहित्यिक आलोचक दे सकते है न साहित्य-अकादमी के सलाहकार। यह दंड ठीक उसी तरह मेरी अपनी उपलब्धि ही हो सकता है जैसे साहित्य-रचना ठीक मेरा अपना निर्णय है।" [50]

इस प्रकार रघुवीर सहाय राजनीतिक कुकर्मों के हमेशा विरुद्ध रहे और जनता के हित के लिए हमेशा क्रियाशील।

(खण्ड - ख)

"रघुवीर सहाय की काव्य संवेदना का वैशिष्ट्य--"

रघुवीर सहाय के काव्य संग्रहों में काव्य संवेदना का वैशिष्ट्य भी दिखलाई पड़ता है। रघुवीर सहाय उस पीढ़ी के सदस्य थे जो आजादीकीलड़ाई खत्म होने के बाद सजग और रचनाशील हुई थी। इस प्रकार यह स्वाभाविक ही था कि उनकी काव्य संवेदना के बहुत से अंदरूनी सूत्र इस दौर की खूबियों से लिप्त हों। उनके अन्दर एक तरह की स्वचेतनता और एक नागरिक होने का अहसास भरपूर रूप में मौजूद था। आजादी के बाद जो काव्यधारा उभर कर हमारे सामने आई उसमें कई तरह के मध्यवर्ग शामिल थे जो अपने-अपने कारणों से एक जगह आ मिले थे। रघुवीर सहाय उस दौर में सामने आई विल प्रतिभाओं में से एक थे जिनका रचनात्मक व्यक्तित्व जनतांत्रिक प्रेरणाओं और अनुरोधों से ज्यादा मौलिक, विकासमान और वास्तविक अंशों को आत्मसात किये हुए था। रघुवीर सहाय अपने समय के "जनतांत्रिक मूल्यों" या "मानवमूल्यों(व्यक्ति और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अपनी जाहिल और निजी निर्विघ्न दुनिया की ढाल बना कर खड़ा कर दिया था। इसलिए अपने बहुत से समकालीनों से वे इस बात में भिन्नता लिए हुए थे कि उन्होंने अपनी आधुनिकता और अपने जनतांत्रिक आदर्शों को एक कहावत की तरह पा लिया था बल्कि उन्हें अपने रचनात्मक और सामाजिक व्यवहार में बार-बार खोजते-स्थिर करते बदलते और बदलते हुए अर्जित किया था।

रघुवीर सहाय के काव्य संग्रहों में, मजदूर वर्ग, स्त्री, और बच्चों की कवितायें व राजनीतिक काव्य संवेदना का वैशिष्ट्य प्रमुख है।

उनकी पत्रकारिता भी एक विशिष्ठता का प्रमाण है।

मजदूर वर्ग के प्रति वैशिष्ट्य :-

रघुवीर सहाय ने मजदूरों पर भी कवितायें लिखी हैं। वे शोषितों के प्रति अपने पूरे जीवन में संघर्षरत रहे और उनके अधिकारों की माँग करते रहे। "हँसो हँसो जल्दी हँसो" काव्य संग्रह में कवि ने मजदूर कलाकारों के बारे में वर्णन किया है और उनके ऊपर जो अत्याचार किया गया उसका वर्णन इस प्रकार है --जैसे

जो शरीर सूखे मरे पाये गये
उनमें जाने कितने कलाकारों के थे
उनकी कोई रचना छपी नहीं थी बल्कि
उनकी कोई रचना हुई नहीं थी क्योंकि
उन्हें अभी करनी थी
दो हजार वर्ष के अत्याचार के नीचे से उठकर
उन्हें एक दिन करनी थी रचना
इसके पहले ही वे मारे
इस वर्ष पिछले वर्ष की तरह [51]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की एक कविता "कुआनों नदी के पार" इस प्रकार है । जो मजदूर वर्ग से सम्बन्धित है --

यह खेतिहर मजदूर भूख से मर गया,
यह चौपाये के साथ बाढ़ में बह गया,

यह सरकारी बाग की रखवाली करता था
लू में टपक गया
यह एक छोटे से रोजगार के सहारे
जिन्दगी काट लेना चाहता था
पर जाने क्यों रेल से कट गया [52]

यहां पर कवि ने मजदूरों को भूख से मरते देखा है जो बाग की रखवाली करके अपना पेट भरता था। रघुवीर सहाय की कविता में "चेहरा" भ्र कविता के कलाकारों के ऊपर जो अत्याचार हुआ है, जिनकी कोई रचना भी नहीं छपी थी और उनको मार दिया जाता है। इस प्रकार रघुवीर सहाय ने मजदूरों के साथ-साथ मजदूर कलाकारों को भी अत्याचार से पीड़ित होते हुए और मरते हुए देखा है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जब धरती के किसी भी कोने में अत्याचार होता हुआ देखते हैं तो वे अपने अन्दर एक बेचैनी का अनुभव करने लगता है और कई बार आवेग में आकर निहत्थे आदमियों को सलाह भी देता है।

जैसे -

इस गरीब धरती के
निहत्थे आदमियों की ओर से
कह दो
जब सारे अस्त्र जवाब दे जाये
तब उस पत्थर से वे इन्सानियत का सिर फोड़ें
जिसे वे चांद से लाये हैं [53]

कवि कहता है कि जब सारे हथियार जबाव दे जाये तो फिर वे गरीब लोग पत्थर से ही इन्सानियत का सिर फोड़ना शुरू कर दे।

रघुवीर सहाय की एक कविता "भविष्य" इस प्रकार से है--

होगा ही अत्याचार और होता रहेगा
यह केवल इतना ही सच है कि हारे हैं
हारे हैं हार भी रहे हैं हम बार-बार
इस वक्त आज अभी फिर हारे
और यह स्वीकार करना कि हारे हैं
हर बार ताकत नहीं दे रहा [54]

रघुवीर सहाय कहते हैं गरीब और मजदूरों पर हमेशा ही शासक दलों के द्वारा अत्याचार होता आया है और इसको कोई रोकने वाला भी नहीं है क्योंकि जब शासक दल ही शोषक दलों का साथ दे रहा है। तो हमें हार माननी ही पड़ेगी और हम बार-बार हार मान रहे हैं। यहां पर कवि ने शोषितों को पत्थर से सिर फोड़ने की आज्ञा नहीं दी है क्योंकि ऐसा करने से मजदूर वर्ग पर अत्याचार अधिक होगा इसलिए कवि शोषितों के पक्ष में है और उनके प्रति करुणाशील है।

सर्वेश्वर की कविताओं में गरीबों की भूख का सवाल है कि वे रोटी कैसे प्राप्त करे। भुजैनिया का पोखरा कविता में गरीबी और भूख की भावनाओं, को लेकर काफी कवितायें लिखी है जैसे =--

भाड़ के सामने वाली भूतनी सी
आज भी वह बैठी है

पसीने से चिपचिपाती देह लिए
चुप खामोश
एक-एक चने से अपना भाग्य जोड़ती
दुखती रगे तोड़ती।
उसके अधनंगे बच्चे, भाड़ झोंकने के लिए
दिन भर सूखी पत्तियां बटोरते हैं
और शाम को मक्के की रोटी
और नरई का साग अगोरते है
साग के पोपले डंठलों में
सांप के बच्चे होने का भय
खाने के साथ एक उदास संगीत सा
उनके दिलों में बजता रहता है।[55]

इस कविता में उस मजदूर औरत की व्यथा है जो खूब काम करती है और उसके बच्चे, भूखे, अधनंगे, भूखे हाथ बटाते है और फिर भूखे रहते हैं। वह देश जो अपने बच्चों को वस्त्र और रोटी नहीं दे पाता सभी सपनों को तोड़ डालता है, गरीबी सूरत और अकाल दोनों को दबोचती है।

रघुवीर सहाय की एक कविता --

स्त्री मर गयी एक छोटे-छोटे बच्चे छोड़कर
और इस घटना को इस अधेड़ उम्र में देखकर
बच्चों की रोटी की सोच में पड़ गया मेरा मन
कितना आसान था प्रेम छोड़ पैसे की शरण में आ जाना
प्रेम जो समाज में पैसे की लड़ाई है
पैसा जो सिर्फ मुआवजा मौत का [56]

यहां पर भी स्त्री के मर जाने के बाद उसके छोटे-छोटे बच्चों के लिए रोटी का सवाल है । कवि कहता है आज के युग में प्रेम पैसे की एक लड़ाई मात्र है। लेकिन पैसा तो एक सिर्फ एक मौत का मुआवजा है। वहां पर एक औरत के लिए खाने भर के लिए भोजन नहीं है और यहां पर पैसा औरत की मृत्यु का मुआवजा मात्र है। अगर पैसा नहीं है तो उसके छोटे-छोटे बच्चों के लिए रोटी कहां से आयेगी।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने भूख और गरीबी के कारण बढ़ते हुए मानसिक तनाव को ऐसे . . चित्र खींचे हैं जिसमें भूख से लड़ती सब . . . चीज अच्छी लगती है।

जब भी
भूख से लड़ने
कोई खड़ा हो जाता है
सुन्दर दीखने लगता है [57]

रघुवीर सहाय की एक कविता "बचे रहो" में जैसे --

हजार कई हजार हजारों मर गये भूख से
ऐसा कहा
इतनी बड़ी संख्या बतायी कि उतनी बड़ी
आई हो गई
कि कोई देख नहीं पाया कि मैं
उनमें नहीं था।[58]

कवि कहता है कि कई हजार लोग हर साल भूख के कारण मर जाते हैं उनकी इतनी बड़ी संख्या बतायी जाती है कि उनकी एक आड़ सी बन जाती है जिसके कारण अपने व्यक्ति को भी देखने में असुविधा होती है। सर्वेश्वर कहते हैं कि जब कोई व्यक्ति भूख से लड़ता है तो वह सुन्दर दिखाई पड़ने लगता है। इस प्रकार भूख एक ऐसी अग्नि है या तो मनुष्य की जान ले लेती है वरना उसको लड़ने के लिए विवश कर देती है।

स्त्री वर्ग के प्रति दृष्टिकोण :-

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में औरतों के शोषित जीवन पर भी प्रकाश किया है· उनकी एक कविता है- "सुपाई . मारौ दुल्हन" जिसमें गांव की उस औरत का दर्द है जो अपनी इज्जत देकर भी रोटी नहीं पा सकी। गांधी जी के बाद भारत दाने-दाने को मोहताज हो गया था। जनता बेघरबार घूमती हुई सत्ता और व्यवस्था पर चढ़ा धन्ना सेठ गरीबी के नाम पर मिलने वाली सरकारी इमदाद खाता रहा। सर्वेश्वर की "कुबाओं नदी" इसी तरह की कविता है। जैसे --

दे रोटी !, कहां गई थी बड़े सवेरे
कर चोटी
लाला के बाजार में मिली दुअन्नी
पर वह भी निकली खोटी
दिन भर सोई
बीच बाजार में बैठकर रोयी,
सांझ को लौटी
ले साला कौआ [59]

इसी प्रकार रघुवीर सहाय की एक कविता "हंसो हंसो जल्दी हंसो" में --

कई कोठरियां थी कतार में
उनमें से किसी में एक औरत ले जाई गई
थोड़ी देर बाद उसका रोना सुनाई दिया
उसी रोने से हमें जाननी थी एक पूरी कथा
उसके बचपन से जवानी तक की कथा [60]

रघुवीर सहाय की कविता में हमें रोने से जाननी थी उसकी पूरी कथा" के अर्थ में गहराई है लेकिन सर्वेश्वर ने सीधे ढंग से ही कविता को समझने की कोशिश की है। रघुवीर सहाय के "रोने" शब्द के अन्दर ही औरत की जिन्दगी की पूरी कथा छिपी हुई इसी प्रकार रघुवीर सहाय थोड़े शब्दों में पूरी बात कह सकते हैं यह भी उनकी कविता की एक विशिष्ठता ही है।

धूमिल की एक कविता "भाषा की रात" में, कवि कहता है कि कुछ लोगों ने तो भूख की जगह भाषा को ही खा लिया था।

श्रीकान्त वर्मा की एक कविता " पेरिस में स्त्रियों " में कवि कहता है कि यहां की स्त्रियां स्वतंत्र हैं। यहां पर कवि ने उन स्त्रियों का वर्णन किया है जो पुरुषों का आहार तक सकती है।

पेरिस में स्त्रियां
उपभोग्या स्त्रियां
और पुरुष का आहार करने वाली स्त्रियां [61]

रघुवीर सहाय की एक कविता "नारी में कवि कहता है कि यहां कि स्त्रियां पुरुष द्वारा सताई हुई स्त्रियां है जो तन से क्षीण हैं और मन दर्द को लेकर दुखी हैं । जैसे --

नारी बिचारी है, पुरुष की मारी है
तन से क्षुधित है, मन से मुदित है
लपक कर, झपककर, अन्त में चित्त है [62]

इस प्रकार "पेरिस की स्त्रियों और भारत की स्त्रियों में अन्तर है। कवि ने इन शोषित स्त्रियों के प्रति विद्रोह किया है।

श्रीकान्त वर्मा ने अपनी एक कविता में (कन्नोज में क्या नहीं) और के अनेक रूपों का वर्णन किया है। वे कहते है कि कन्नौज की स्त्रियां पुरुषों की छटा के समान है एक शोर गुल करने वाली और वही खुश है। स्त्रियां यहां के राजाओं के लिए आमोद-प्रमोद (मनोरंजन) का एक साधन है और ब्राह्मणों के लिए वे एक प्रतिभोज के समान है। जैसे :--

स्त्री पुरुषों की छटा है
कोलाहल है, हर्ष है
किलकारी है, कन्नौज की बलिहारी है
शासकों के लिए
आमोद और प्रमोद है
ब्राह्मणों के लिए भोज है। [63]

रघुवीर सहाय की एक कविता बलात्कार में कवि कहता है कि--

औरतों के चेहरे समाज के दर्पण हैं
पुरुषों जैसे
किन्तु जो दर्द दिखलाते हैं उनमें मिठास है
पुरुष गिड़गिड़ाते हैं औरते सिर्फ चुपचाप थाम लेती है बेबसी [64]

यहां पर औरतों के चेहरों को समाज के दर्पण के रूप में कवि ने देखा है। पुरुष गिड़गिड़ाते रहते हैं और औरते चुपचाप बेबस होकर रह जाती हैं। यहां पर स्त्रियां आमोद-प्रमोद का साधन नहीं है बल्कि उनका बलात्कार किया जाता है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में बच्चों पर पुलिस द्वारा हुए अत्याचार का भी वर्णन है। उस बच्चे में इतना क्रोध है कि वह हाथै में पत्थर लेकर पुलिस पर फेंक रहा था। परन्तु व पुलिस से बच नहीं पाता। उसका धड़ अलग पड़ा हुआ मिलता है। जैसे --

यह बच्चा है इसका कटा हुआ धड़
बस्ता लिए स्कूल के फाटक पर पड़ा है
इसके हाथ में पत्थर है
जिसे वह पुलिस पर फेंक रहा था [65]

रघुवीर सहाय की कविता में एक बच्ची अपने माँ को बचाने का प्रयास करता है। और एक लड़की भारी बस्ता लेकर खड़ी है उसके सिर पर उसके बाप की तरसती हुई जिन्दगी के प्रश्नचिन्ह अंकित हैं। आमार सोनार दिल्ली में मक्खन का विज्ञापन छपता है। वहां पर बच्चों के साथ नृशंसता का व्यवहार किया है।

रघुवीर सहाय कहते हैं कि --मैं माँ और बच्चे दोनों के साथ हूं क्योंकि बच्चा अपनी माँ को बलात्कार व अपने को बन्दूक का निशाना बनने से रोक सके।

यही कि मैं शिशु सहित मां के
साथ हूं साथ हूं साथ हूं साथहूं
बशर्तें की बलात्कार से मां
और बन्दूक से बच्चा
अपने को बचा सके। [66]

यहां पर कवि बच्चा का साथ देने के लिए तत्पर होता है। उसकी रक्षा करना चाहता हैं। रघुवीर सहाय की बहुत सी कवितायें बच्चों और औरतों पर लिखी गई हैं क्योंकि कवि अधिकतर बच्चों और औरतों के अधिक निकट रहा है। उसने उनको नजदीक से देखा और पहचाना है।

धूमिल की कविता में गरीबों के बच्चों का शोषण हो रहा है। पूँजीवादी जनतंत्र में औपचारिकता का अधिक निर्वाह होता है। लेकिन प्रजा भी हथियार उठाकर ही सम्पत्ति, पूंजी, शासन और भूमि पर उच्च वर्गों की समाप्त कर सकती है जैसे --

एक मकान उठता है और
एक बूढ़ा आदमी
उस पर झंडे की तरह उड़ने लगता है
उसके पांच बच्चे नींव में
चुन दिये जाते है। [67]

रघुवीर सहाय की एक कविता "बाप का बेटे से बोलना" में कवि कहता है कि --

अब बड़े होने पर जानता हूं, बच्चे
बड़े होते जाते हैं
लेकिन सुरक्षित नहीं होते
अपने बच्चों की पीड़ा की अनुभूति है
पीड़ा की [68]

कवि की दृष्टि में ज्यों-त्यों बच्चे बड़े होते जाते हैं परन्तु वे सुरक्षित नहीं रहते। वे कहते हैं कि अपने बच्चों की पीड़ा को देखकर पिता को जो दुख की अनुभूति होती है उसे पिता कैसे सहन कर पाता है। उससे बड़ा दुखः उसे क्या हो सकता है। इसलिए कवि को बच्चों से वास्तव में प्रेम है जिसे उनकी अधिकतर कविताओं में देखा जा सकता है।

राजनीति के प्रति काव्य संवेदना का वैशिष्ठ्य :-

"लोग भूल गये हैं" कविता संग्रह में कवि लिखते हैं कि "जैसे राजनीति वे वैसे ही कविता में भी जन के साथ कानूनी रिश्ते तो बने हुए हैं, लेकिन एक इंसानी रिश्ता रह नहीं गया है।" [69]

धूमिल की राजनीति के सम्बन्ध में एक धारणा इस प्रकार है कि "कविता का राजनीति से कोई संबंध नहीं हो सकता । उनके मन में यह बात गहराई से घर हो गयी है कि राजनीति के प्रवेश से कविता दूषित हो जाती है। लेकिन हमारे युग में जब एशिया और अफ्रीका में स्वाधीनता आन्दोलन चल रहे हो, दो-दो महायुद्ध लड़े गये हों, भारत पर कई बार पाकिस्तान ने और एक बार चीन ने आक्रमण किया हो, सामाजिक क्रांतियां हो रही हो, तब कवियों से राजनीति से अलग रहने की अपेक्षा करना एक गुनाह है।" [70]

धूमिल के मन में यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय जीवन के प्रति विश्वास-घात हुआ है। गांवों और गरीबों के विकास की जगह भ्रष्टाचार और अवसरवाद को बढ़ाया गया है कवि की राजनीतिक समझ और सामाजिक दायित्वबोध की सीधी अभिव्यक्ति करने के कारण भी धूमिल की कवितायें अपने युग को नये ढंग से उजागर करती हैं। 71

रघुवीर सहाय कहते हैं कि मैं कवि हूं, मैं राजनीति में हिस्सा लेता हूं इसलिए कविता करता हूं, जैसे ही यह कहूंगा, मेरी मृत्यु निश्चित है यह जो समय रहा है यह तमाम राजनीतिक व्यवस्थाओं के टूटने का समय रहा है। ऐसे समय में यह मान लेना कि कविता और राजनीति का सम्बन्ध है बहुत बड़ा धोखा होगा। वे साहित्य और राजनीति के मोर्चे को एकदम अलग मानते हैं और साहित्य को किसी तरह सामाजिक परिवर्तन में सहायक नहीं मानते हैं। साठोत्तरी दौर में राजनीति का दबाव इतना अधिक था कि उस समय के कवि को राजनीति से अलग रहकर जीना भी पसन्द नहीं था।

धूमिल साठोत्तरी कविता के महत्वपूर्ण कवि हैं और उनकी कविता भी भारतीय जनतंत्र की इन स्थितियों का सीधा साक्षात्कार करती है। आजादी, जनतंत्र, संसद पर व्यंग्य करते चले जाना धूमिल की कविता की विशेषता रही है। उनकी एक कविता इस प्रकार है --

अपने यहां संसद
तेली की वह घानी है
जिसमें आधा तेल
और आधा पानी है। 72

यहाँ पर धूमिल ने संसद को एक तेली की धानी के रूप में चित्रित किया है जिसमें उन्होंने कहा है कि संसद एक मिलावटी सभा का नाम है जिसमें सब तरह के मनुष्य रह सकते हैं।

रघुवीर सहाय की एक कविता "फिल्म के बाद चीख" में संसद के बारे में इस प्रकार कहा है जैसे --

संसद एक मन्दिर है जहाँ किसी को द्रोही कहा नहीं
जा सकता
दूध पिये मुँहपोंछे, आ बैठे जीवनदानी गोंद
दानी सदस्य तोंद सम्मुख धर
बोले कविता में देश प्रेम लाना
हरियाणा प्रेम लाना 73

यहां रघुवीर सहाय ने संसद को एक मन्दिर कहा है और कहा है कि संसद में हम किसी को देशद्रोही नहीं कह सकते। धूमिल ने संसद को तेली की एक धानी बताया है। रघुवीर सहाय की यही विशिष्टता है कि उन्होंने संसद को एक मन्दिर कहा है और उसमें देश प्रेम और हरियाणा प्रेम लाने की बात कही है।

रघुवीर सहाय की "रामदास" कविता में हत्यारा सड़क के बीच में रामदास की हत्या सभी लोगों के बीच में आकर करता है। इस हत्या के बारे में सभी लोग परिचित थे सभी लोग जहां रामदास की हत्या

होनी वही पर खड़े हैं, हत्या का समय और स्थान भी निश्चित था। हत्यारा ठीक समय पर आकर रामदास की हत्या कर जाता है लेकिन कोई कुछ भी नहीं कर पाता सभी चकित होकर देखते रहते हैं और रामदास को भी मालूम था कि आज उसकी हत्या होगी लेकिन वह लाचार था।

चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अन्त समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी
धीरे-धीरे चला अकेले
सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मौन थे सभी निहत्थे
सभी जानते थे कि यह उस दिन उसकी हत्या होगी। 74

धूमिल की एक "हत्यारे" शीर्षक कविता है। इस कविता में हमें यह जान जान लेना आवश्यक है कि हत्यारा कौन है ? क्या वह जो हमें सामने नजर आता है, या कि वह जो हमारे सामने भेजा है ? इस कविता में धूमिल कहता है कि --

हत्यारे एकदम सामने नहीं आते.
वह पुराना तरीका है एक आदमी को मारने का
अब एक समूह का शिकार करना है
हत्यारे एकदम सामने नहीं आते
उनके पास हैं कई-कई चेहरे
कितने ही अनुचर और बोलियां
एक से आधुनिक और निरापद तरीके [75]

रघुवीर सहाय की कविता में हत्या एक सामूहिक हत्या है वह राजनीतिक हत्या है लेकिन धूमिल की इस कविता में हत्यारे सामने नहीं आते और उनके पास कई तरह के तरीके और अलग-अलग तरह के चेहरे भी हैं। जिससे यह मालूम नहीं हो सकता कि हत्यारा कौन है। लेकिन रामदास की हत्या सभी लोगों के बीच में निश्चित टाइम पर हत्यारा करके वापस चला जाता है और निहत्थे लोग देखते ही रह जाते हैं।

देश की दुर्दशा राजनेताओं की चरित्रहीनता के कारण हुई है, इसमें धूमिल का पूर्ण विश्वास है। वे अपने लिए अपरिमित सुविधायें जुटाने और बटोरने वाले नेता युवकों के लिए जीवन-मरण के सवाल पर कितने निश्चिन्त हैं। इसके लिए वे कागजी घोड़े नचाते हैं। युवकों के लिए रोजगार दफ्तर खोलकर वे मुक्त हो जाते हैं। इन्हीं राजनेताओं ने आदमी को किस प्रकार छला है किस प्रकार उनके व्यक्तित्व एवं विचार धाराओं को तोड़ा है । इसका धूमिल की कविताओं में कड़ा विरोध है। धूमिल के अनुसार उनकी शोषण की प्रक्रिया इतनी वेगवती है कि व्यक्तियों को

अपराध के सही लक्ष्यों का पता ही नहीं चलता । उसको यह भी मालूम नहीं कि शोषण किस प्रकार से हो रहा है। यह देश की बड़ी विसंगत स्थिति है कि आम आदमी शोषण की प्रक्रिया की वास्तविकता न समझकर भुलावे में पड़ा हुआ है जैसे --

मैंने जब भी उनसे कहा है
देश, शासन और राशन
उन्होंने मुझे रोक दिया है
अक्सर वे मुझे अपराध के सही मुकाम पर
ऊंगली रखने से मना करते हैं
जिनके आधे से ज्यादा शरीर
भेड़ियों ने खा लिया है [76]

यहां पर कवि ने भेड़ियों शब्द का प्रयोग राजनेताओं के लिए किया है। रघुवीर सहाय की एक कविता " आपकी हंसी" में समाज के शोषण को दिखाया गया है। राजनेता जनता का शोषण करने के पश्चात एक अश्लील हंसी हंसते हैं --जैसे ---

निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हंसे
लोकतंत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सब के सब हैं भ्रष्टाचारी
कह कर आप हंसे
चारों ओर बड़ी लाचारी
कह कर आप हंसे

कितने आप सुरक्षित होंगे
मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हंसे [77]

रघुवीर सहाय की इस कविता में राजनेता शोषण करने के बाद भी हंसते हैं। और निधन जनता का मजाक बनाते हैं। रघुवीर सहाय ने देश की आर्थिक स्थिति को समझाते हुए राजनेताओं के शोषण का वर्णन किया है । वे जनता की मजबूरियों को देख कर हंसते है जबकि उनकी गरीबी और अत्याचारी देखकर उनको उचित कदम उठाना चाहिए।

जब देश में आम चुनाव होते हैं तो लोग अपने को ईमानदार और ताकतवर कहकर लोगों से वोट मांगते हैं और कुर्सी पर आने के बाद वे फिर दूसरे नेताओं की तरह ही अन्याय व भ्रष्टाचार फैलाने लगते हैं। स्वाधीन भारत में आम आदमी और उसकी दुर्दशा निश्चय ही साठोत्तरी कवियों की चिन्ता का एक विषय रही है। इसी प्रकार कहा गया है कि "सार्थक और न्यायपूर्ण जिन्दगी की तलाश के लिए धूमिल का काव्य स्वाधीन भारत की हिन्दी कविता का नक्सलवादी है।" [78] उनके काव्य में जनतंत्र का खोखलापन है और कहीं सामाजिक कुरूपताओं का नग्न चित्र । जैसे --

चौथे आम चुनाव की सीढ़ियों से फिसलकर
मत पेटियों के
गड़गच्च अंधेरे में गिर पड़ा

नींद के भीतर यह दूसरी नींद है
और मुझे कुछ नहीं सूझ रहा सिर्फ एक शोर है
जिससे कान के पर्दे फटे जा रहे हैं
शासन, सुरक्षा, रोजगार सुरक्षा [79]

मैं आम चुनाव होने के बाद और उसमें हार मिलने के बाद मैं एक अंधेरे में गिर पड़ा हूं। मुझे सिर्फ एक ही शोर सुनाई दे रहा है जिसके कारण मेरे कान के पर्दे फटे जा रहे हैं वह शासन की सुरक्षा और रोजगार की सुरक्षा आदि ।

रघुवीर सहाय की कविता में भी राजनेताओं की खोखली शोषण का उदाहरण है। वे कह रहे हैं कि हर साल कोई न कोई नेता अपनी खोखली घोषणा करता है और अन्त में कहता है कि अगर हमसे कोई गलती हो गई हो तो माफ करना। और जनता के सामने अपना सिर झुकाकर वोट मांगता है। जब हर पांचवे साल देश में चुनाव होता है तो सारा का सारा मंत्रिमंडल ही बदल जाता है।

जैसे ==--

हर साल एक और नौजवान घूंसा
दिखाता है मेज पर पटकता है
बूढ़ों की बोली में खोखले इरादे दोहराता है।
हां हमसे हुई जो गलती भी हुई
कहकर एक बूढ़ा उठ
एक सपाट एक विराट एक सुरटि समुदाय को
सिर नवाता है। [80]

कवि कहता है कि जब इन नेताओं को वोट की जरूरत होती है तो ये सिर भी झुकाने से नहीं हटते। और अन्त में अपनी मनमानी करते हैं। रघुवीर सहाय का एक कथन इस प्रकार है - मैं यह मानता हूं कि मैं जो

कुछ कर रहा हूं वह राजनीति में जो कुछ लोग कर रहे हैं उनके साथ मेल खा सकता है उनका सहायक भी हो सकता है, उनसे मुझे शक्ति मिल सकती है, उनसे मुझे शक्ति मिल सकती है --मानसिक शक्ति- और मुझसे उन्हें भी मानसिक शक्ति मिल सकती है, लेकिन हम दोनों बराबर के स्तर के लोग हैं, हम दोनों में से कोई एक दूसरे का गुलाम नहीं हो सकता ।[81]

रघुवीर सहाय की एक कविता "हमारी हिन्दी" में हिन्दी भाषा पर व्यंग्य किया गया है। आज हिन्दी को अनुवाद की भाषा बनाकर उसे राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने का दावा करने वाले हिन्दी सलाहकार सरकारी संस्थानों के मूर्ख हिन्दी अधिकारी तथा जड़ हिन्दी अध्यापक हिन्दी" भाषा को अपने जीवनयापन तथा सुख सुविधा का उपकरण बनाते हुए अन्ततः शासक वर्ग के हितों को पुष्ट कर रहे हैं तथा भाषा के विकास के बदले सड़न पैदा कर रहे हैं। "हमारी हिन्दी "कविता" में यह सत्य इस प्रकार प्रकट हुआ है --

हमारी हिंदी एक दुहाजू की नई बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली
घर से तो निकलने का सवाल ही नहीं उठता
औरतों को जो चाहिए घर ही में है
एक महाभारत है एक रामायण है
तुलसी की भी राधेश्याम की भी
एक "नागिन" की स्टोरी "समय गाने"
और एक खाकी बाहली में छपा कोकशास्त्र
× × × ×
घर में सब कुछ है जो औरतों को चाहिए
सीलन भी और अन्दर की कोठरी में पांच सेर सोना भी

और संतान भी जिसका जिगर बट गया है
जिसे वह मासिक पत्रिका पर हगाया करती है

× × × ×

हमारी हिन्दी सती सुहागिन है सती है खुश है। 82

हिन्दी के लिए आन्दोलन चलाने वाले राजनैतिक दलों ने इसे महसूस नहीं किया। बाद में रघुवीर सहाय ने हिन्दी प्रेमियों के दो शब्द, तथा भाषा की पूजा बन्द करो आदि टिप्पणियों, लेखों में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित न होने देने वाले षड्यंत्र का जमकर पर्दाफाश किया है।

सम्पूर्ण उत्तरी भारत में विशेषकर उत्तर प्रदेश में 1967 में भाषा आन्दोलन हुआ। कम्युनिस्ट दलों को छोड़कर सभी ने उसका समर्थन किया था। धूमिल ने अपनी कविता "भाषा की रात" में यही दृष्टिकोण स्वीकार किया है 55=

चन्द चालाक लोगों ने
बहस के लिए
भूख की जगह
भाषा को रख दिया है
× × × ×

भाषा और भाषा की बीच की दरार में
उत्तर और दक्षिण की तरफ
फन पटकता हुआ

एक दूमुहां किधर रेंग रहा है
रोजी के नाम पर
रोटी के नाम पर [83]

धूमिल ने कहा है कि भाषा को ठीक करने से पहले आदमी को भी ठीक करना होगा।

हिन्दी भाषा के लिए एक कथन में रघुवीर सहाय कहते है कि जिसका राजनीतिक दिमाग एक भाषा में वोट मांगता है दूसरी में वक्तव्य देता है तीसरी में शपथ लेता है। [84]

दूहरे चरित्र वाले चालाक सत्ताधारी वर्ग ने हिन्दी के उस रूप को प्रतिष्ठित करने की कोशिश की है कि जो जनता के बीच निर्मित नहीं हुआ है। यह कितना हास्यास्पद है कि भाषा विदों को भाषा का विकास करने को कहा गया। स्वाभावतः उन्होंने ऐसी भाषा गढ़ी जो जनता की हिन्दी नहीं थी बल्कि अंग्रेजी की स्थानापन्न शब्द कोश निर्मित हिन्दी थी। यही कारण था कि "हिन्दी सम्बन्धी छोटे-बड़े सरकारी कार्यालय शुद्ध रूप में मन्दिर बन गये जिनमें पूजापाठ की विधियों पर शास्त्रीय उपदेश करते हुए छोटे-बड़े पुजारी आज जय हिन्दी जय नागरी कर रहे है।" [85] जैसे --

गोल - शब्दकोश में अमोल बोल तुतलाते
श्रीमकाय भाषाविद हांफते डकराते हांकते
अंग्रेजी की अवध्य गाय
घंटा घनघनाते पुजारी जय जयकार
सरकार ने करार जारी हजार शब्द रोज। [86]

इसी स्थिति से राष्ट्रभाषा को मुक्त करने का क्या रास्ता है? रघुवीर सहाय के शब्दों में एक ही रास्ता है और वह भी उबड़-खाबड़ जमीन पर से होकर जाता है। वह भाषा की पूजा, तुरन्त बन्द करके उसके इस्तेमाल का रास्ता है।"[87]

धूमिल की एक कविता "शहर में सूर्यास्त" में भाषा-विवाद तथा देश में व्याप्त चरित्रहीनता द्वारा जनतंत्र पर व्यंग है।

हवा में एक चमकदार गोल शब्द
फेंक दिया जाता है --जनतंत्र
जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है।[88]

इस प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी को लेकर संसद के शालीन और सम्मान-जनक माहौल को बट्टा लग रहा था लेकिन उस हिन्दुस्तान के लिए उन्हें जरा भी शर्म नहीं थी जो अब भी भारत के संदर्भ में शोषक वर्ग के हितों का संरक्षण करने वाली अंग्रेजी भाषा का गुलाम है। लोक सभा में हिन्दी तथा प्रदेशिक भाषाओं के बारे में सही नीति अपनाये जाने की मांग करने वाले समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया को सम्पूर्ण सत्ता पक्ष जिस तरह उस दिन बोलने से रोक रहा था, उससे सत्ता की नीयत स्पष्ट हो रही थी।

रघुवीर सहाय की कुछ कविताओं में राजनैतिक व्यंग्य भी है। हंसो हंसो जल्दी हंसो की एक कविता " राष्ट्रीय प्रतीक्षा" में वे कहते हैं कि

हमने बहुत किया है
हम ही कर सकते है
हमने बहुत किया है
पर अभी और करना है

हमने बहुत किया है
पर उतना नहीं हुआ है
हमने बहुत किया है
जनता ने नहीं किया है
हमने बहुत किया है
हम फिर से बहुत करेंगे
हमने बहुत किया है
पर अब हम नहीं कहेंगे
कि हम क्या और करेंगे
और हमसे लोग अगर कहेंगे कुछ करने को
तो वह तो कभी नहीं करेंगे [89]

रघुवीर सहाय की कविता "आत्महत्या के विरुद्ध" में व्यंग्य का पुट इस प्रकार दिखाई देता है। जैसे

सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
मेजें बजाते हैं
सभासद भद भद भद कोई नहीं हो सकती
राष्ट्र की
संसद एक मन्दिर है जहां किसी को द्रोही कहा नहीं जा सकता [90]

यह व्यंग्य दृष्टि न सिर्फ शोषित जनों की विडम्बनापूर्ण हँसी को रेखांकित करती है बल्कि शोषक वर्ग के प्रतिनिधियों की अश्लील और भयावह हंसी को रेखांकित करती है। व्यंग्य दृष्टि के लिहाज से रघुवीर सहाय की एक विलक्षण कविता "रामदास" है। यहाँ पर व्यंग्य दृष्टि

की यह खूबी है कि वह इन दारुण स्थितियों में कवि को भावुक होने से बचाती है और कविता स्थितियों को उसकी समूची भयावहता के साथ रखती है। "महासंघ का मोटा अध्यक्ष", "मंथर मटकता मंत्री मुसद्दीलाल", अकादमी का महापरिषद की अनन्त बैठक", "मुन्न से बोले विनोबा से जैनेन्द्र, आंख मार कर हंसता महासंघपति, महान राष्ट्रीय व्यक्तित्व से जागता कवि अपनी पतली टांगे निहारना, आदि भाषा के ऐसे प्रयोग हैं, जो वस्तु संसार का एक हद तक विरूपीकरण कर उनके भीतर हिन्दी अमानवीयता को दिखलाते हैं।

रघुवीर सहाय की तुलना में श्रीकान्त वर्मा के व्यंग्य प्रयोगों में एक ऊब, थकान और चिढ़ की मनःस्थिति व्यंजित है इसलिए उनके भाषा शिल्प की यह विशेषता है कि वह एक खास गति के साथ विरोधी स्वभाव वाले दृश्यों का इस प्रकार से संयोजन करता चला जाता है कि वाक्यों के पीछे निहित गम्भीरता का पूरी तरह निराकरण होता है। उनके कविता के ये दृश्य इतने पूर्ण नहीं होते कि उनके अलग-अलग अर्थ निकाले जा सके। वे कुल मिलाकर अपनी समग्रता में एक मूड की अर्थ हीनता को प्रतिपादित करते हैं। जैसे --

राष्ट्रभाषा हिन्दी की जय / कचरा महादेव के / शिवालय के पास एक नदी / पुकारता है / राष्ट्रभाषा हिन्दी की जय / मैं एक पब्लिक लिबेटरी में बैठा हुआ / सोच रहा हूं -- मेरी कविता में लय / क्यों नहीं है ? 91

यहां पर नेताओं ने कहा है कि हमने देश के लिए और जनता के लिए बहुत कार्य किये है इससे ज्यादा हम क्या कर सकते है। जब उनके

मतदान मांगने की बारी आती है तो वे यही कहते हुए मिलते हैं कि हम जनता की भलाई के लिए सब कुछ करेंगे लेकिन समय आने पर सब भूल जाते हैं। अगर कोई मनुष्य उनके अपने कार्य के लिए प्रार्थना करते है तो वे अनसुनी कर जाते हैं और अपने किये सब वायदें भूल जाते हैं उन्हें तो सिर्फ अपना पद ही याद रहता है। यहां पर रघुवीर सहाय ने राज-नेताओं के प्रति गहरा व्यंग्य प्रकट किया है। धूमिल की एक कविता में भी राजनेताओं पर व्यंग्य है। उनकी व्यंग्य की रचनाओं में तीखेपन के साथ-साथ झौंझलाहट जरा भी नहीं रहती है। "पटकथा" जैसी लम्बी कविता में से इस संदर्भ में दर्जनों उदाहरण इस प्रकार के हैं। वकीलों वैज्ञानिकों, अध्यापकों, नेताओं, दार्शनिकों, लेखकों, कवियों, कलाकारों, तथा बुद्धिजीवियों पर भी उनका व्यंग्य है जैसे --

नहीं - अपना कोई हमदर्द
यहां नहीं है । मैंने एक-एक को
परख लिया है
मैंने हरेक को आवाज दी है
हरेक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार.....। मैंने जिसकी पूंछ
उठाई है उसको मादा
पाया है
वे सब के सब तिजोरियों के
दुभाषिये हैं
वे वकील हैं। वैज्ञानिक हैं।
अध्यापक हैं । नेता हैं। दार्शनिक
यानि
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों एक संयुक्त परिवार है। [02]

धूमिल ने देश की संसद, समाजवाद, आजादी, चुनाव नेता सभी पर पैना व्यंग्य किया है। रघुवीर सहाय की भी अनेक, कवितायें सभी लुजलुजे है, पढ़िये गीता आदि कविताओं में व्यंग्य है। रघुवीर सहाय की कविताओं में व्यंग्य मिश्रित हास्य भी है इसी प्रकार रघुवीर सहाय की कविताओं को एक विशिष्टता प्रदान की गई है।

सन्दर्भ

1. जनसत्ता - 2० दिसम्बर 1991 - पृ० 6
2. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 34
3. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 36
4. रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 150
5. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 80
6. रघुवीर सहाय - दूसरा सप्तक - पृ० 155
7. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 97
8. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 54
9. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 87
10. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - 42
11. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 106
12. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ०
13. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो - पृ० 16
14. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 21
15. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 72
16. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 16
17. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 46
18. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं, पृ० 86
19. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 57
20. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 44
21. योगेन्द्र नारायण - राजनीतिक सिद्धान्तों का इतिहास - पृ० 19
22. योगेन्द्र नारायण - राजनीतिक सिद्धान्तों का इतिहास
23. प्रतिपक्ष, जनवरी 1991- पृ० 2०
24. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 83
25. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 79

26. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ0 77
27. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ0 22
28. रघुवीर सहाय - दिल्ली मेरा परदेस - भूमिका - पृ0 3
29. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ0 67
30. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ0 15
31. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ0 104
32. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ0 104
33. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ0 16 - 17
34. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - 75-76
35. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ0 80
36. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - भूमिका - पृ0 5
37. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ0 23-24
38. प्रकर - कृष्णदत्त पालीवाल - भाद्रपद - 2082 - पृ0 13
39. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - निवेदन - पृ0 7
40. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - निवेदन - पृ0 8
41. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ0 85
42. राजकुमार शर्मा - कविता की रचना यात्रा- पृ0 126
43. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ0 108
44. राजकुमार शर्मा - कविता की रचना यात्रा- पृ0 127
45. राजकुमार शर्मा - कविता की रचना यात्रा - पृ0 126
46. कुमार कृष्ण - दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में धूमिल - पृ0 106
47. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो - पृ0 27
48. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ0 68
49. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ0 35
50. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ0 66
51. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो - पृ0 66
52. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ0 28
53. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ0 78
54. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ0 22

55. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ0 46, 47
56. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं, - पृ0 77
57. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ0 15
58. रघुवीर सहाय- हँसो, हँसो जल्दी हँसो - पृ0 18
59. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ0 144
60. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो -
61. श्रीकान्त वर्मा - गरूड़ किसने देखा है - पृ0 35
62. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ0 172
63. श्रीकान्त वर्मा - गरूड़ किसने देखा है - पृ0 36
64. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ0 83
65. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ0 25
66. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो - पृ0 62
67. धूमिल - संसद से सड़क तक - पृ0 48
68. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ0 27
69. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये है - भूमिका - पृ0 8
70. डा0 विजेन्द्र नारायण सिंह - अकवि काव्य की संस्तुति में - पृ0 164
71. कुमार कृष्ण - दूसरे प्रजातंत्र की तलाश - पृ0 114
72. धूमिल - संसद से सड़क तक - पृ0 140
73. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरूद्ध - पृ0 28
74. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो - पृ0 26
75. धूमिल - सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र - पृ0 [illegible]-70
76. धूमिल - संसद से सड़क तक - पृ0 1[illegible]1
77. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो - पृ0 16
78. कुमार कृष्ण - दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में - पृ0 141
79. धूमिल - संसद से सड़क तक - पृ0 108
80. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरूद्ध - पृ0 28

81. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 105
82. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 70
83. धूमिल - संसद से सड़क तक - पृ० 101
84. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 122
85. रघुवीर सहाय - लिखने का कारण - पृ० 123
86. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 23
87. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 94
88. धूमिल - संसद से सड़क तक - पृ० 88
89. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो - पृ० 57
90. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 28
91. श्रीकान्त वर्मा - माया दर्पण - पृ० 70
92. धूमिल - संसद से सड़क तक - पृ० 139

"पंचम अध्याय"

(खण्ड - क)

रघुवीर सहाय की कविताओं का शिल्प विधान :-

रघुवीर सहाय के शिल्प-विधान को जानने से पहले हमें शिल्प को जानना बहुत जरूरी है।

शिल्प की परिभाषा :-

"शिल्प" शब्द अंग्रेजी के "टेकनीक" शब्द का हिन्दी अनुवाद है। आक्सफोर्ड डिक्सनैरी में शिल्प की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है-- " कलात्मक कार्य विधि की वह रीति, जो संगीत अथवा चित्रकला में प्राप्य है।" [1] हिन्दी कोश में भी कहा गया है कि - "शिल्प में से अभिप्रायः हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है।" [2]

"शिल्प" या "टेकनीक" की शाब्दिक व्याख्या से ज्ञात होता है कि शिल्प का अर्थ ढंग, विधि, रीति अथवा विधान है। कला या काव्य के संदर्भ में "शिल्प" का सम्बन्ध अभिव्यक्ति की प्रणाली से है। डा० मोहन अवस्थी ने काव्य-शिल्प की सैद्धान्तिक व्याख्या करते हुए कहा है कि "काव्य-विधान काव्य का विज्ञान है। कविता करने की विधि से लेकर कविता सम्बन्धी गुण-दोषों का विधिवद ज्ञान उसके भीतर आ जाता है और उस ज्ञान का आत्म प्रकाश काव्य-शिल्प है। [3] कैलाश वाजपेयी के अनुसार "काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढांचा तैयार किया जाता है, वे सब काव्य के शिल्प तत्व कहे जाते हैं। शिल्पविधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखाजोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त हो चुकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी द्वारा अवतरित हुई है।" [4]

डा० पुष्कर दत्त शर्मा ने काव्य शिल्प और टेकनिक के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "रूप सर्जन की विशिष्ठ योजना को शिल्प कहते हैं। शिल्प रूपकार का कौशल है, इसे तकनीक भी कह सकते हैं, किन्तु सीमित अर्थ में। यांत्रिक तकनीक से भिन्न तकनीक अर्थात "तकनीक प्रिंसिपल" ही शिल्प कहला सकता है। " [5]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य शिल्प वस्तुतः काव्य की रचनात्मक प्रक्रिया या सर्जन विधि का ही एक नाम है। काव्य शिल्प के अन्य अर्थ -सूचक शब्द-जैसे काव्य विधान, काव्य विधि, रचना कौशल, शिल्प विधान, शिल्प विधि, रूप रचना आदि है। काव्य की रूपाकृति का निर्माण करने वाले सभी तत्व शिल्प के अभिन्न अंग होते है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि काव्य-शिल्प, काव्य की रचना प्रक्रिया अथवा अभिव्यक्ति कौशल का ही दूसरा नाम है।

इससे तात्पर्य यह है कि कविता लिखते हुए जिन विभिन्न तथ्यों और अनुभव खंडों का उपयोग रचनाकार करता है उन तथ्यों और अनुभव खंडों को उस कविता में वह किस तरह नियोजित करे कि वे तथ्य और अनुभव खंड संवेदना के स्तर पर सर्जनात्मक हो जायें, यह नियोजन ही शिल्प है।" [6]

*रघुवीर सहाय के शिल्पविधान को हम इस प्रकार देख सकते हैं। डा० नामवार सिंह का एक मत इस प्रकार है। "यदि नयी कविता को कविता के रूप में जांचना परखना है तो काव्यानुभूति की इस बदली हुई बनावट को ध्यान में रखकर ही कविता की परिभाषा करनी पड़ेगी।" उन्होंने मार्डी के मत को उद्धृत करते हुए स्वीकार किया है कि

समूची नई कविता के मूल्यांकन हेतु कविता के नये प्रतिमान आवश्यक हैं।[7]

नयी कविता की सृजन-प्रेरणा रचना प्रक्रिया का स्वरूप इतना वैविध्य पूर्ण है कि उसकी शिल्प विधि का मानक रूप अपवाद भी सुप्रतिष्ठित नहीं हो पाता है।

उनका शिल्प विधान --

(1) उनकी कविताओं की संरचना - मुक्त कवितायें
(2) रघुवीर सहाय की कविताओं की भाषा
(3) रघुवीर सहाय की कविताओं में बिम्ब एवं प्रतीक
(4) रघुवीर सहाय की कविताओं में अलंकार
(5) रघुवीर सहाय की कविताओं में छन्द

रघुवीर सहाय के कविताओं की संरचना :-

काव्य में संरचना का एक विशिष्ट अर्थ है। यह समग्र साहित्यिक इकाई के आवयविक सम्बन्धों के रूप में स्वीकार किया जाता है।[8]

निराला जी ने संरचना के अवायविक एकता के सिद्धान्त को समझाते हुए लिखा है कि फूल का कलावाला रूप मिलाइये। तने से डाल भिन्न होकर भी जुड़ी है, इसी तरह डालों से पत्ते, पत्तों से फूल, फूलों से झुलू। झुलू अपने तत्व में सारे पेड़ दबे हुए है। तने का रूखापन, डालों की थोड़ी-थोड़ी हरियाली, पत्तों की पूरी, फूलों का एक या अनेक रंगो-केसर पराग आदि से विकसित रूप, सुगंध सारे

पेड़ के उच्चतम विकास को स्पष्ट करती हुई, उसी से टके हुए - येह कला है।" [9] संरचना कविता को समग्रता में देखती है। आधुनिकता भी समग्रता बोध है। कविता की रचना को हम तार्किक ढांचे के रूप में भी समझ सकते हैं।

अरस्तू ने सम्पूर्ण कविता को समझाते हुए कहा है कि कविता की समग्रता में प्रारम्भ, मध्य और अन्त होता है। प्रारम्भ वह है जो अनिवार्यतः किसी के बाद प्रारम्भ नहीं होता, यद्यपि कुछ अन्य का अस्तित्व हो सकता है। और अन्त इसके विपरीत किसी के अनुगमन से होता है। इसका अनुगमन नहीं होता। मध्य उसे कहते हैं जो किसी किसी का अनुगामी होता है और जिसका अनुगमन किया जाता है अतः किसी रचना का प्रारम्भ या अन्त अव्यवस्थित नहीं होता समग्र रचना में औचित्य का निर्वाह अनिवार्य है।" [10]

संरचना का अर्थ :-

संरचना कविता को उसकी समग्रता में उसके आन्तरिक एवं बाह्य अवयविक स्वरूप का विश्लेषण तथा मूल्यांकन करता है। कविता के रसास्वादन का यह तरीका वैसे से बहुत ही प्राचीन ह, लेकिन यह आज भी आधुनिक सिद्धान्त बना हुआ है। आधुनिकता समग्रता पर भी अधिक बल देती है तथा संरचना भी रचना को समग्रता में देखने का आग्रह करती है। आज हिन्दी साहित्य में मूल्यांकन की दिशा में अराजकता कि स्थिति दिखाई पड़ती है। इस दिशा की ओर डा० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने इशारा करते हुए कहा है कि "नये साहित्य के मूल्यांकन को लेकर जैसी दलगत संकीर्णता है, उससे साधारण पाठक ही क्या बड़े सुलझे हुए आलोचक भी चक्कर खा जाते हैं।"

संरचना शब्द से हमें यह भ्रम हो सकता है कि वह कविता की मात्र लयात्मक आकृति की व्याख्या तक ही सीमित है। निश्चय ही संरचना का तात्पर्य "ढांचा" से नहीं होता। कविता में निहित समस्त तत्वों

का समावेश संरचना से ही होता है। संरचना के अन्तर्गत तत्वों की प्रकृति एवं क्रमादर्श की व्याख्या एवं व्याख्या होती है। कविता की संरचना को महाकाव्य के रचना विधान से स्पष्ट नहीं किया जा सकता। लेकिन यह संरचना के रूप के निकट अवश्य ही पहुँच जाता है। क्लिंथ ब्रुक्स ने कहा है कि "संरचना का अर्थ है अर्थ मूल्यांकन तथा व्याख्या की संरचना और अभिधेयार्थ, वृत्तियां, अंग विन्यास तथा अर्थ में संतुलन एवं समस्वरता को स्थापित करने वाला ऐक्य का सिद्धान्त।"[11]

संरचना मात्र भाषा वैज्ञानिक अध्ययन नहीं है। संरचना में कविता की लय, बिम्ब, प्रतीक अप्रस्तुत विधान संश्लिष्ट होता है। भाषा कविता का प्रमुख अंग है, जिसके माध्यम माध्यम से काव्य-सौन्दर्य का सर्जन किया जाता है। मगर कविता का सौन्दर्य उसकी सम्पूर्णता में अन्तर्निहित होता है। सौन्दर्य सम्पूर्ण आकृति का प्रभाव है, जिसका निर्माण उसके भीतरी तत्वों से होता है जो अत्याधिक सुन्दर या असुन्दर आकर्षक या अनाकर्षक होता है। इसलिए जब तक आकृति के बुनियादी तत्वों का मूल्यांकन नहीं होगा, तब तक कविता मात्र सुन्दर तत्वों का गुलदस्ता ही रहेगी।

कविता का संरचना संदर्भ मात्र कविता तक ही सीमित नहीं होता बल्कि वह कविता से बाहर भी कुछ अतिरिक्त संदर्भित करता है। कविता की संरचना, स्थापत्य कला एवं चित्र कला के समान ही है। कविता और नाटक की संरचना में साम्य होता है । कविता की संरचना को समझने में नाटक का विश्लेषण सहायक होता है। कई पाठक कविता का नाटक के ढंग से ही अनुशीलन करते हैं। कवि प्रत्येक सम्पूर्ण कविता में अनुभव से साक्षात्कार करता है। वह मात्र तार्किक निष्कर्षों की स्थापना

नहीं करता। एकत्व तार्किकता से नहीं वरन नाटकीयता से निर्मित होता है, इसलिए प्रत्येक उपकरण का समग्र संदर्भ में नियोजन निर्णायक है तथा कविता की प्रभावशाली एवं आवश्यक संरचना उपलब्ध संश्लिष्ट अंग विन्यास ही है। इसलिए संरचना एक वृत्ति या अंग विन्यास ही है जो महाकाव्य और सामान्य कविता में अनिवार्य रूप से विश्लेषित करती है।

डा० नरेन्द्र मोहन की धारणा है कि "लम्बी कविता के रचना विधान या अनिवार्य लक्षण है नाटकीयता। इसके बिना आज के जीवन की अन्तर्विरोधों भरी स्थितियां उजागर नहीं हो सकती। स्थितियों के पीछे की स्थितियों, व्यवहारों, मानसिक- आत्मिक क्रिया कलापों को अभिव्यक्त करने के लिए नाटकीय विधान लम्बी कविता की संरचना माना जा सकता है। कार्यों और व्यापारों को नाटकीय विधान में प्रस्तुत करके स्थितियों के अन्तर्विरोधों का बोध जगाया जा सकता है। इसमें नाटकीय संवादों की योजना विशेष कारगर हो सकती है। लम्बी कविता की संरचना में जिस गहरे कलात्मक संयम की आवश्यकता है। वह भी नाटकीय विधान द्वारा प्रभावी तौर पर सम्पन्न हो सकता है।"[12] परन्तु कविता और नाटक में तात्विक अन्तर है। इसलिए नाटक के अनिवार्य गुण को कविता का अनिवार्य अंग समझना एक भ्रान्तिपूर्ण होगा।

<u>संरचना और काव्य भाषा :-</u>

अल्डुअस हक्सले स्वीकार करते हैं कि साहित्यिक अभिव्यक्ति में सामान्य भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता। अतः साहित्य की भाषा सामान्य भाषा से निश्चित ही विशिष्ट होगी।[13] कथ्य के सम्प्रेषण के लिए भी सामान्य भाषा अपर्याप्त होती है। इसलिए कविता की भाषा सामान्य से भिन्न होती है और कवि भाषा के विविध प्रयोग करने के लिए मुक्त है जिससे वह कवित्व में सुन्दरता का निर्माण करता है।[14] काव्य भाषा शब्दों के रूप को बार-बार

अमूर्त करती है। कवि अर्थ की स्थलता को तोड़कर उसकी अमूर्त और उन्मुक्त प्रकृति को पुनः स्थापित करता है।

कविता में "शब्द" अपने स्थूल अर्थ के साथ ही सांकेतिक अर्थ देने में समर्थ होते हैं अर्थात कविता में शब्द की प्रतीकात्मकता को विस्तार मिलता है, जबकि, सामान्य भाषा में उसका स्थिर या स्थूल अर्थ ही लिया जाता है और कभी - कभी एक ही स्थान पर विभिन्न अर्थान्तर देकर कविता में गुरुत्व पैदा कर देता है। इसीलिए काव्य भाषा को सामान्य और बातचीत की भाषा से अलग एक ऐसी भाषा कहा जाता है, जो अनुभूति के स्वरूप को अभिव्यक्त और स्पष्ट करती है। काव्य भाषा में अनुभूति के सम्प्रेषण की विशिष्ठता होती है।[15] कवि शब्दों का चयन, संयोजन, प्रयोग हमेशा विशिष्ट संदर्भ और अर्थ में करता है। शब्द के सम्बन्ध में यह प्रश्न उठाना कि वह सुन्दर है अथवा नहीं, तब तक निरर्थक है, जब तक हम पूरी तरह यह न जान लें कि विभिन्न स्थितियों में वह क्या रूप ग्रहण करेगा। भाषा के सौन्दर्य-शास्त्र में यह बुनियादी और महत्वपूर्ण बात है।[16] कविता की भाषा और गद्य की भाषा में एक अन्तर सहज ही होता है जो कविता के रूप विधान का मूल हैं। इसलिए कविता की भाषा और विज्ञान की भाषा और लोक व्यवहार की भाषा से अलग होती है, लेकिन इस भिन्नता के बावजूद भी कविता की प्रवृत्ति लोक भाषा से चिपके रहने की होती है। साहित्यिक भाषा मूलतः बोलचाल की भाषा होती है। जो विभिन्न रचनाकारों की सर्जन प्रक्रिया में समाहित होकर अपने स्वरूप को बदलती है। कवि के अनुभव की अद्वितीयता से सम्पृक्त होने पर उसकी अर्थक्षमता में कई प्रकार के अन्तर उत्पन्न हो जाते हैं। "भाषा

"लक्षणा और व्यंजना का जैसा चमत्कार कविता में होता है वैसा गद्य में नहीं होता । गद्य में कथ्य का वर्णन, विवेचन और विश्लेषण करने की प्रवृत्ति होता है यानी शब्द का प्रायः वाचक और निर्दिष्ट अर्थ ही गृहीत किया जाता है। व्यंजना गर्भित और लाक्षणिक भाषा काव्य सर्जन का आधार भूत साधन है। पाठकों को शब्दों के वाचक एवं कोशगत अर्थों की जानकारी तो रहती है, मगर उन्हें शब्दों के व्यंजक अर्थों के प्रति जागरूक रहना चाहिए।[17] काव्य भाषा सामान्य भाषा की तरह न तो एक अर्थ देने वाली होती है और न ही गणित की तरह निश्चित अर्थ देने वाली । उसमें एक व्यापक अर्थ देने की क्षमता निहित होती है। सामान्य भाषा वस्तुपरक और सपाट होती है जबकि काव्य भाषा व्यक्तिपरक होती है।

"काव्य भाषा का कवि के व्यक्तित्व से बहुत गहरा सम्बन्ध होता है। यह कवि के व्यक्तित्व और भाव के अनुरूप ही बदलती है।"[18] यदि काव्य में सरल भाषा का सर्जनात्मक उपयोग नहीं होता तो वह जीवन की जटिलता, उलझे हुए यथार्थ, गहन आन्तरिक उद्वेलन और बहु आयामी परिवर्तन को व्यक्त करने में असमर्थ हो जाती है। सही भाषा की तलाश के लिए रचनाकार को अपने चारों ओर की दुनिया और अपने भीतर की दुनिया को देखना होगा और उस जिंदगी का सीधा साक्षात्कार करना, होगा, जिसका वर्णन वह करना चाहता है।[19] किसी भी कविता की कल्पना हम बिना भाषा के नहीं कर सकते और संरचनात्मक विश्लेषण काव्य भाषा के अनुशीलन के बिना पूरा नहीं हो सकता ।

साठोत्तरी कवियों ने प्रयोगवादी या नयी कवितावादी कवियों की अलंकृत भाषा या कृत्रिम भाषा को पूरी तरह छोड़कर बोलचाल की

भाषा का प्रयोग किया है। "दूसरे सप्तक" में रघुवीर सहाय की एक कविता --

और कभी जब कभी गौरैया सा मन
घर के आंगन में खेलने को हुआ
मैंने थामा था उसे वह के बचपन न करो
बाग में धूप खाते-खाते जैसे में गरमाकर
उठके भागा मैं बरम्दे में चला आया हूं
अपने में लौट गया था मेरा मन ऐसे। [20]

रघुवीर सहाय ने हिन्दी की बोलचाल नागर भाषा अपने समर्थ प्रवाह में व्याकरणिक वाक्य संरचना की हमेशा कायल नहीं होती। विशेषकर बातचीत के सिलसिले में किया पद अन्त में ही आये यह कोई जरूरी नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि जब वह अपने पूरे प्रभाव में आती है तो कुछ शब्दों अथवा पदों की आवृत्ति, कुछ अनकहा रख देना का कौशल आदि उसके अनजाने में ही समयोजित होता चलता है इस कविता में उनके बोलचाल के शब्द ही नहीं है बल्कि उसकी संरचनात्मक सारी विशेषतायें भी हैं। इसी प्रकार की उनकी एक कविता और इस प्रकार है- जैसे-

"तु जानों" में --

हमने तो भाई अपने दिल की है बताई
अब तुम्हारे मन की तो तुम्हारा राम जाने
अब तुम जानों तुम्हारा काम जाने [21]

साठोत्तरी कविता के दौर में रघुवीर सहाय की कविताओं की भाषा, संवेदना और शिल्प के स्तर पर गुणात्मक अन्तर दिखाई पड़ता है। साठोत्तरी कविता में रचनात्मक स्तर और रसास्वादन या आलोचना के स्तर पर संरचना पर अल्पतम ध्यान दिया है। इसकी खास वजह यह थी कि साठोत्तरी कविता का विस्फोट अक्सर घोषणाओं के आधार पर रहा। काव्य सर्जकों एवं आलोचकों के विभिन्न गुटों का निर्माण हो गया, फलस्वरूप विशिष्ट आलोचक के लिए विशिष्ट गुट का कवि ही वरणीय रह गया, शेष सब अछूत हो गये। इस प्रकार कोई मूल्य शेष नहीं रहे। मूल्यों के इस संकट में भी वरिष्ठ रचनाकार रघुवीर सहाय के काव्य के संरचनात्मक स्वरूप को बनाये रखा है। जैसे रघुवीर सहाय की कविता - हँसो हँसो जल्दी हंसो।

हँसो - तुम पर निगाह रखी जा रही है
हंसो अपने पर न हंसना क्योंकि उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो कि बहुत खुश मालूम न हो
वरना शक होगा कि वह शख्स शर्म में शामिल नहीं
और मोर जाओगे।[22]

मुक्तक कवितायें :-

रघुवीर सहाय की सबसे पहली मुक्त छन्द की कविता "- नयावर्ष" है जिसको उन्होंने एक जनवरी 1948 में लिखी थी। जैसे --

आज धरा ने एक बार सूरज का फेरा लगा लिया है
आज शेष हो गया वर्ष भर समय कि जिसमें
धरा और सुन्दर बन सकती थी पल पल में [23]

30 अगस्त 1947 को उन्होंने एक कविता लिखी थी "जिज्ञासा"। कविता का कथ्य इस तरह का है कि अभिव्यक्ति के दौरान छंद का परम्परित रूप टूटने लगता है। कवि ने अपनी आरम्भिक डायरी में इस कविता की बगल में हाशिए पर एक तरफ एक टिप्पणी लिखी है कि इस कविता को पढ़कर माथुर ने कहा था कि "तुम मुक्त छन्द जल्दी ही लिखोगे।

आधुनिक काल में मुक्तक कविता का सबसे प्रमुख रूप गीत और प्रगीत है। "गीत और प्रगीत दोनों की सामान्य विशेषता गेयता है। किन्तु दोनों में अन्तर वस्तुपरकता और आत्मपरकता का है। गीत और प्रगीत दोनों का रूपात्मक विकास छायावाद के आगमन के साथ ही हुआ"। [24]

रघुवीर सहाय की एक रचना गीत इस प्रकार है। जैसे –

एक रंग होता है नीला
और एक वह जो तेरी देह पर नीला होता है
इसी तरह लाल भी लाल नहीं है
बल्कि एक शरीर के रंग पर एक रंग
दरअसल कोई रंग कोई रंग नहीं है
सिर्फ तेरे कंधों की रोशनी है
और कोई एक रंग जो तेरी बांह पर पड़ा हुआ है। [25]

गिरिजा कुमार माथुर ने इसे शुद्ध गीत इसलिये माना है कि "ऐसी रचनाओं की संक्षेप शैली, आत्मनिवेदन, अन्तरंग भंगिमा, भाषान्विति, शब्दों का क्रम तथा ध्वनि सामंजस्य गीत के ही अनुरूप है।" [26]

उनकी कुछ मुक्तक कवितायें दूसरा सप्तक में भी हैं जैसे --पहला

(खण्ड - ख)

रघुवीर सहाय की कविताओं की भाषा :-

भाषा का उपयोग मात्र साहित्य रचना के लिए ही नहीं किया जाता, बल्कि वह जीवन के विविध क्षेत्रों में क्षण-प्रतिक्षण के उपयोग में आती है। सामान्य बातचीत से लेकर वैज्ञानिक रपट, व्यवसायिक और राजनीतिक बहस आदि तमाम दुनिया के कारोबार में भाषा का प्रयोग किया जाता है। सामान्य भाषा की वह आकृति, वह संरचना जो काव्य बन गई है काव्य भाषा कहलाती है। काव्य भाषा, सामान्य भाषा से उसी प्रकार अलग है जैसे लहर से जल भिन्न है। इसी प्रकार इस तरह काव्य भाषा, सामान्य भाषा के भीतर एक भाषा है। हिन्दी में एक सूक्ष्म अर्थ में भी "काव्य भाषा" का प्रयोग हो रहा है।[27] लयात्मक घनत्व की दृष्टि से काव्य भाषा श्रेष्ठ और लोकभाषा निकृष्ट होती है, और गद्य भाषा इन दोनों के मध्य पड़ती है।[28]

रघुवीर सहाय के संकलन "सीढ़ियों पर धूप में" की भूमिका में श्री सच्चिदानंद वात्स्यायन "अज्ञेय" ने लिखा है कि "काव्य जो भी गुण बताये या बताये जा सकते हैं, अन्ततोगत्वा भाषा के ही गुण हैं"।[29] इस धारणा की अभिव्यक्ति भी कवि ने "तार सप्तक" के द्वितीय संस्करण के कवि वक्तव्य "पुनश्च" में इस प्रकार हुई है - "काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं। शब्द का ज्ञान-शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृति बनाती है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं। इतना ही नहीं सारे सामाजिक संदर्भ में भी यहीं से निकलते हैं। इसी में युग सम्पृक्ति और कृतिकार के सामाजिक उत्तरदायित्व का हल मिलता है।

या मिल सकता है।"[30] सामान्यतः काव्य भाषा का लक्ष्य सामान्य भाषा से भिन्न होता है। "काव्य भाषा का लक्ष्य तथ्यात्मक सूचना देना, दार्शनिक या वैज्ञानिक प्रक्रियाओं, निष्कर्षों एवं विचारों का कहना या दैनिक जीवन के क्रिया कलाप को चलाना नहीं होता है, बल्कि कवि की सौन्दर्यतात्त्विक अनुभूतियों को इस प्रकार अभिव्यक्त करना होता है कि श्रोता या पाठक में भी वह अभिव्यक्ति सौन्दर्यतात्त्विक अनुभूति को जागृति कर सके।"[31] विचारात्मक या उपयोग गद्य की भाषा बोलचाल की भाषा के निकट होती है और कविता की भाषा उसके ऊपर उठकर विशिष्ठ अर्थ देने वाली तथा प्रायः बिम्बात्मक होती है। काव्य भाषा सामान्य भाषा की तरह न तो एक अर्थ देने वाली अभिधात्मक भाषा होती है और न गणित की भाषा की तरह निश्चित अर्थ देने वाली । उसमें एक व्यापक अर्थ देने की क्षमता होती है। वह तीव्रतम और सूक्ष्मतम अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में समर्थ होती है। सामान्य भाषा नया वस्तुपरक और सपाट होती है, जबकि काव्य भाषा व्यक्तिपरक होती है। काव्य भाषा तथ्य कथन से आगे बढ़कर सौन्दर्य की सृष्टि करती है। उसमें व्यंग्यार्थ की प्रतिष्ठा होती है।[32]

कविता की भाषा निश्चय ही अन्य भाषा उपयोग से अलग है। साहित्य के संदर्भ में आमतौर पर गद्य और पद्य का अन्तर किया जाता है। काव्य भाषा में अतिरिक्त सजीवता, घनत्व प्राणवत्ता का बोध का होता है, साथ ही कविता की सहज आत्मीयता भी आकर्षित करती है । इसलिए, जब किसी गद्यांश में "काव्य भाषा" का आभास होता है तो गद्य रूप में भी उसकी सहजता और सरलता की प्रशंसा की जाती है। कवि भाषा का जितना सार्थक और सजीव उपयोग करता है एवं अपनी रचना-प्रक्रिया के दौरान एक शब्द को अपने संयोजन से न मात्र किसी सौंदर्य की रचना करता है, बल्कि शब्दों में अर्थों का घनत्व भी उत्पन्न करता है। अर्थों के

घनत्व और प्रतीकात्मकता से कथ्य सहज सम्प्रेषित होता है।

क्रिस्टोफर काडवेल ने कविता का अनुवाद कठिन माना है। उसकी धारणा है कि लय का पुनर्सृजन किया जा सकता है। "तथ्य" का सटीक अनुवाद किया जा सकता है, लेकिन काव्यात्मक संवेग का अनुवाद नहीं हो सकता। [33] कविता में "काव्य भाषा" ही वह तत्व है जिसके फल स्वरूप कविता का अनुवाद करना कठिन होता है। कवि अपनी रचना-प्रक्रिया से नूतनता का अनुसंधान करता है। वह अपने प्रत्येक सर्जन में सबसे अलग और अपनी पहली रचनाओं से भिन्न होता है। कवि अपनी रचना प्रक्रिया में अपने को न दोहराता है और न अपने पूर्वजों का अनुसरण करता है। वह अपने शब्दों के संयोजन में भी सर्वदा नवीनता का उद्घोष करता है। इसलिए कविता कवि का आत्मीय रूप होता है। कविता की ताजगी को हम भाषा के प्रयोग में ही देख सकते हैं। औक्टोविओ पाज ने गद्य और पद्य में अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा है कि गद्य भाषा की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को अस्वीकार करने वाला एक शिथिल प्रकार है। कविता निर्देशक्षणों की वस्तु है। यह मानवता की अभिव्यक्ति का स्वाभाविक रूप है। कविता के बिना कोई व्यक्ति कुछ नहीं है, मगर "गद्य" के बिना कुछ है। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि गद्य समाज में अनर्निहित अभिव्यक्ति रूप नहीं है, जबकि किसी समाज का अस्तित्व, गीत, मिथक तथा अन्य काव्यात्मक अभिव्यक्तियों के बिना सम्भव नहीं है। [34] उनकी यह स्थापना भाषा का स्वाभाविक रूप लयात्मक काव्यभाषा है।

कवि भाषा और सामान्य जन् भाषा में अन्तर प्रयोग और गुण का होता है। वैसे कवि की भाषा उत्कृष्टतम प्रयोग होता है, जबकि सामान्य जन की भाषा गद्य भाषा की तरह सपाट होती है। कवि अपने शब्दों को विशिष्टता प्रदान करता है और उसके अर्थों को सघनता देता

कवि की भाषा परम्परा से प्राप्त होती है और शब्द भी प्रत्येक युग काल में अपनी विशिष्टता के साथ उपस्थित रहता है। भाषा और शब्द पर किसी कवि या व्यक्ति का एकाधिकार नहीं होता, बल्कि उसे कवि अपने प्रयोग के शब्दों को निजता प्रदान करता है। इसी प्रकार एक कवि की काव्य भाषा अन्य कवियों की काव्य भाषा से भिन्न होती है।

डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी "भाषा और संवेदना" नामक पुस्तक में लिखते है कि वस्तुतः तो काव्य भाषा के तत्व का सम्यक् विश्लेषण आधुनिक काल के समीक्षकों द्वारा प्रमुख रूप से होना चाहिए था, क्योंकि काव्य भाषा का प्रयोग उनकी व्याख्या और निर्णय के लिए एक सुनिश्चित और तटस्थ आधार हो सकता है जिसमें समीक्षक के अपने पूर्वग्रह और व्यक्तिगत रूचि के अनपेक्षित तत्व कम से कम मात्रा में रह जाते हैं। रचना की उत्कृष्टता कीयह कसौटी सबसे अधिक विश्वसनीय और "आब्जेक्टिव" होगी। आज की कविता को जांचने के लिए, जो अब सचमुच "प्रास के रजन पाश" से मुक्त हो चुकी है, अलंकारों की उपयोगिता अस्वीकार कर चुकी है, और छंदों की पायलें उतार चुकी है, काव्य भाषा का प्रतिमान शेष रह गया है, क्योंकि कविता के संघटन में भाषा प्रयोग की मूल और केन्द्रीय स्थिति है --" कविता उत्कृष्टतम शब्दों का उत्कृष्टतम क्रम है।" परन्तु प्राचीन काव्य की समीक्षा भी इस प्रतिमान के आधार पर निश्चय ही अधिक संतुलित ढंग से की जाती है।" [35] नयी कविता के युग में आज जब कविता के सभी परम्परागत भेदक लक्षण, तुक, छन्द अलंकरण, लय धीरे-धीरे विलुप्त होते चले जा रहे हैं तो काव्य भाषा वह अन्तिम और सार्वाधिक महत्वपूर्ण आधार शेष रह जाता है। जिसके द्वारा कविता के आन्तरिक संघटन को समझने कीचेष्टा हो सकती है। डा० देवराज ने 1965 में "माध्यम" में काव्यभाषा" पर विचार करते हुए लिखा है कि "लेखक का पूरा-पूरा

विश्वास नहीं है कि उसके द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली कसौटी सार्वकालिक व सार्वभौम है। यह हिचक या संकोच संकल्पित सामन्य कथन की वस्तुपरक वैज्ञानिकता व सार्वभौमता के दावे के लिए सहायक नहीं है।" [36]

अज्ञेय जी कहते हैं कि "काव्य के जो भी गुण बताये जाते या बतायें जा सकते हैं, अन्ततोगत्वा भाषा के ही गुण हैं।" [37] अज्ञेय जी ने एक दूसरे कथन में कहा है कि भाषा का सौन्दर्य या सौष्ठव भाव के सौन्दर्य या वस्तु के सुनाव पर अधिक निर्भर है।" [38] डा० नामवर सिंह का मत है कि "काव्यभाषा" की कसौटी पर काव्यात्मक भाषा और काव्यात्मकता भाषा के बीच भेद करना सम्भव है जिससे वास्तविक काव्य को छद्म काव्य से अलग करने में मदद मिलती है।" [39]

डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी मूल्यांकन के प्रतिमान के रूप में जिस "काव्य भाषा" को तटस्थ और वस्तुनिष्ठ मानते हैं उसी को कवि पक्ष के नितान्त वैयक्तिक और अद्वितीय भी मानते हैं। उन्हीं के शब्दों के अनुसार "विशिष्टीकरण से ही रचनाकार की अनुभूति की अद्वितीयता गृहीत और व्यक्त होकर पाती है। प्रतीक का मूल तत्व यही है कि उसके माध्यम से किसी शब्द के सम्पूर्ण और चरम अर्थ के स्थान पर उसके माध्यम से किसी शब्द के सम्पूर्ण और चरम अर्थ के स्थान पर उसके इच्छित आंशिक अर्थ को कवि एक वैयक्तिक संगति प्रदान करता है।" [40]

भाषा से सम्बन्धित खोज की छटपटाहट का एक पहलू है जो "रघुवीर सहाय" की कविता "फिल्म के बाद चीख" की इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है – जैसे

न सही यह कविता
यह मेरे हाथ की छटपटाहट सही
यह कि मैं घोर उजाले में खोजता हूं
आग
जबकि हर अभिव्यक्ति
व्यक्ति नहीं
अभिव्यक्ति
जली हुई लकड़ी है न कोयला न राख [41]

यहां पर भाषा की खोज "आग" की खोज में बदल गई है और कविता हाथ की छटपटाहट बन गई है। इसलिए साठोत्तरी कविता में रघुवीर सहाय ने कविता को अपने ढंग से समझने की कोशिश की है। उनकी "नया शब्द" कविता काव्य सत्य को काव्यात्मक रूप प्रदान करती है।

कोई और कोई ओर - कोई ओर-और अब भाषा नहीं
शब्द, अब भी चाहता हूं
पर वह कि जो जाये वहां वहां होता हुआ
तुम तक पहुंचे
चीजों के आरपार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ
एक अर्थ दे
मुझे दे। देता रहा है जैसे छन्द केवल छन्द
घुमड़ घुमड़, कर भाषा का भास देता हुआ
मुझको उतारकर निःशब्द देता हुआ। [42]

इन पंक्तियों में काव्य सृजन की व्यक्तिगत क्रिया का बोध होता है और दो अर्थ मिलकर सिर्फ एक स्वच्छन्द अर्थ दे, काव्य के अप्रस्तुत विधान यानी रूपक तत्व की ओर संकेत कर रहे हैं। लेकिन नामवर सिंह इसे "संकेत किसी नये अनुभव की ओर है, कहते है जो भ्रामक है।[43]

गद्यात्मकता :-

साठोत्तरी कविता भाषा के स्तर पर अराजकता का शिकार रही है । गद्यात्मक अंशों को भी कविता, बल्कि श्रेष्ठ कविता के रूप में शोभित किया गया है। रघुवीर सहाय की एक कविता "पहचानना" में गद्यात्मकता है — जैसे —

> एकाएक किसी चेहरे को देखकर मुझे जब लगता है कि यह वही है
> तब थोड़ी देर में गौर से देखकर जान पाता है वह नहीं है
> दोनों की यह तुलना ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन दे जाती है
> हथियार मुझसे यह छीन नहीं सकता [44]

बहुत सपाटे के साथ हम इन शब्दों को पढ़ नहीं सकते । कामा, अर्धविराम, या पूर्णविराम भी यहां नहीं, जो बाहर से कुछ अंकुश लगाये। अगर तेजी से पढ़ जाये तो लगेगा कि यह कैसा वाक्य है। न तो अर्थ ठीक-ठीक पकड़ में आयेगा और न उसका कोई सौन्दर्य ही खुलेगा । तब हम देखेंगे कि उसका ऐसा लिखा जाना कोई काव्य चातुर्य ही है।

नाटकीयता :-

सपाटबयानी - विडम्बना बोध :-

रघुवीर सहाय ने भाषा में जो प्रत्यक्षता, विडम्बना बोध का नाटकीय तनाव और बोलचाल की मुद्रा में रची जाने वाली वक्रता पैदा

की थी उसे अशोक वाजपेयी ने "सपाटबयानी" कहा जो। बाद में इस प्रकार की बिम्ब बहुलता से मुक्त समस्या का सीधे "साक्षात्कार" करने वाली बोलचाल की भाषा के लिए रूढ़ हो गया। रघुवीर सहाय की भाषा ऊपरी तौर पर बहुत सीधी -साधी लगती है, पर उसकी ताकत उसमें निहित अनुभव का नाटकीय तनाव और दैनंदिन जीवन से उसे ऐसे अनौपचारिक संदर्भ है जो कला की बद्धमूल धारणा पर आघात करते हैं --जैसे

> एक दिन
> चिड़चिड़े बच्चों को लिए दवाखाने में खड़े-खड़े
> मुझे एकाएक लगा कि मैं अधेड़ हो गया
> न गलाबंद कोट
> न दुपट्टा
> न टोपी
> मैं बड़ा हुआ हा हा हू हू करता हुआ " [45]

यहां पर भाषा देखने में बडी सीधी, सपाट और कलात्मक गुणों से रहित लगती है पर इसके नीचे अनुभव की वक्रता ही व्यंजित होती है। चिड़-चिडे बच्चों को लिए अधेड़ होने की प्रक्रिया को "गलाबंद कोट" "दुपट्टा" और" टोपी" के साथ जोड़कर जिन भाव दशाओं से जोडा गया है उसके मूल में मध्यवर्गीय जीवन के लगातार निरर्थक और विद्रूप होते जाने का दुःख है। इस दुःख को दुखवाद से बचाने के लिए कवि बाहरी तौर पर एक अगंभीरता को ओढ़ता है और मैं बडा हुआ हा हा हू हू करता हुआ-- जैसी हल्की-फुल्की कविता लिखता है। इस भाषा में एक साथ व्यंग्य है

और करूणा भी है। दो विपरीत भाव की स्थितियों से जो नाटकीय तनाव पैदा हुआ है वही इस सपाटबयानी को औसत गद्य की भाषा से अलग कर देता है। रघुवीर सहाय की इस भाषा में जो अनुभव बनता है, वह शब्दों में नहीं, बल्कि रचना की समग्रता में बनता है, जिसे नामवर सिंह ने "क्रिस्टल अनुभव" कहा है। " इसमें संश्लिष्ट व्यंग्य, क्रीड़ा, कौतुक आदि अलग से चमकने वाली भंगिमाएं नहीं बल्कि रचना के भीतर से शक्ति और जीवन्तता देने वाली वस्तुएं हैं।" [46]

रघुवीर सहाय की कविताओं में विडम्बना बोध भी मिलता है उसमें माचवे व भारतभूषण अग्रवाल के समान हलका फुल्का हास्य नहीं बल्कि स्थितियों से उपजी करूणा का भाव अधिक है जैसे "हमारी हिन्दी" कविता में --

घर में सब कुछ है जो औरतों को चाहिए
सीलन और अन्दर की कोठरी में पांच सेर सोना भी
और सन्तान भी जिसका जिगर बढ़ गया है
जिसे वह मासिक पत्रिकाओं पर हगाया करती है
और जमीन भी जिस पर हिन्दी भवन बनेगा। [47]

इस कविता में निम्न मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बनात्मक स्थितियों को इस प्रकार से देखा गया है कि जिसमें व्यंग्य तो है लेकिन इन स्थितियों में जीने की एक करूण विवशता और दैन्य भी है। यह दृष्टि समकालीन सामाजिक यथार्थ के समानान्तर एक रचनात्मक प्रतिसंसार खड़ा करती है

जिसमें हम अपने समय की सच्चाइयों की समूची विडम्बना और अन्तर्विरोधों को अधिक गहराइयों और संवेदनशीलता के अनुभव करते हैं--

"मुझे कुछ और कहना था
पर मैं कुछ और कर रहा हूं
मुझे कुछ और करना था इस
अधूरे समाज में मुझे
कुछ करना था, मकान मालिक के
वायदे के अलाव कुछ और मुझे करना था
इस ठसाठस भरे कमरे में हाथ में तश्तरी
लिये खड़े-खड़े खाते रहने के अतिरिक्त
रिक्त तश्तरी के अतिरिक्त-तोड़ना था।[48]

सपाटबयानी में रघुवीर सहाय ने पत्रकारिता की भाषा को कविता की भाषा बना दिया है। इस सपाट भाषा में जिस बल के साथ स्वाधीन भारत की राजनीतिक गतिविधि अपने नंगे रूप में सामने आई है, उतने बल के साथ ।. . उतने ही नंगे रूप में नयी कविता वाली विडम्बना रहित भाषा में सामने नहीं आ सकती थी। भाषा के नंगेपन का यह रूप रघुवीर सहाय में इस प्रकार दिखाया गया है। जैसे --

टूटते - टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जायेगा कि
बीस साल, धोखा दिया गया
वही मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोलाभाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्यवाही करेंगे

× × × ×

जितना बड़ा दल होगा उतना ही खायेगा देश को।[49]

यह "सपाटबयानी" भाषा के प्रति तात्कालिक सार्थकता की माँग के कारण भी पाई गई है । यह भी हो सकता है कि यही आंशिक सरलता भाषा के प्रति समूहवादी भी हो। कविता की सपाटबयानी को काव्यात्मक बनाने वाली दो चीजे है, एक नाटकीयता और दूसरी व्यंजकता।

व्यंग्यात्मकता :-

रघुवीर सहाय की कविताओं में व्यंग्य मुख्य तत्व है। जैसे "लुभाना" कविता में हास्य व्यंग्य है। "गिरीश की मृत्यु" और "हमारी हिन्दी" में भाषा पर गहरा व्यंग्य हुआ है। जैसे --

बड़ी किसी को लुभा रही थी
चालीस के ऊपर कीऔरत
घड़ी घड़ी खिलखिला रही थी
चालिस के ऊपर की औरत
खड़ी अगर होती वह थककर
चालिस के ऊपर की औरत
तो वह मुझको सुन्दर लगती
चालिस के ऊपर की औरत 50

लेकिन यह हास्य महज हास्य ही नहीं है क्योंकि स्त्री की सुन्दरता के लिए अपेक्षित जिस थकान की चर्चा कवि करता है, वह कवि की उस दृष्टि का परिचायक है, जो सौन्दर्य को निरपेक्ष नहीं मानता बल्कि उसे कर्म के बीच पाने की मांगकरता है।

..... 307

इसी तरह "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" संग्रह में .. नई टेकनिक में भी कविता लिखी गई है। जैसे तैरते होटल में मस्ती के आठ दिन यह विज्ञापन शैली की सशक्त कविता है। "राष्ट्रीय प्रतीक्षा तथा बाराबंकी आदि कवितायें खोखली घोषणाओं और नारों की भाषा को सर्जनात्मक बनाते हुए लिखी गई है।

रघुवीर सहाय की कुछ कवितायें स्वप्न शैली में भी लिखी गई है जैसे काबुल स्वप्न, गुलाम स्वप्न आदि । जिसमें आम आदमी की यातनामय जिन्दगी के चित्र है। इन कविताओं में जब कवि ऊपरी तौर पर निश्चित तर्क और तारतम्य से परे एक दूसरी घटना पर छलांग लगाते हैं तो स्वप्न शैली के बावजूद भी कविता अमर्तन का शिकार नहीं होती। इनकी कविताओं में स्वप्न तो है लेकिन एक कविता में अगर एक अनिश्चय की यातना से घिरे जीवन की विवशता को सामने लाती है ("काबुल स्वप्न") तो दूसरी कविता (गुलाम स्वप्न) एक गुलाम का स्वप्न है जो गुलामी की बेडियों में जकड़ा हुआ उन अपराधों के लिए ... अपने बच्चों के साथ सजा काट रहा है जो अपराध उसने कभी किये ही नहीं थे जैसे --

मुझे याद नहीं मेरा क्या हुआ
दोनों लड़कियों को जन्म कैद मिली
कई बरस बीत गये
बड़ी उसी खंडहर में बैठी थी
पर उसके चेहरे पर उम्र दिख रही थी
छोटी कहाँ है
जब मैंने पूछा
तो जाने किसने बताया कि वह अब नहीं है

वह भागी होगी
खिलखिलाती हुई
फिर अंत कहां कैसे हुआ होगा पता नहीं। [51]

रोमांटिकता :-

रघुवीर सहाय की प्रारम्भिक कविताओं में रोमांटिकता का पुट भी है लेकिन वे रोमांटिकता के नाम पर भदेस और नग्न सेक्स का वर्णन करते प्रतीत होते हैं --
जैसे --

"थक जाये तेरे कुच, मेरे सीने पर धक-धक करके फड़के।"
फिर रह जाये गुम्फित जंघाएं
हो जाये वह क्षण जीवन-मरण-विशाल, सखी [52]

यह नग्नता और विलासित का ही एक सूचक है। इसी प्रकार कवि प्रियतमा से वियोगापरान्त अपनी इस गलत शंका से दुखी हो उठता है, क्योंकि वह तो समझता था कि उसकी प्रेयसी भी विरह में उतनी ही दुखी रही होगी --
जैसे ---

"लो, मैं समझता था कि तुम भी कष्ट में होगी
तुम्हें भी ज्ञात होगा दर्द अपने अधूरे प्रेम का ।" [53]

इस प्रकार कहीं-कहीं रोमांटिकता का पुट दिखाई पड़ता है।

विसंगति :-

साठोत्तरी कविता में नये प्रकार की शाब्दिक खिलवाड" का प्रारम्भ हुआ है जिसमें अगंभीर गम्भीरता" और बेलागपन भी है और अत्यन्त प्राचीन चित्रकाव्य की पुनरावृत्ति भी।

रघुवीर सहाय की कविता " शराब के बाद का सवेरा" में आए हुए "मलबे के तले से एक हाथ छुडाकर उसे टोता है ट नहीं ट" को जब नयी कविता से पूरी सहानुभूति रखने वाले श्री नेमिचन्द्र जैन कोरा क्रीडा-कौतुक कह टाल देते हैं तो कविता के नये प्रतिमान के अन्तर्गत इस प्रकार के क्रीडा-कौतुक की स्थिति पर नये सिरे से विचार करना आवश्यक हो जाता है। "टोता हूं"। ट नहीं ट" क्या सचमुच ही शब्दों का खिलवाड भर है? "टोता हूं कहते ही अनुषंगवश याद आता है "टोता हूं" "ढोता" नहीं हूं। ट् नहीं ट" का जो "खिलवाड्" है।[54] उसका पूर्ण रूप से इस प्रकार देख सकते हैं। जैसे ---

जन्म के कितने दिनों बाद आई थी
वह मेरी मरी हुई मां।
जो महान मकान बना है पड़ोस में
वह मुझ पर गिर पड़ेगा
फिर मेरी गर्मियों की छुट्टियां हो जायेगीं।
मेरे अपने स्कूल के अन्दर से निकलकर
बचपन के आखिरी दिन
आयेंगे घर के कोने में
कहानियों की आलमारी की झाड़

और ठण्डा चिकना फर्श
मलबे के तले से एक हाथ छुड़ाकर
उसे टोता हूं। ट नहीं ट [55]

शराब के नशे में एक आदमी अपनी मरी हुई मां को याद करता है और उसको ऐसा महसूस होता है कि पड़ोस का "महान" मकान उसके ऊपर गिर पड़ेगा, वह एक खिलवाड की मनस्थिति में है। बचपन के आखिरी दिनों में वह शराब के नशे में धुत होकर पहुंच गया है । ऐसी स्थिति में यदि वह ककहरा सीखने वाले एक बच्चे की तरह "ट नही ट" कहता है तो इसमें असंगति कहां है ? क्या ऐसी स्थिति में ठंडा चिकना स्पर्श भुलाया जाने योग्य है ? कविता के पूरे संदर्भ में यह स्पष्ट हो जाता है कि खिलवाड़ मालूम होने वाली हरकत में एक गहरी विडम्बना भी है। उसी संदर्भ में रघुवीर सहाय ने इस प्रकार कहा है " जब घने कष्ट में मन गंभीर हो उठे, जब व्यथा में जो व्यंग्य है वह भी वहां हो - नहीं तो व्यथा ही वहां कैसे रहेगी। " [56] इस खिलवाड़ को हम रोमांटिक गम्भीरता मान सकते हैं।

रघुवीर सहाय ने भाषा के क्रीड़ा-कौशल का उपयोग अनेक रूपों में अत्यन्त सफलता के साथ किया है - जैसे

तुम उसका क्या करती हो मेरी लाड़ली
अपनी व्यथा के संकोच से मुक्त होकर
जब मैं तुम्हें प्यार करता हूं । [57]

यह "लाडली" शब्द का सम्बोधन पूरी कविता को और ही रंग दे देता है। लाड़ली शब्द एक मीठी सी अगम्भीरता के द्वारा प्यार में निहित अकेलेपन की व्यथा को बिजली की कौंध के समान पूरी तीव्रता के साथ

उद्भासित :.' भी कर दिया। इस संग्रह में बहुत सी छोटी-छोटी कवितायें हैं जिसमें क्रीड़ा-कौतुक दिखलाई पड़ता है। उनकी एक कविता नये अर्थों की ओर संकेत करती है --

बिल्ली रास्ता काट जाया करती है
प्यारी प्यारी औरतें हरदम बकबक करती रहती हैं
चांदनी रात को मैदान में खुले मवेशी आकर चरते हैं।

और प्रभु यह तुम्हारी दया नहीं तो और क्या है
कि इनमें आपस में कोई सम्बन्ध नहीं। 58

यहां पर बिल्ली, औरते, चांदनी रात और खुले मवेशी एक साथ आये हैं उनका कोई अर्थ नहीं? एक तरफ प्यारी-प्यारी औरतें दूसरी तरफ बकबक करती है, यह विरोध ही अकारण है? क्या इसके बाद भी औरते प्यारी रह जाती हैं, और अन्त में प्रभु की दया, दया ही है या और कुछ। इन सबमें हमारे सामने एक बात आती है कि इस कविता में कितनी अधिक बातों को संक्षेप में कवि ने कहा है। यहां क्रीडा-कौतुक में अर्थ चमत्कार के साथ ही शिल्प सिद्धि का सूचक है। इस प्रकार रघुवीर सहाय ने क्रीड़ा कौतुक का भी वर्णन किया है।

रघुवीर सहाय शिल्प के सम्बन्ध में कच्चे नहीं है इसमें शायद ही दो राय होंगी। फिर भी इस संग्रह की अनेक कविताओं में जब उन्होंने शिल्प की चिन्ता छोड़ दी है तो कुछ विशेष बाते सामने आती हैं। हमारा विचार है कि किसी भी कार्यक्रम में शिल्प का विधान अनिवार्य तौर पर काव्य संवेदना के रूप में निर्धारित होता है। वे नैतिक विकलता को बनाये रखने की बात अपनी कविताओं में बार-बार उठाते हैं वहां वे यह भी मानते हैं कि आज के समय में संवेदना की अभिव्यक्ति का भी एक "पैटर्न" बनता जा रहा है जो "कला" से इतना आक्रान्त है कि बुनियादी बेचैनी उसके नीचे दब जाती है और यह स्थिति कुल मिलाकर यथास्थितिवाद के पक्ष में ही जाती है--" 59

"कला बदल सकती है क्या समाज
नहीं, जहां बहुत कला होगी, परिवर्तन नहीं होगा।"[60]

इन्होंने अपने शिल्प को रूढ़ हो जाने की स्थिति का अतिक्रमण करने के लिए इन कविताओं में अपने अनुभव को एक हद तक "कलाहीन या शिल्पहीन" बनाया है।

उनकी भाषा में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का भी प्रयोग हुआ है। रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में, मुसद्दीलाल, मैकू, दिग्विजय नारायण सिंह, भोलारामदास, नरेन, विनोबा, जैनेन्द्र, मोरारजी देसाई।

"हँसो हँसो जल्दी हँसो" संग्रह में संकलित कविता "रामदास" में समाज के कमजोर वर्ग के निहत्थे व्यक्ति "रामदास" की हत्या और इस हत्या को घटते देखने वाले भद्रलोक की संवेदनशीलता की भयावह सच्चाई की नाटकीय व्यंजना है। कहीं कहीं पर रघुवीर सहाय की कविताओं में विचलन भी है। जैसे --

मेरे शब्द एक लहरियाता दोगाना बन
उकड़ूं बैठे लोगों पर भिनभिनाने लगे।[61]

मुख्यतः प्रथम प्रकार के सहयोग का जिसे हमने तर्कसंगत कहा है। यहां पर यह प्रयोग विचलन है।

शब्द विधान :-

उर्दू :-

खातिर, खत्म, वक्त, तकाजा, आखिर, फासला, तकलीफ, फिलहाल, नाकामी, खासतौर, करब, ताजगी, फासिला, जरूर, ज्यादातर, तारीफ, तकल्लुफ, खिदमत, कीमत, इस्तेमाल, दफ्तर, सिर्फ कागज, उम्दा, मस्जिद ,

तमाम, कत्ल, आजादी, अखबार, सफर, खत, माफ, फिलहाल, फुरसत, खबर, आजिजी, दरअसल, गलीज, गुसलखाने, बुजदिल, मसला, खतरनाक, दरख्वास्त, दर्जा, दफनाते, दिमाग, खुशामद, जख्मी, सलाम, खुद, जुर्म, अश्लील, कत्ल, सफेद, तकलीफ, शफाखाने, काबिल, फौरन, तकाजा, गुनाहगार, फुरसत, तारीफ दरअसल, कस्बे, जाहिर, महफिल, कब्रगाह आदि उर्दू के शब्दों का रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा में प्रयोग किया है।

अंग्रेजी :-

लैम्प, निब, पार्टी, पुलिस, फिल्म, पेंसिलें, टिकट, फर्श, फैक्टरी, ट्रांजिस्टर, ट्रक, पिस्तौल, अफसर, केन्द्रिय रिजर्व पुलिस, फैशन, टेलिविजन, फोटो, नम्बर, पोस्टकार्ड, बैंक, सेंसर, रेडियो, निगेटिव, कैंसर, फर्नीचर, कैमरा, ग्रामोफोन, रिकार्ड, इमर्जेंसी आदि।

तत्सम :-

वस्त्र, शक्ति, प्रिय, भाग, मुक्त, अर्पित, स्मृति, कृतित्व, पुरुष, मातृभूमि, विद्रोह, देशप्रेम, कृपा, ग्रीष्म, पृष्ठ, अहम, संस्कृत, सरलतम, ब्रह्म, शिल्पकला, फल, विश्वविद्यालयों, संकट, प्रजा, विराट, विशाल, कष्ट, यात्रा, संस्मरण, सपूत, प्रहार, प्रतीक, आविष्कार, विज्ञान, राज्याश्रय, क्षमादान, स्रोत, विज्ञापन, सुन्दर, निमंत्रण, क्षण, धारा प्रवाह, अद्वितीय, दर्पण, प्रवेश सूचित, शरण, नमस्कार, शोषण पुस्तक, संघर्ष, वाक्, पद्म, अध्यापक, अवकाश, दृष्टि, आकांक्षा, क्षीण, विस्मृत, अंधकार, पैतृक, आराधना आदि।

तद्भव :-

थोड़ा, सारे, दुखड़े, शिर, कुशल, घमाय, झोल, कामरी, थकन, सीली, पत्तुर, हूंट, जिया, बला, गुस्सा, बाह्मन, कापथ, बनिया,

देउता, अँुआ, मजूर, सब्जा, आदतन, गाहक, ब्याह, लोहू, डरेवर, रपट, तसवीर, उल्था, जलूस, जियादा, निश्चित, महलिया, शगल, चाभी, बरम्दा, चंबलाता, दीवालें, ढांकने, फिरते, डागदर, इस्कूल, टेसन, रूपै, जवाउरों आदि।

देशज :-

लपकटी, छटपटाय, लाड़ली, गोडों, तचना, बकबक, अललटप, हड़बड़ी, टुरमुराये, पिपराये, लपककर, खिलखिलाती, भभकती, चुरमुरायी पपड़ियायी, चिपचिपायी, झपककर, घिसटता, रिरियाता, पुचकराता, सिरजता, लिसलिसाता, चुंधियाये, बजबजायी, फफूंदियायी, लुजलुजे, पिलपिल फुटके, गदगद, रिरियाकर, घौंस, फटकारता, गुंजाया, गरमाया, ऐंठते, गिजगिज, गिलगिल, भिनभिनाते, कुड़कुड़ाते, सुर्राटे लदे-फदे, उकडू, बुलबुलाते, सिसकियां, ताड़ियां, हिनहिनाते, घिंघियाते, थुलथुल, लिबलिब, झुनझुनियां, खिलखिला, झुंझलाहट, टालमटोल, गिड़गिड़ा गबड़ सबड, गंधाते, चुराते, खिसिआओ, ठुनगते, गुरगुराता आदि ।

व्यक्तिवाचक संज्ञायें :-

रमेश, लोहिया, मोरारजी, रामू, रघुपति, अनिता, दयावती, दयाशंकर, रामदास, मोहन, रामकुमार, राम, श्रीमार, गीता, कालिदास, नेकनाम नेहरू, गिरीश, नरेन्द्र, मुसद्दीलाल, मैंकू आदि व्यक्तिवाचक संज्ञायें भी इनके काव्य में देखने को मिलती हैं।

﴾खण्ड - ग﴿

रघुवीर सहाय की कविताओं में बिम्ब और प्रतीक :-

रघुवीर सहाय ने अपने कविता संग्रहों में बिम्बों व प्रतीकों का भी वर्णन किया है।

बिम्ब को अर्थचित्र, मानसचित्र अथवा कल्पना चित्र कहा जाता है। चेतना के स्तर पर कवि जीवन की घटनाओं और विषय वस्तु को बिम्ब रूप में ही ग्रहण करता है।

मनोविज्ञान में " बिम्ब का अर्थ मानसिक पुनरोत्पत्ति या स्मृति के आधार पर व्यतीत या सादृश्य पुर्नअनुभव लिया जाता है।" [62] केदारनाथ सिंह के अनुसार " बिम्ब वह शब्द चित्र है जो कल्पना के द्वारा एन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।" [63] इस परिभाषा में तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं। पहली यह कि बिम्ब एक प्रकार का शब्द चित्र है, दूसरा यह कि उसका निर्माण कल्पना के द्वारा होता है और अन्तिम यह कि उसके निर्माण के लिए ऐन्द्रिय अनुभूत के आधार का होना अत्यन्त आवश्यक है। अर्थात बिना गाढ़ वस्तुगत परिचय के, केवल अन्तर्दृष्टि अथवा प्रतिभज्ञान के स्तर पर, बिम्ब का निर्माण नहीं हो सकता। काव्य को शुद्ध ज्ञान अथवा बोध स्वरूप मानने वाले अभिव्यंजनावादी क्रोचे ने अभि-व्यक्ति से पूर्व भावों या मनोविकारों की सत्ता अनिवार्यतः स्वीकार की है। [64]

"कविता का अलंकार विधान और व्यंजना शक्ति में अन्य साधन भी बिम्ब निर्मित का ही कार्य करते हैं। प्रो० कुमार के शब्दों में " काव्य के रूपक, उपमा, मानवीकरण, समासोक्ति, मुहावरे, लोककथाए प्रतीक आदि

के द्वारा बिम्बों को ही स्पष्ट किया जाता है। इसका कारण यह है कि बिम्ब हमारी पूर्वानुभूतियों एवं भावनाओं का ही मूर्तिकरण है, जिसमें ऐन्द्रिकता अपेक्षित रहती है।[65]

डा० जगदीश गुप्त ने प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्र में बिम्ब का समानधर्मी शब्द, "अर्थचित्र" को मानते हुए संस्कृत साहित्याचार्यों की एतद्विषयक मान्यताओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।[66]

सामान्य रूप से आधुनिक समीक्षा में काव्यात्मक बिम्ब के सम्बन्ध में जो व्याख्यायें दी जाती है उनके आधार पर हम उसे इतने रूपों में देख सकते हैं -

§1§ बिम्ब एक प्रकार का शब्द चित्र है।[67]

§2§ बिम्ब वस्तुओं के आन्तरिक सादृश्य का प्रत्यक्षीकरण है।[68]

§3§ बिम्ब ऐन्द्रिय माध्यम के द्वारा आध्यात्मिक अथवा तार्किक सत्यों तक पहुंचने का एक मार्ग है।[69]

§4§ बिम्ब एक अमूर्त विचार अथवा, "भावना" की पुनर्रचना है।[70]

§5§ बिम्ब दो विरोधी संवेदनाओं अथवा अनुभूतियों का आन्तरिक तनाव है।[71]

परन्तु केदारनाथ सिंह कहते हैं कि इनमें से किसी एक व्याख्या को पूर्ण नहीं माना जा सकता। पर सबमें बिम्ब के किसी न किसी पक्ष को समझने का प्रयास अवश्य है। पहली व्याख्या ऐसी है जिसका कोई विरोध नहीं हो सकता। दूसरी से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि बिम्ब औपम्यविधान का ही एक अंग है। यह बात अंशतः ही सत्य कही जा सकती है। क्योंकि बिम्बविधान में केवल सादृश्य ही योजना नहीं होती, कभी-कभी नितान्त अभिधात्मक वक्तव्य भी बिम्ब बन जाता है। तीसरी व्याख्या आज के आज के बिम्ब के माध्यम से अमूर्त भाव-सत्यों तक पहुंचने की बात तो समझ में आ सकती है लेकिन तार्किक सत्यों तक पहुंचने वाली बात कविता की मूल प्रवृत्ति के विरुद्ध पड़ती है।

चौथी व्याख्या में बिम्ब के विशेष पक्ष की ओर संकेत है – वह एक मानसिक "विचार" का प्रत्यक्ष रूपान्तरण है। उसके लिए ऐन्द्रिय अनुभव और संवेगात्मकता का होना ही आवश्यक नहीं है। पांचवे सूत्र का सम्बन्ध आधुनिक काव्य से है जिसे प्रयोगवादी-या नई कविता कहते हैं।[72] इस प्रकार अनेक विद्वानों ने बिम्ब की व्याख्या की है।

बिम्ब और प्रतीक :-

बिम्ब का सबसे निकटवर्ती तत्व प्रतीक होता है। प्रत्येक प्रतीक अपने मूल में एक बिम्ब होता है और उस मौलिक रूप से क्रमशः विकसित होकर प्रतीक बन जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक बिम्ब अपने प्रभाव में चाहे जितना ऐन्द्रिय और संवेगात्मक हो पर अन्ततः उसकी परिणति किसी प्रतीकात्मक अर्थ की व्यंजना में ही होती है। प्रतीकात्मक ध्वन्यात्मकता से हीन बिम्ब काव्य के शोभा धर्म को क्षीण करने वाला होता है।

"बिम्ब जहां काव्य का स्वरूप है, वहीं प्रतीक ध्वन्यर्थ है। जहां एक काव्य बिम्ब का भी उत्कृष्ट उदाहरण हो सकता है, वही उसकी प्रतीकात्मकता भी आकर्षक लग सकती है। इसे रसास्वादन के दो दृष्टिकोण या भिन्न आयाम भी कहा जा सकता है।"[73]

डा० रामचन्द्र शुक्ल ने भी बिम्ब और प्रतीक के अन्तर को इस प्रकार बताया है। उनके अनुसार भाषा के दो पक्ष हैं--एक सांकेतिक और दूसरा बिम्बाधायक। एक में तो नियत संकेत में अर्थबोध हो जाता है, दूसरे में वस्तु का बिम्ब या चित्र अन्तः करण में उपस्थित होता है। बिम्ब एक आन्तरिक प्रक्रिया है, जबकि प्रतीक बाह्य। बिम्ब का सम्बन्ध काव्य की आत्मा से है और प्रतीक का शिल्प से।[74]

सी० डे० लीविस ने भी यह स्वीकार किया है कि "बिम्ब प्रतीक का विरोधी होता है। प्रतीक अभिमान परक होता है और वह सिर्फ

और वह सिर्फ किसी एक वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे एक आधार एक इकाई होता है। कविता में शायद ही कभी शुद्ध प्रतीक हो, क्योंकि वे अपने संदर्भों में भावनात्मक उत्तेजना में प्रभावित संवेदित होते हैं; इसलिए हर पाठक अपनी व्यक्तिगत भावनाओं के अनुरूप प्रतिक्रिया करता है।" [75] केदारनाथ सिंह के अनुसार – एक विशेष बिम्ब किसी एक ही कवि की अनेक रचनाओं में बार-बार दोहराया जाकर प्रायः प्रतीक बन जाता है।" [76]

रघुवीर सहाय की कविताओं में बिम्ब इस प्रकार है --

उनकी कविताओं में ताजे चित्र बिम्ब भी देखने को मिलते हैं जो काव्यार्थ को प्रसंगानुकूलित कर देते हैं – जैसे

उजड़ी डालों के अस्थिजाल से छनकर भू पर गिरी धूप
लहलही फुनगियों के छोरों पर ठहर गई अब
ऐसा हरा रुपहला जादू बनकर जैसे
नीड़ बसे बंदी को लगने वाला टोना। [77]

इन पंक्तियों में चित्र बिम्ब है।

उनके कुछ चित्र बिम्ब इस प्रकार हैं। ये बिम्ब कविता को टुकड़ो में नहीं बांटते बल्कि सही ढंग से कविता बन जाते हैं – जैसे आत्महत्या के विरुद्ध में चढ़ती स्त्री में --

§1§ बच्चा गोद में लिए
चलती बस में
चढ़ती स्त्री
और मुझमें कुछ दूर तक घिसटता जाता हुआ। [78]

(2) सीढ़ियों पर धूप में, दे दिया जाता हूं मैं—
रात में वह ज्यादा गहरा नीला है चाँद
कुछ ज्यादा चांद के रंग का। [79]

(3) आत्महत्या के विरुद्ध में - शहर से बाहर मैं

जैसे एक उजाला उजाड़ सा शीतल
और उसमें एक हरा अंखुआ
और उस पर आकाश के रंगों की झलक
जैसे कोई एक आंख से हंसे एक से रोये [80]

दृश्यबिम्ब :-

उनकी कुछ कविताओं में दृश्य बिम्ब भी मिलते हैं - जैसे

खड़े - खड़े
चौपालों - बंगलों में बैठे
जन देख रहे जल का गिरना
चिड़िया चुन गुन से टुकुर टुकुर [81]

यहां पर टुकुर-टुकुर में दृश्य बिम्ब है।

स्थिर और गति चित्र :-

कहीं-कहीं इधर उन्होंने गति और स्थिर चित्र एक साथ प्रस्तुत किये हैं - जैसे - दूसरा सप्तक की "सांयकाल" कविता में --

दूर क्षितिज पर महुओं की दीवार खड़ी है
जिस पर चढ़कर सूरज का शैतान छोकरा
झांक रहा है।[82]

इस बिम्ब विधान में कवि कल्पना का सबसे बड़ा योग "शैतान छोकरा" जैसे नये उपमान की खोज है जिससे कविता में स्थिर और गति चित्र दोनों एक साथ प्रकट हुए हैं।

गतिबोधक बिम्ब :-

"हँसो-हँसो जल्दी हंसो" की कविता रामदास में "गतिबोधक" बिम्ब है - जैसे --

निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तोलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फव्वारा
कहा नहीं था उसने, आखिर उसकी हत्या होगी।[83]

यहां पर हत्यारे की गतिशीलता को दर्शाया है।

प्रकृति बिम्ब :-

रघुवीर सहाय की कविताओं में प्रवृत्ति बिम्ब भी दिखलाई पड़ते हैं। "सीढ़ियों पर धूप में" , "पानी के संस्करण" कविता में प्रकृति बिम्ब इस प्रकार हैं --

कौंध । दूर घोर वन में मूसलाधार वृष्टि
दुपहर : घना ताल : ऊपर झुकी आम की डाल
बयार: खिड़की पर खड़े आ गई फुहार
रात : उजली रेती के पार, सहसा दिखी
शांत नदी गहरी[84]

मन में पानी के अनेक संस्मरण हैं।

नयी कवितामें बिम्ब संप्रेषण अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपकरण है। कवि महज अलंकार या शोभात्मक उपादान बनकर ही नहीं रह गये हैं बल्कि अभिव्यक्ति के समय अनुभूति को जीवन्त मूर्तिमत्ता प्रदान करने में शिरकत की है।

गत्यात्मक बिम्ब :-

"सीढ़ियों पर धूप में" "धूप कविता की पंक्तियों में गत्यात्मकता है परन्तु उसका उद्देश्य अनुभूति के किसी "एक क्षण" को आलोकित कर देने भर से सिर्फ सम्बद्ध नहीं है, बल्कि हवा के साथ डोलने के साथ "बसे हुए गुलाब की गमक" की, घ्राण संवेदना में अचानक एक वर्तमान का क्षण भविष्य में विस्तार पा जाता है - " और गर्मियां आ रही है ...." ।

और तिनका लेने फुर्र से उड़ जाती है चिड़िया
हवा का एक डोलना है, जिसमें अचानक
बसे हुए गुलाब की गमक है और गर्मियां आ रही हैं
हालांकि अभी बहुत दिन हैं
कितनी सही है मेरी पहचान इस धूप की। [85]

नाद संवेद बिम्ब :-

सामान्य जीवन को परिभाषित करने के क्रम में रघुवीर सहाय ने यहां वर्ण संवेध तथा नाद संवेध बिम्ब को दर्शाया है। जैसे "दूसरा सप्तक" में - "मुंह अंधेरे " ।

ठेलों की खड़खड़ाहट, दूध वालों के खनकते बर्तन
जल्दी चलते हुए चप्पल के हकलाने के से
शब्द, पास आते हैं और दूर चले जाते हैं। [86]

अलंकृत बिम्ब :-

रघुवीर सहाय के कविताओं में कहीं-कहीं अलंकृत बिम्ब "मानवीकरण" के रूप में मिल जाते हैं। जैसे दूसरा सप्तक में --

बन की रानी, हरियाली सा भोला अन्तर
सरसों के फूलों से जिसकी खिली जवानी
पकी फसल सा गरूआ गदराया जिसका तन
अपने प्रिय को आता देख लजायी जाती
गरम गुलाबी शरमाहट का हल्का जाड़ा
स्निग्ध गेहुंए गालों पर कानों तक चढ़ती लाली जैसी
फैल रहा है ....
उत्सुकता से सिहरा जाता बदन....
नवल कोपलों से रस भीजे होंठ खुले हैं
मधु पराग की अधिकारी से कंठ रूंधा है...." [87]

यौन बिम्ब :-

कहीं-कहीं पर उनकी कविताओं में यौन बिम्बों का भी वर्णन है -जैसे

आठो पर ओठ दहकते हों
आंखों पर आंखें मूंद जायें

भुजबंधन कसता जाये -
यह आतुर तन उस तन में धंसता जाये
थक जायें
थक जाये तेरे कुच मेरे सीने पर धक् धक् करके
फड़कें
फिर रह जाये गुम्फित जंघाएं
हो जाये वह क्षण जीवन मरण विशाल, सखी [88]

रघुवीर सहाय की कुछ पंक्तियों में उपलक्षित बिम्ब भी है - जैसे

सिनेमा की रीलों-सा कस के लिपटा है सभी कुछ
मेरे अन्दर,
कमानी खुलने को भरती है हुमास [89]

रघुवीर सहाय की कविताओं में बिम्ब अन्ततः सम्प्रेषण का एक उदाहरण भर है। अधिकांश "नई कविता" के कवियों की तरह बिम्ब रचना उनकी कविता में उद्देश्य नहीं बन पाती। इसलिए रघुवीर सहाय बिम्ब वादी नहीं है और इसीलिए नई कविता के दौर में रूढ़िवादी नहीं बन पाते। "आत्महत्या के विरुद्ध" में व "हंसो-हंसो जल्दी हंसो" में विकास की नई मंजिल तक पहुंचते हैं। यथार्थ को निराकरण व्यक्त करने की प्राथमिकता का आग्रह उन्हें एक सीमा के बाद बिम्बों के संसार से पीछा छुड़ाने के लिए विवश करता है। रघुवीर सहाय अनुभूति की ईमानदारी को "वस्तुओं की वास्तविकता के सही अनुभव" से जोड़ कर देखते हैं, इस प्रकार बिम्ब उनकी कविताओं मे उद्देश्य नहीं बनता और वे बिम्बवाद की गिरफ्त में नहीं फंसते।

प्रतीक :-

रघुवीर सहाय की कविताओं में प्रतीक बहुत कम मात्रा में दिखलाई पड़ते हैं। व्युत्पत्ति मूलक अर्थ :-

व्युत्पत्ति मूलक अर्थ :-

"प्रतीयते अनेन इति प्रतीकं" अर्थात जिससे प्रतीत होता है या किसी वस्तु की अभिव्यक्ति हो, वह प्रतीक है। सामान्यत: "प्रतीक" शब्द का प्रयोग हिन्दी और अंग्रेजी तथा संस्कृत भाषा में "चिन्ह" प्रतिनिधि, प्रतिरूप, प्रतिमा आदि अर्थों में चलता है।[90]

इस शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के प्रति " उपसर्ग से अवश्य है।[91]

जो संज्ञा के साथ लगकर कभी असाम्य मूलक अर्थ देता है और कभी साम्य मूलक । हिन्दी में "प्रतीक" सर्के किसी न किसी रूप में साम्य-मूलक। अर्थों का ही संकेत करता है। साहित्य का कोई भी शब्द विज्ञान के क्षेत्र में आवश्यकतानुसार किसी विशेष अर्थ में गृहीत होकर कुछ विशिष्ठ अर्थ देता है।

परिभाषा :-

प्रतीक की परिभाषा विविध प्रकार से की गई है। प्रयोग का क्षेत्र विभिन्न होने के कारण इसका रूप भी "जैसा देश, वैसा भेष" के अनुसार विशेष क्षेत्र में विभिन्न ही रहा है। प्रतीक का अर्थ चिन्ह कहा जा चुका है। परन्तु उसका काम उससे भी अधिक होता है। यह चिन्ह का ही विभेद होता है जिससे लक्षण और लक्षणार्थ के बीच स्वाभाविक सम्बन्ध व्यक्त होते हैं। जैसे क्रास ईसाईयों का चिन्ह है।[92]

यहां क्रास और ईसाई धर्म के बीच का सम्बन्ध एक दूसरे का बोध कराने में समर्थ होता है। प्रतीक हमारे भावों और विचारों के आदान-प्रदान का एक साधन है। लेकिन ये हमें वाच्यार्थ का बोध नहीं कराते, बल्कि शब्द के भाव समूह की ओर संकेत करते हैं। वैसे तो शब्द माना ही प्रतीक है और भाषा का प्रयोग भी प्रतीकात्मक है। परन्तु ध्वनि व्यंजक शब्द ही सरलता से प्रतीक पद पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं।[93]

कैलाश वाजपेयी के अनुसार "प्रतीक" विस्तार को संक्षेप में कहने का माध्यम है।[94]

श्री नारायण कुट्टि के अनुसार "प्रतीक वह अप्रस्तुत है जो प्रस्तुत को एकदम स्थान भ्रष्ट करके उसका स्थान ग्रहण कर लेता है और अपनी चतुर्मुखी समानधर्मिता द्वारा प्रस्तुत की सशक्त और सुस्पष्ट अनुभूति पाठकों में जगाने में समर्थ होता है।[95]

डा० चन्द्रकला का मत है कि साम्यमूलक अर्थ की ओर संकेत करने के साथ-साथ प्रतीक विशेष भावोद्बोधक अर्थ भी व्यक्त करता है।[96]

प्रतीक का कार्य काव्य के आभ्यन्तरिक अर्थ सम्बन्धों को अभिव्यक्ति करना भी है । प्रतीक के माध्यम से ही मानव मन को गहन भावों की कलात्मक अभिव्यंजना होती है। इस प्रकार काव्य रचना में अनन्तकाल से ही प्रतीकों का प्रयोग मिलता है।

रघुवीर सहाय की कविताओं में भी कहीं-कहीं प्रतीक दिखाई पड़ते हैं। उनकी एक कविता - मनुष्य मछली- युद्ध" में "मछली" लोकतंत्र का "प्रतीक" माना गया है। जैसे --

हम मछलियां पकड़ते है क्योंकि उन्हें
डब्बे में बन्द कर बेचेंगे
डब्बे में बन्द मछली हमारे लोकतंत्र का प्रतीक है
हर एक के लिए ताजी मछली की जगह उपलब्ध [97]

आत्महत्या के विरुद्ध" की एक "रचता वृक्ष" में कवि कहता है कि --

देखो वृक्ष को देखो वह कुछ कर रहा है
किताबी होगा कवि जो कहेगा कि हाय पत्ता झर रहा है [98]

"इस कविता के खास तौर से इस वृक्ष वाली कविता को पढ़कर आप बरबस यह सोचेंगे कि इसका अर्थ प्रतीकात्मक है। फिर अलग से आपकी भी यह कमजोरी है, कि आप यह सोचें। हिन्दी कविता के सारे पाठक इस कमजोरी से पूरी तरह ग्रस्त हैं। और आजिज आ करके-- इस आजिजी का यह स्तर था कि कविता पर पहुंचा - मैंने उस कविता में यह कहा कि "प्रिय पाठक ये मेरे बच्चे हैं, कोई प्रतीक नहीं और "प्रिय पाठक" कहा तो आप समझ सकते है कि कुछ स्नेह से कहा कुछ व्यंग्य से।" [99]

अशोक वाजपेयी - जैसे वृक्ष वाली कविता में - आप कह रहे हैं कि मैं यह सोचूंगा कि वह किसी का प्रतीक वगैरह है। मै यह सोचता हूं कि वहि जो है वह भी वृक्ष है--

रघुवीर सहाय - आप वृक्ष समझें कवि को या जड़ समझे - मेरी बला से।

मेरी तो केवल इस बात में दिलचस्पी है कि क्या मैंने जानबूझकर के किसी वस्तु को वस्तु रहने से वांछित किया है। अगर मैं करता हूं तो मैं एक घटिया कवि हूं। मैं चाहता हूं कि भाषा के साथ यह बर्ताव बंद हो, हमेशा के लिए बंद हो।" 100

इस प्रकार रघुवीर सहाय "प्रतीक" की गिरफ्त में नहीं फंसते। उन्होंने बहुत कम ही अपनी कविताओं में प्रतीकों का प्रयोग किया है।

रघुवीर सहाय ने एक प्रकार के नाम प्रतीकों का विशेष प्रयोग किया है। नीचे की पंक्तियों में "रामलाल" और "नरेन" किसी भी लाचार एवं कष्ट सहते साधारण नागरिक का प्रतीक है और मुसद्दीलाल भ्रष्ट एवं देश को उल्टी दिशा में ले जाने वाले किसी भी मंत्री का प्रतीक है। यह "राजनीतिक प्रतीक" है --

(1) गरजा मुस्टण्डा विचारक - समय आ गया है
कि रामलाल कुचला हुआ पांव को घसीटकर चलता है
अर्थहीन हो जाये 101

(2) दोनों, बाप मिस्तरी, और बीस बरस का बेटा नरेन
दोनों पहले से जानते हैं पेंच की मरी हुई चूड़ियां
नेहरू युग के औजारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन 102

मुसद्दीलाल नाम एक राजनीतिक आदमी का "प्रतीक" है।

(खण्ड - घ)

रघुवीर सहाय की कविताओं में अलंकार विधान :-

रघुवीर सहाय की कविताओं में अलंकार विधान - नई कविता की अलंकार-योजना परम्परित काव्य की अलंकार-योजना से सर्वथा भिन्न है। रूपगत चमत्कार की ओर आग्रह न होने के कारण अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि रूढ़ अलंकारों का नई कविता में सर्वथा अभाव है। नई कविताओं में रचनाकारों के समक्ष कलात्मकता की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण स्थान सशक्त अभिव्यंजना का रहा है। इस प्रकार उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि कुछ सादृश्य मूलक अर्थालंकारों का प्रयोग नई कविता में अवश्य हुआ है। इसके अतिरिक्त मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, ध्वन्यर्थव्यंजना आदि का भी नई कविता में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है।

"अलंकार भाषा की बाह्य एवं आन्तरिक क्षमताओं का एक विशेष प्रकार का उपयोग है, जिसमें काव्य का कथ्य अधिक सम्प्रेष्य, प्रभावशाली एवं आकर्षक बन जाता है"। [103]

कविता में भाषा का जिस रूप में उपयोग किया जाता है उसके कारण कविता नितान्त अलंकृतिहीन नहीं हो सकती, यद्यपि कवि विशेष की क्षमता और काव्य-भाषा के विकास की स्थिति के कारण अलंकृति की मात्रा कम या अधिक हो सकती है तथा उसका स्वरूप भी भिन्न-भिन्न हो सकता है। अलंकारों का उपयोग स्पृहणीय नहीं है"। [104]

रघुवीर सहाय की कविताओं में अलंकारों का प्रयोग कम मात्रा में हुआ है।

"आत्महत्या के विरुद्ध" संग्रह में श्लेष अलंकार का प्रयोग किया गया है --

जैसे --

सेना का नाम सुन देशप्रेम के मारे
मेज़ बजाते हैं
सभासद भद भद भद कोई नहीं हो सकती
राष्ट्र की। [105]

यहां पर भद-भद-भद में श्लेष अलंकार है।

इन्होंने अनुप्रास अलंकारों को भी अपने काव्यों में स्थान दिया है।

"अपने आप और बेकार" कविता में --

जैसे --

लोग-लोग-लोग चारों तरफ हैं मार तमाम लोग [106]

यहां पर ल और ग शब्द की आवृत्ति बार-बार की गई है। इसी प्रकार यहां पर अनुप्रास अलंकार है।

कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं --

§1§ कुछ दिन से मेरा मन मुक्त है [107]
ईश्वर का भय नहीं
यहां पर मेरा "मन मुक्त है" में अनुप्रास अलंकार है।

§2§ पांच बरस बहुत बरस
होते है एक गुलाम
और " गरीब देश में [108]

§3§ रोज-रोज थोड़ा-थोड़ा मरते हुए लोगों का झुण्ड [109]
तिल-तिल खिसकता है शहर की तरफ।

§4§ वह कहती है टिक-टिक-टिक-टिक-टिक-टिक-टिक
और टिक टिक-टिक-टिक
और टिक-टिक-टिक
और टिक टिक
और टिक
और टिक
और टिक
टिक [110]

§5§ अगर कहीं मैं तोता होता
तोता होता तो क्या होता ?
तोता होता।

होता तो फिर ?
होता, फिर" क्या ?
होता क्या? मैं तोता होता।
तोता तोता तोता तोता
तो तो. तो तो ता ता ता ता [111]

इस प्रकार इनकी कविताओं में अनेकों उदाहरण मिल जाते हैं।

कहीं-कहीं पर कवि ने उपमा अलंकार का भी प्रयोग किया है।

"आत्महत्या के विरुद्ध" संग्रह में "हरी गहरी रात" कविता में उपमा अलंकार है। "उपमा और अप्रस्तुत विधान में आन्तरिक एवं बाह्य सादृश्य का ही अन्तर है। उपमा सादृश्य बाह्य प्रक्रिया और अप्रस्तुत विधान सादृश्य की आन्तरिक प्रक्रिया है।"[112] उपमा का सादृश्य है, सादृश्य, समानता और तुल्यता आदि। अलंकार के सौंदर्य का मूल सादृश्य में है और यही कारण है कि सादृश्य मूलक अलंकार ही प्रधान है।

जैसे --

जहां बच्चे
सो रहे थे
अधलिखे
खत से [113]

यहां पर अधलिखे खत में "उपमा" अलंकार है। "हमारी हिन्दी" कविता में "उपमा" अलंकार है - जैसे

हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली [114]

यहां पर "हिन्दी " की उपमा "दुहाजू की नई बीबी" से दी गई है। यह नयी उपमा है। रघुवीर सहाय की कविताओं में नये उपमानों के

के बहुत-से उदाहरण हमें अनायास ही मिल जाते हैं। कहीं-कहीं पर रूपक अलंकार भी दिखाई पड़ता है -

जैसे -

भीमकाय भाषाविद् हांफते डकारते हंकाते
अंग्रेजी की अवध्य गाय। [115]

यहां पर अंग्रेजी की अवध्य गाय में रूपक अलंकार है। "आत्महत्या के विरुद्ध" संग्रह की पहली दस कविताओं में औपम्यमूलक अलंकार है।

साठोत्तरी दौर में जहां पर सपाटबयानी का प्रयोग हुआ है। वास्तव में वह पारम्परिक अर्थ में अलंकार हीनता की ही एक विशेषता है।

प्रयोगवाद और उसके बाद के कवियों के अप्रस्तुत-विधानों में बारीकी और तराश के दर्शन होते हैं। अभिव्यक्ति की नूतन भंगिमा दावेदान इन कवियों ने सचमुच अलंकार करते समय यथेष्ठ जागरूकता का परिचय दिया है। सबसे बडी बात तो यह है कि इन कवियों ने अप्रस्तुत विधान के लिए कोई सरलीकरण नहीं किया जा सकता। ये कवि कहां की बात कहां ले जायेंगे, यह कहना भी बहुत मुश्किल है।

इन कवियों के परिस्थितियों के आधार पर भी अप्रस्तुतों का वर्णन भी किया है। जैसे रघुवीर सहाय की कविता "सायंकाल" में जब कवि "पनघट" पर पहुंचता है तो उसी परिस्थिति के अनुरूप ही अप्रस्तुत योजना करता है - जैसे -

"छिपती जाती पनिहारिन के सांवले हाथों की
चूड़ियों में
धीरे-धीरे झुकता जाता है शरमायें नयनों सा दिन।[116]

रघुवीर सहाय अप्रस्तुत विधान और प्रतीक योजनाओं से आगे बढ़कर बिम्ब की ओर उन्मुख हुए हैं। उनकी दृष्टि में अनुभव को न केवल "प्रतीक" के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है और न ही अप्रस्तुत योजनाओं से। प्रतीक या अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत प्रयुक्त शब्दों का एक निजी व्यक्तित्व होता है, अतः उनके व्यक्तित्व को मिटाकर अभीष्ट अर्थ की सिद्धि प्रतीक और अप्रस्तुत योजना के माध्यम से नहीं की जा सकती। इसकी सिद्धि के लिए अप्रस्तुत और प्रतीक सम्मिलित सहयोग से बिम्बों का निर्माण अवश्य होता है। एक पूरे अर्थ-चैतन्य को कुछ शब्दों और चित्रों के संस्कार से रचना पड़ता है। वह एक सम्पूर्ण चित्र या बिम्ब होता है, पर वह उस चित्रात्मकता से परे होता है। इनकी एक कविता "रचना वृक्ष" में —

देखो वृक्ष को देखो वह कुछ कर रहा है
किताबी होगा कवि जो कहेगा कि हाय पत्ता झर रहा है [117]

प्रस्तुत कवि के सन्निकट होता है और अप्रस्तुत दूर होता है।

कहीं-कहीं पर इनकी कविताओं में "मानवीकरण" भी मिलता है।

"अमानवीय वस्तुओं और व्यापारों को मानवीय रूप में चित्रित करने की पद्धति को "मानवीकरण" कहते हैं। मानवीकरण का अभिप्राय भावनाओं अथवा प्रस्तुत अमूर्त विषय में मानवगुण का आरोप करना है।"[118]

"आत्महत्या के विरुद्ध" संग्रह में "लाखों का दर्द" में मानवीकरण" अलंकार है --जैसे

लखूखा आदमी दुनिया में रहता है
मेरे उस दर्द से अनजान जो कि हर वक्त
मुझे रहता है हिन्दी में दर्द की सैकड़ों
कविताओं के बावजूद
और लाखों आदमियों का जो दर्द में जानता हूं
उससे अनजान
लखूखा आदमी दुनिया में रहे जाता है।[119]

यहां पर हिन्दी "अचेतन" है, लेकिन उसमें दर्द का आभास हुआ है। इस प्रकार यहां पर मानवीकरण अलंकार हुआ। क्योंकि यहां पर अचेतन पदार्थ में मन की दशा का मानवीकरण हुआ है।

वास्तव् में तो साठोत्तरी कविता अलंकार की .. शास्त्रीय धारणा से बहुत दूर चली गई है। जहां वह अलंकारों की शास्त्रीय धारणा की पूर्ति करती है वहां भी उसमें अत्याधिक वैयक्तिकता है। इस कविता का अप्रस्तुत विधान कवि के व्यक्तिगत मनोजगत को सामने लाता है। उक्तियों का वैयक्तिक वैशिष्ट्य कविता की बदली हुई धारणा को प्रदर्शित करता है। युवा् कविताओं में कवि की दृष्टि मूलतः वर्ण्य पर केन्द्रित है, और इस दृष्टि में प्रस्तुत-अप्रस्तुत जैसा विभाजन विशेष महत्वपूर्ण नहीं रह गया है। इस प्रकार "रघुवीर सहाय" की कविताओं में अलंकारों की मात्रा कम पाई गयी है।

(खण्ड - ड.)

"रघुवीर सहाय की कविताओं में छन्द" --

"अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा गणना, यति-गति से सम्बन्धित, विशिष्ट नियमों से नियोजित पद रचना छन्द कहलाती है।" [120] इस परिभाषा के आलोक में नई कविता की छंदात्मकता को देखने से पता चलता है कि नई कविता में "छन्द" का प्रयोग शास्त्रीय विधि के अनुरूप नहीं हुआ है। नयी कविता का छन्द-विधान परम्परा विहित है। नयी कविता में अभिव्यंग्य की जटिलता के कारण इसमें छन्द के बंधन को अस्वीकार कर मुक्त छन्द को अपनाया गया है। नये कवियों जैसे - रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, आदि ने वर्ण, मात्रा, यति आदि के विन्यास की अपेक्षा लयात्मकता पर अधिक बल दिया है। नयी कविता में अधिकांशतः मुक्त छन्द का प्रयोग हुआ है। अतुकान्त छन्द बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं। मुक्त छन्द और अतुकान्त छन्द में स्पष्ट अन्तर है। "अतुकान्त छन्द कविता तुकों से मुक्त होती है, छन्द विधान से नहीं, किन्तु मुक्त छन्द में वह छन्द के रूढ़ बंधनों से मुक्त होती है। कविता मुक्त छन्द में छन्द की भूमि में ही रहती है, उसका परित्याग नहीं करती।" [121]

अज्ञेय ने कहा है कि "छन्द का सम्बन्ध कविता की वाचिकता से है। जब तक कविता में यह वाचिकता एक अनिवार्य शर्त रही है तब तक छन्द भी कविता का अनिवार्य अंग रहा है। आधुनिक काल में "टैक्नोलॉजी" के विकास ने वाचिकता से कविता को बहुत कुछ मुक्त कर दिया है। इसीलिए आधुनिक काल में छन्द और कविता का अनिवार्य सम्बन्ध क्रमशः टूटता गया है"। [122]

श्री सुरेश चन्द्र सहल ने मुक्त छन्द की आठ प्रमुख विशेषतायें मानी हैं --जैसे चरणों की अनियमितता, असमान स्वच्छन्द गति, भावों के अनुसार यति, प्रवाह की अखण्डता, लघु गुरू और वर्ण संख्या बिना किसी कम व समानता के साथ, नियम साहित्य, तुक अभाव और अभाव और आन्तरिक एकता।"[123] वैसे हिन्दी में मुक्त छन्द के पुरस्कर्ता निराला जी माने गये हैं, और उन्होंने भी स्वीकार किया है कि "मुक्त छन्द का समर्थक इसका प्रवाह ही है, वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम साहित्य उसकी मुक्ति"।"[124] इसी प्रकार नयी कविता की छन्द योजना में सबसे अधिक "लय" का ही महत्व है।

"हँसो-हँसो जल्दी हँसो" संग्रह में राधिका छन्द है।

"राधिका के प्रत्येक चरण में बाईस मात्राएं होती हैं। तेरहवीं मात्रा पर यति होती है।"[125]

§1§ जब सीमा के इस पार पड़ी थी लाशें
तब सीमा के उस पार पड़ी थी लाशें[126]

यहां पर प्रत्येक चरण में बाईस मात्रायें हैं और तेरहवीं मात्रा पर यति है इसलिए यहां पर राधिका छन्द है।

§2§ वे इधर से उधर आ करके मरते थे
या इधर से उधर जा करके मरते थे।[127]

यहां पर भी राधिका छन्द है।
कहीं-कहीं पर कवि रघुवीर सहाय ने मात्रा समक छन्दों का प्रयोग भी किया।

मात्रा समक छन्द में प्रत्येक चरण में सोलह-सोलह मात्रायें होती हैं और अन्त में गुरू होता है।[128] इस प्रकार इस छन्द में "मात्रा समक" छन्द दिखाई पड़ता है।

जैसे --

(1) आगे भी राह दिखाती है
ये अपनी पिछली कवितायें [129]

(2) जो आज कहने को कहते हैं
वह पहले ही सह आये थे
जो अब सच होता जाता है
वह पहले ही कह आये थे [130]

वैसे "नई कविता" की छन्द योजना में सबसे अधिक महत्व 'लय' का ही है।

लय के सम्बन्ध में अज्ञेय ने कहा है कि "कविता में वह चाहे आज की हो चाहे आगामी कल की, यदि लय नहीं है तो मैं उसे कविता नहीं कहूंगा।" [131] उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि आजकल की कविता बोलचाल की अन्विति मांगती है, पर लय को वह उक्ति का अभिन्न अंग मानती है। [132]

इस प्रकार नयी कविता में मुक्त छन्द को अधिक महत्व दिया गया है। और मुक्त छन्द में लय की महत्ता को।

"रामदास" कविता में भी "मात्रिक छन्द" है। जैसे --

चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अन्त समय आ गया पास था
उसे बता दिया गया था कि उसकी हत्या होगी --[133]

यहाँ पर पहली चार पंक्तियों में सोलह और पांचवी में अट्ठाईस मात्रा की लय है। यहां पर नाटकीयता का भी संयोजन हुआ है।

नयी कविता में मुक्त छन्द की लयात्मकता के भी अनेक भेद है--जैसे अर्थ लय, शब्द लय, ध्वनि लय, भाव लय आदि। "शब्द लय" में लय की स्थिति परम्परा से मान्य रही है।"[134]

डा० गुप्त ने नयी कविता में शब्दगत छन्द की लय की भाँति ही अर्थ की लय को भी स्वीकार किया है। अर्थ-लय के अतिरिक्त श्री गिरिजा कुमार माथुर ने कविता में अनभिव्यक्त लय को भी स्वीकार किया है।[135]

रघुवीर सहाय की कविता- रचना की प्रक्रिया छन्द विरोधी नहीं है। उनकी बाद की कविताओं में जहां पर परम्परित अर्थों में बिल्कुल छन्द नहीं है वहीं उनमें एक अनिवार्य लय की छन्दात्मकता भी है। उन्होंने "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" काव्य संग्रह के अन्त में उसकी पहली कविता की हा-हा-हा की स्वरलिपि भी दी है। "आत्महत्या के विरुद्ध" संग्रह के अन्त में "मैदान में" शीर्षक कविता की स्वरलिपि भी दी है। रघुवीर सहाय की एक मान्यता यह है कि नये काव्य के लिए एक नई संगीतात्मकता आधुनिक संवेदना का एक आवश्यक अंग है।"[13]

उनकी कविता में पाठ के दौरान बराबर यह सर्जनात्मक टकराव उत्पन्न करने की कोशिश करते हैं, जिससे श्रोता आसानी से काव्य के कथ्य को संवेदना के स्तर पर ग्रहण कर पाता है। सम्भवतः इस

इस संगीत की रचना के लिए ही अपनी बहुत सी कवितायें एक साथ पढ़ते हुए रघुवीर सहाय उनके शीर्षक नहीं पढ़ते थे। थोड़ी देर बाद वे एक कविता से दूसरी कविता पर चले जाते थे, और पाठ के दौरान एक नई संगीतात्मकता का नैरन्तर्य खंडित नहीं होता था।

रघुवीर सहाय ने "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" कविता संग्रह में "अर्थ की लय" . . का प्रयोग किया है। इन्होंने इस कविता को स्वर-लिपि बद्ध भी किया है।

जैसे -

हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है
हँसो अपने पर न हंसना क्योंकि उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि वह शख्स शर्म में शामिल नहीं
और मारे जाओगे
हँसो पर चुटकलों से बचो
उनमें शब्द हैं
कहीं उनमें अर्थ न हो जो किसी ने सौ साल पहले दिये हों
बेहतर है कि जब कोई बात करे तो हँसो
ताकि किसी बात का कोई मतलब न रहे। [135]

रघुवीर सहाय की प्रारम्भिक कविताओं ने हमें नियमित छन्दों में बंधी हुई कवितायें मिलती हैं, मुक्त छन्द में लिखी हुई कवितायें भी मिलती हैं। लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने छन्दो बद्ध कवितायें लिखना लगभग बन्द कर दिया और उनकी कवितायें लय की मुक्ता की ओर बढ़ने लगी। अन्त में पहुंचते - पहुंचते उन्होंने ऐसी कवितायें भी लिखी जिनका रूप बिल्कुल गद्य जैसा हो गया। जैसे "कुछ पते कुछ चिट्ठियां

की "युद्ध विराम" शीर्षककविता --

"जाने किस तरह की थकान थी, रोग की थी या विचार की थी, या दोनों के एक साथ एक टकराव की थी, कि बहुत सवेरे जाग पड़ने के बाद फिर सोने के स्वप्न की। उसमें बहुत दिन बाद एक कबूतर आया। कंकरीट का जंगल इतना मानवताविहीन नहीं है हमारे यहां जैसा यूरोप में है। पहले गुटरगूं सुनाई दी, कितनी भरी मिठास है इस गुटरगूं में। फेफड़ का दम है और पूरी देह की गरमाई है। पंख की फड़फड़ हुई और खिड़की से पंख दिखाई दिये। क्या वह कमरे में आना चाहता है? वह कितनी स्वागत वापसी होगी। वह आधा दिखता रहा और फड़फड़ होती रही मानो तीस साल पहले की कहानी का कबूतर लौटा हो। वह अपने साथ स्मृतियां नहीं लाया है, केवल मेरे अतीत का अर्थ लाया है।[137]

इस अंश को देखने से यह स्पष्ट होता है कि इसमें कोई नियमित छन्द तो है ही नहीं, साथ ही इसमें लयात्मकता भी नहीं है। इसको लेकर अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि इसमें "अर्थ की लय" है जो विवाद का विषय रही है।

रघुवीर सहाय के शिल्प-विधान की विशेषता :-

रघुवीर सहाय के शिल्प-विधान की विशेषतायें काफी हद तक सामने आई हैं। उन्होंने पत्रकारिता, लेखन और कविता को एक नया मुहावरा प्रदान किया । कविता, पत्रकारिता और अन्य सामाजिक राजनीतिक विश्लेषणों में रघुवीर सहाय की कलम एक ऐसी तड़प के साथ चलती थी और लिखने की सभी महत्वपूर्ण विधाओं के माध्यम से उन्होंने अपने संवेदनाओं और विचार को एक नया आकार दिया था। उनके लेखन में कविता हो या कहानी, लेख हो या सम्पादकीय, उनकी प्रतिबद्धता सर्क समान संवेदना के साथ प्रवाहित होती थी।

कवि ने अपनी कविताओं में निजी जीवन के सुख-दुख, जिनको भोगा है उन्हीं का वर्णन किया है और जिस दृष्टि से सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक घटनाओं को देखा और सुना है, उसका सशक्त वर्णन किया है। उनकी यह भोगी हुई अनुभूति वैयक्तिक अनुभूति न रहकर सामूहिक अनुभूति बन गई है।

रघुवीर सहाय की अपनी पत्रकारिता निश्चय ही एक अपवाद थी। उस समय की पत्रकारिता का इतिहास लिखने वाले शायद अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि "दिनमान" एक पत्रिका ही नहीं, वह एक तरह का पत्राचार विद्यालय थी, जो केवल, रमा जैन, अज्ञेय और रघुवीर सहाय की व्यक्तिगत भूमिकाओं के कारण ही चल सकी। रघुवीर सहाय ने "दिनमान" को एक नया स्वरूप दियाजो इस कदर

व्यक्ति-सापेक्ष था कि उनके निकाले जाने के बाद वह एक महीना भी नहीं चल सका।

डा० राम मनोहर लोहिया की विरासत रघुवीर सहाय के इस दो आयामों में प्रतिष्ठित हुई--उदारता और करुणा में, और सत्ता के इकट्ठा किये जाने के अथक विरोध में। राज्य की तथाकथित आधुनिक अवधारणा में परिष्कार लोहिया के लिए इसी अर्थ में सार्थक होता कि राज्य शक्ति कमजोर को ताकत देने का साधन बने। रघुवीर सहाय ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का उपयोग इसी दर्शन को फैलाने के लिए किया था। उनकी कविता और पत्रकारिता की मूलभूत चिन्ता एक ही थी- समाज में ताकत का बंटवारा। कोई संस्था हो या सर्वोच्च सत्ता, यदि उसका अधिकारी ताकत को इकट्ठा करने में लगा है या ताकत के इकट्ठा होने की प्रतीक्षा कर रहा है तो वह लोकतंत्र की संभावना पर चोट कर रहा है और इतिहास से अर्जित समाज का अमूल्य समय नष्ट कर रहा है।

"दिनमान" में सम्पादक की सत्ता पाकर उन्होंने उसका उपयोग साधारण लोगों को संवाद में महत्त्व दिलाने के लिए किया। यही उनका पत्रकारिता का विशिष्ट राजनीतिक प्रयोग था। "दिनमान" न केवल पाठकों के पास गया, बल्कि उन्हें खींचकर खबरों और टिप्पणियों के संवाद वृत्त के केन्द्र में ले आया। कचहरियों से लेकर स्कूल की प्रार्थनाओं तक दर्जनों विषयों पर बहुमूल्य तथ्यपरक सामग्री "दिनमान" ने अपने पाठकों के सहयोग से एकत्रित की। ये विषय इस तरह के थे जिन पर पत्रकार क्या, समाज वैज्ञानिक की दृष्टि भी नहीं जाती। इन सभी विषयों को "दिनमान ने सिर्फ छूकर ... ही नहीं छोड़ दिया, बल्कि उनकी

गहराई में जाकर, उनके बारीक पहलुओं पर बहस चलाकर उन विषयों को महत्व प्रदान किया। रघुवीर सहाय के लिए किसी खबर का ताजा होना कोई मायने नहीं रखता था, न ही स्थान की कमी जैसा बौदा तर्क, उन्होंने कभी किसी सच्चे विश्लेषण को छोटा करने के लिए अपने सम्पादक पद का इस्तेमाल नहीं किया। जिस घटना पर वह संवाद लिखते थे, वह मनुष्य की हालत को किसी गहराई से रेखांकित करती था। टीकमगढ़ में हसीना नाम की मुस्लिम औरत, जो डकैती करती थी, का शव एक बार नंगा करके दिखाया गया था, लेकिन हफ्तों के बाद भी यह विषय "दिनमान" के लिए एक चिन्ताजनक विषय था। रघुवीर सहाय का संपादन इस अर्थ में समय के खिलाफ मनुष्य का अभियान था। समय के साथ-साथ चलने या कि भागमभाग में शामिल होने का महत्व सत्ताधारी या सत्ताकांक्षी के लिए हो तो हो, साहित्यकार या पत्रकार के लिए समय के साथ चलने से ज्यादा जरूरी है मनुष्य के साथ चलना, व भी एक साधारण और कमजोर मनुष्य के साथ चलना -- रघुवीर सहाय के "दिनमान" से सभी को यह शिक्षा मिली।

उनकी कुछ भाषागत विशेषतायें भी हैं।

रघुवीर सहाय की कविता की भाषा, अपने काल और अपने समय में जीते भारतीय के लिए क्या प्रासंगिक कविता रही है ? इनकी भाषा, उनके प्रसंग, उनकी अभिव्यक्ति क्या मनुष्य के साथ कंधे से कंधा मिलाकर एक साथ चले हैं ? उनके हर संग्रह में उनकी कविता ने हिन्दी पाठक में अधिक आत्मीयता और उत्कटता जगाई है ।

रघुवीर सहाय ने अपने काव्यों की भाषा को बोलचाल की भाषा के निकट लाने की कोशिश की है, लेकिन उनको कहीं-कहीं पर भाषा की फिजूलखर्ची भी करनी पड़ी है। रघुवीर सहाय की कवितायें केवल पुरानी की नहीं, वरन् समकालीन कविताओं की भी बनावट का विरोध करती रही हैं। यह बात भी सच है कि "नई कविता" के और भी कवियों ने अपने-अपने ढंग से इस दिशा में कोशिशें की हैं लेकिन इनकी कविताओं के समक्ष, उन लोगों की कवितायें भी बनावटी-सी प्रतीत होती हैं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि रघुवीर सहाय ने हिन्दी की बोलचाल की नागर भाषा को उसकी समूची संरचना और उसके लहजे में ग्रहण किया है, परन्तु हम यह भी जानते हैं कि बोलचाल की भाषा अपने समर्थ प्रवाह में व्याकरणिक वाक्य संरचना की हमेशा कायल नहीं होती। विशेषकर क्रियापद बातचीत के सिलसिले में अन्त में ही आये यह भी जरूरी नहीं।

इनकी भाषा में केवल बोलचाल के शब्द ही नहीं हैं, बल्कि उसकी संरचनात्मक सारी विशेषतायें भी सामने आई हैं। इनकी भाषा में उर्दू, अंग्रेजी, तत्सम व तद्भव शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषिक संरचना के साथ ही साथ इनकी कविताओं में बिम्बों का भी काफी मात्रा में प्रयोग हुआ है, जैसे, चित्र बिम्ब [बसन्त, दूसरा सप्तक पृ0 140] जो काव्यार्थ को प्रसंगानुकूलित कर देते हैं। ध्वनि बिम्ब [पहला पानी"; दूसरा सप्तक में पृ0 159] आदि का भी प्रयोग मिलता है। इनके बिम्ब-विधान में कवि-कल्पना का सबसे बड़ा योग "शैतान छोकरा" जैसे नये उपमान की खोज हुआ है, जिससे कविता में स्थिर और गति चित्र दोनों एक साथ आये हैं। चित्र बिम्बों का भी उन्होंने प्रयोग किया जैसे "सीढ़ियों पर धूप में" की "धूप" कविता में [पृ0 148]।

"दे दिया जाता हूं" में (पृ० 182)।
"आत्महत्या के विरुद्ध" में - "शहर से बाहर" (पृ० 35) में देखने को मिल जाते हैं।

इनकी भाषा में गद्यात्मकता की भी एक विशेषता रही है। इस प्रयास में कवि को भाषा की नये सिरे से पहचान करनी पड़ी और उसे नई संरचना देनी पड़ी। उसे निपट गद्य बनाकर, उससे कविता का कार्य लेना पड़ा है। वे कहते भी हैं कि " संभव है कि लोगों को यह कविता ही न लगे।

जैसे --

न सही यह कविता
यह मेरे हाथ की छटपटाहट सही
यह कि मैं घोर उजाले में ढूंढता हूं
आग
जबकि हर अभिव्यक्ति
व्यक्ति नहीं
अभिव्यक्ति
जली हुई लकड़ी है न कोयला न राख। 138

इन्होंने अपनी कविताओं में अलंकारों व छन्दों का समुचित प्रयोग किया। उनकी अधिकतर कवितायें मुक्त छन्द में लिखी गयी हैं। उनकी कविताओं में उपमा मूलक अलंकारों का अधिक मात्रा में प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर छन्दों का प्रयोग मिलता है।

रघुवीर सहाय की भाषा, उनके भाव बोध से इतनी एक रूप हो गई है कि वह खुद ही टुकड़ों में नहीं बांटी जा सकती। इनकी कविताओं में कुछ पंक्तियां अलग होकर भी जैसे बहकर एक-दूसरे से मिल जाती हैं। इस सफलता के पीछे उनकी वर्षों की साधना का परिणाम है। जो बोलचा

की भाषा की लय को लेकर वे करते आ रहे हैं।

रघुवीर सहाय शिल्प के मोर्चे पर सतत सक्रिय रहे, लेकिन यह गौर-तलब है कि वे किसी एक शिल्प के कैदी कभी नहीं रहे। अधिकतर देखने में आता है कि यदि कोई रचनाकार अपने किसी विशिष्ट शिल्प से सफलता पा लेता है तो सफलता के उस चैक को बार-बार भुनाने के लोभ से बच नहीं पाता । परिणाम यह होता है कि शिल्प के दुहराव से कवि की रचनात्मक चेतना सिर्फ एक रस ही नहीं, थकी-मांदी -सी दिखने लगती है। रघुवीर सहाय इस खतरे के प्रति सजग थे। शायद यही कारण है कि रघुवीर सहाय काव्यवस्तु की शिराओं में ज्यादा रक्त पहुंचाने के उद्देश्य से अपने काव्य-शिल्प की विविधता में भी उनके लोकतांत्रिक मिजाज की झलक मिलती है। उन्होंने जहां कविता में गद्य-सरीखे वाक्यांशों के लिए जगह बनाई, वहीं लय को भी नहीं छोड़ा। उनकी काव्य लय में एक गत्वर प्रवाह है। यह प्रवाह कहने की दृढ़ और ठंडी भंगिमा से शक्ति पाकर नग्न यथार्थ की भयावहता तथा संश्लिष्ट मानव-रागों को उत्कटता से व्यंजित करता है।

रघुवीर सहाय अवध प्रान्त के थे। उनकी काव्य-भाषा जहां बोलचाल-के करीब है, वहीं उसमें कई बार अवधी के शब्द निःसंकोच आ जाते हैं। यह किसी फैशन के लिए नहीं, जमीन से जुड़ने का सहज प्रतिफल था।

संदर्भ

1. ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी ऑफ करंट इंग्लिश – पृ० 1258
2. वृहत हिन्दी कोश – पृ० 1334
3. मोहन अवस्थी – आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प – पृ० 6
4. कैलाश वाजपेयी–आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प –पृ० 19
5. पुष्करदत्त शर्मा– आधुनिक काव्य रूप और शिल्प – पृ० 6
6. सुरेश शर्मा – रघुवीर सहाय का कवि कर्म – पृ० 105
7. नामवर सिंह – कविता के नये प्रतिमान – पृ० 28
8. महेन्द्र कार्तिकेय – आधुनिक कविता के नये मूल्य – पृ० 41
9. नामवर सिंह – कविता के नये प्रतिमान – 140
10. अरस्तू – अरिस्टोटेल आन दा फोर्ट ऑफ पोयट्री – पृ० 41
11. क्लिंथ ब्रुक्स – दा वैल रक अर्न स्टडीज इन दा स्ट्रेक्चर ऑफ पोयट्री – पृ० 159
12. नरेन्द्र मोहन – लम्बी कविता का रचना विधान – पृ० 4
13. एल्डुस हक्सले – लिटरेचर एण्ड साईंस – पृ० 12
14. सी० डी० लुईस – पोयटिक इमेज – पृ० 135
15. महेन्द्र कार्तिकेय – आधुनिक कविता के नये मूल्य – पृ० 49
16. महेन्द्र कार्तिकेय – आधुनिक कविता के नये मूल्य – पृ० 50
17. रामस्वरूप चतुर्वेदी – भाषा और संवेदना – पृ० 13
18. डा० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – नये साहित्य का तर्क शास्त्र पृ० 151
19. डा० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – नये साहित्य का तर्क शास्त्र पृ० 154
20. अज्ञेय – दूसरा सप्तक – पृ० 142

21. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ0 161
22. रघुवीर सहाय – हँसो हँसो जल्दी हँसो – पृ0 25
23. सुरेश शर्मा – रघुवीर सहाय का कवि कर्म – पृ0 3
24. डा0 हरदयाल – आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प – पृ0 360
25. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ0 43
26. गिरिजा कुमार माथुर – नयी कविता सीमायें और सम्भावनायें पृ0 122.
27. डा0 सियाराम तिवारी – काव्य भाषा – पृ0 7
28. डा0 सियाराम तिवारी – काव्य भाषा – पृ0 94
29. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – भूमिका – पृ0 10
30. अज्ञेय – दूसरा सप्तक – पृ0 140
31. डा0 हरदयाल – आधुनिक हिन्दी साहित्य का अभिव्यंजना शिल्प – पृ0 114
32. डा0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी – नये साहित्य का तर्क शास्त्र पृ0 114
33. क्रिस्टोफर काडवेल – इलूशियन एण्ड रियल्टी – पृ0 142
34. आक्टोरियो पांज – दा बो एण्ड दा लायर – पृ0 41
35. डा0 नामवर सिंह – कविता के नये प्रतिमान – पृ0 104
36. डा0 नामवार सिंह – कविता के नये प्रतिमान – पृ0 105
37. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – भूमिका – पृ0 10
38. नयी कविता – अंक 2 – पृ0 37–38
39. डा0 नामवर सिंह – कविता के नये प्रतिमान – पृ0 115
40. डा0 नामवर सिंह – कविता के नये प्रतिमान – पृ0 108

41. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 27

42. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 30

43. डा० नामवर सिंह – कविता के नये प्रतिमान – पृ० 113

44. रघुवीर सहाय – लोग भूल गये हैं – पृ० 50

45. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 50

46. विजय कुमार – साठोत्तरी हिन्दी कविता : परिवर्तित दिशायें पृ० 152

47. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 70

48. रघुवीर सहाय – हंसो हंसो जल्दी हंसो – पृ० 21

49. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 86

50. रघुवीर सहाय – हंसो हंसो जल्दी हंसो – पृ० 52

51. रघुवीर सहाय – हंसो हंसो जल्दी हंसो – पृ० 73

52. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ० 170

53. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ० 95

54. डा० नावर सिंह – कविता के नये प्रतिमान – पृ० 161

55. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 60

56. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ० 256

57. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ० 98

58. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ० 146

59. विजय कुमार – साठोत्तरी हिन्दी कविता : परिवर्तित दिशायें पृ० 202

60. रघुवीर सहाय – लोग भूल गये हैं – पृ० 14

61. रघुवीर सहाय

62. कैलाश वाजपेयी – आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प – पृ० 78

63. केदारनाथ सिंह – बिम्ब विधान – पृ० 23
64. केदारनाथ सिंह – बिम्ब विधान – पृ० 28
65. सतीश कुमार – नयी कविता के प्रमुख प्रवृत्तियाँ – पृ० 14
66. डा० जगदीश गुप्त – नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें – पृ० 20
67. सी.डी. लुविस – दा पोयटिक इमेज – पृ० 19
68. टी. ई. ह्यूम – स्पेक्यूलेसियस – पृ० 231
69. सूसैने के. लैंगर – परोब्लम ऑफ आर्टस – पृ० 132
70. जार्ज व्हेले – पोयटिक प्रोसिस – पृ० 145
71. आलेन टेटे – सलेक्टिड एस्सेज – पृ० 83
72. केदारनाथ सिंह – विम्ब विधान – पृ० 16
73. महेन्द्र कार्तिकेय – आधुनिक कविता के नये मूल्य – पृ० 79
74. रामचन्द्र शुक्ल – रस मीमांसा – पृ० 292
75. सी. डी. लुविस – पोयटिक इमेज – पृ० 40-41
76. केदारनाथ सिंह – विम्ब विधान – पृ० 31
77. अज्ञेय – दूसरा सप्तक – पृ० 151
78. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरूद्ध – पृ० 13
79. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ० 182
80. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरूद्ध – पृ० 46
81. अज्ञेय – दूसरा सप्तक – पृ० 159
82. अज्ञेय – दूसरा सप्तक – पृ० 159
83. रघुवीर सहाय – हंसो हंसो जल्दी हंसो – पृ० 27
84. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ 101
85. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ० 171
86. अज्ञेय – दूसरा सप्तक – पृ० 157
87. अज्ञेय – दूसरा सप्तक – पृ० 150
88. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ० 170

89. अज्ञेय – दूसरा सप्तक – पृ० 65

90. हिन्दी शब्द सागर – भाग 3 – पृ० 308

91. हिन्दी विश्व कोश – भाग 14 – पृ० 546

92. ए एच ग्रेडिनर – स्पेक एण्ड लैंगवेज – पृ० 10 नोट II

93. ए एच ग्रेडिनर – स्पेक एण्ड लैंगवेज – पृ० 2 नोट I

94. कैलाश वाजपेयी – आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प – पृ० 75

95. श्री नारायण कुदिट – हिन्दी की नयी कविता – पृ० 135

96. चन्द्रकला त्रिपाठी – आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद – पृ02

97. रघुवीर सहाय – लोग भूल गये हैं – पृ० 35

98. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 39

99. रघुवीर सहाय – लिखने का कारण – पृ० 167

100. रघुवीर सहाय – लिखने का कारण – पृ० 167

101. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 21

102. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 22

103. रामचन्द्र शुक्ल – चिन्तामणि – भाग 1 – पृ० 181

104. डा० हरदयाल सिंह – आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प – पृ० 288

105. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 28

106. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 33

107. रघुवीर सहाय – लोग भूल गये हैं – पृ० 25

108. रघुवीर सहाय – लोग भूल गये हैं – पृ० 99

109. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 22

110. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में, पृ० 159

111. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में, पृ० 146

112. महेन्द्र कार्तिकेय – आधुनिक हिन्दी कविता के नये मूल्य –पृ० 105

113. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 56
114. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 70
115. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 87
116. अज्ञेय – दूसरा सप्तक – पृ० 160
117. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 39
118. मंजुला पुरोहित – नयी कविता का संवेदना और शिल्प – पृ० 82
119. रघुवीर सहाय – आत्महत्या के विरुद्ध – पृ० 38
120. हिन्दी साहित्य –कोश भाग–1, धीरेन्द्र वर्मा – पृ० 290
121. श्यामसुन्दर घोष – नयी कविता का स्वरूप विकास – पृ० 112
122. अज्ञेय – चित्रेतना अंक–2, पृ० 38
123. सुरेन्द्र चन्द्र – नयी कविता और उसका मूल्यांकन – पृ० 53
124. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला – परिमल की भूमिका – (हिन्दी साहित्य कोश – पृ० 518)
125. रामचोहरी शुक्ल – काव्य प्रदीप – पृ० 326
126. रघुवीर सहाय – हंसो हंसो जल्दी हंसो – पृ० 33
127. रघुवीर सहाय – हंसो हंसो जल्दी हंसो – पृ० 33
128. रामचोहरी शुक्ल – काव्य प्रदीप – पृ० 324
129. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ० 165
130. रघुवीर सहाय – सीढ़ियों पर धूप में – पृ० 166
131. अज्ञेय – तार सप्तक – पृ० 22
132. अज्ञेय – नई कविता अंक 2, = पृ० 38
133. रघुवीर सहाय – हँसो हँसो जल्दी हँसो = पृ० 27

134. डा० जगदीश गुप्त - नई कविता स्वरूप और समस्यायें - पृ० 86
135. गिरिजा कुमार माथुर - नई कविता अंक - 5, 8 पृ० 80
136. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 7
137. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 82
138. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 74

"षष्टम अध्याय "

आधुनिक हिन्दी कविता का विकास : एक सर्वेक्षण :-

आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारम्भ कब से माना जाये, यह निर्णय करना बहुत ही कठिन कार्य है। आधुनिकता के सम्बन्ध में उसके अवधारणात्मक अर्थ को लेकर विद्वानों में बहुत ही मतभेद हैं। डा० धर्मवीर भारती ने आधुनिक बोध को "संकट बोध" माना है, डा० रघुवंश ने इसे "असम्पृत यथार्थ दृष्टि के रूप में आंका है, डा० नामवर सिंह कभी इसे इस प्रक्रिया के रूप में तो कभी एक मूल्य में खोज निकालते हैं, और इसे "सापेक्षवाद" में आंकते हैं। केदारनाथ अग्रवाल ने आधुनिकता को "खंडित मानव मन की खंडित मनोदशा की खंडित अभिव्यक्ति बताया है।" [1]

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार आधुनिकता "एक प्रक्रिया का नाम है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहुंचने की प्रक्रिया है। आधुनिक वह है जो मनुष्य की ऊंचाई, उसकी जाति या गोत्र से नहीं, बल्कि उसके कर्म से नापता है। आधुनिक वह है जो मनुष्य-मनुष्य को समान समझता है।" [2]

"डा० कुबेरनाथ राय मानते हैं कि आधुनिकता की कोई परिभाषा नहीं हो सकती, तथापि आधुनिकता की एक काम चलाऊ परिभाषा यह हो सकती है कि "संक्रान्तिकालीन मिजाज या प्रश्नगर्भी संक्रान्ति के प्रति सचेतता को आधुनिकता कहते है।" [3]

इस प्रकार आधुनिकता की अधिक अवधारणाओं को देखने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि इसका समय कब से आरम्भ हुआ यह आज तक विवादास्पद ही है। आधुनिकता की प्रवृत्तियां में, पुनरुत्थानवाद, भौतिकवाद और अस्तित्ववाद आदि आते हैं। वैसे अधिकतर विद्वान आधुनिकता का विकास उन्नीसवीं सदी से मानते हैं। दिनकर के अनुसार "जिस आधुनिकता को हम यूरोप से सम्बद्ध मानते है, उसका प्रवेश इस देश में 19 वीं सदी में हुआ था और उसके साथ टकराने से भारतीय संस्कृति के भीरत ऐसी खलबली मची थी कि कोई तीस वर्षों के भीतर भारत एक ऐसी क्रान्ति से गुजर गया, जसी क्रान्ति का अनुभव उसने सारे इतिहास में नहीं किया था।"[4] इसके बाद हिन्दी कविता में भारतेन्दु युग का विकास हुआ। यह काल हिन्दी साहित्य का प्रवेश द्वारा है। प्रवृत्यात्मक दृष्टि से इसको संधि युग भी कह सकते हैं। इस काल में कविता सम्बन्धी नवीन क्रियायों का ग्रहण हुआ, और कविता की पुरानी परम्परा का संरक्षण भी हुआ, भाव के क्षेत्र में भी और कला के क्षेत्र में भी। "हिन्दी साहित्य को जीवन की वास्तविकता के साथ जोडने का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के हाथों सम्पन्न हुआ।"[5] कविता में नवीनता का सही अर्थों में सूत्रपात बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही होता है। भारतेन्दु कालीन कविता के विकास में भारतेन्दु, प्रताप, नारायण मिश्र, अम्बिका दत्त व्यास, राधाकृष्ण दत्त और बद्रीनारायण, चौधरी का नाम उल्लेखनीय है। इस युग में काव्य के क्षेत्र में, भाव, भाषा और छन्द सभी में प्राचीनता का परिष्कार और नवीनता का समावेश हुआ। इस युग की मुख्य प्रवृत्तियां - देश-प्रेम, प्राचीनता तथा नवीनता का समन्वय, जन जीवन का चित्रण, भाषा, छन्द साहित्य मूल्य आदि थी। इसके बाद द्विवेदी युग का उदय हुआ। द्विवेदी काल में राष्ट्रीय भावना

और आदर्श की रूपरेखा बिल्कुल साफ हो गई थी। इसी युग में हिन्दी कविता की काव्य-भाषा के लिए समस्या खड़ी हो गई कि इसकी भाषा खड़ी बोली है या ब्रजभाषा। परन्तु अन्त में निर्णय हो गया कि हिन्दी कविता की भाषा खड़ी बोली ही है।

इस काल के साहित्य में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से स्वच्छन्द भावना का उदय हुआ। भारतेन्दु काल के सुधारात्मक आन्दोलनों से प्रेरणा प्राप्त करके काव्य में जीवन का अधिक व्यापक ढंग से चित्रण होने लगा। इस काल के साहित्य में प्राचीन रूढ़ियों और निरर्थक परम्पराओं के प्रतिरोध की भावना सामने आई। "इस युग के कवि की दृष्टि उपयोगितावादी थी। वह साहित्य को समाज सुधार और आदर्श स्थापन का शक्तिशाली साधन मानता था। वह कविता के माध्यम में हिन्दुओं में जातीय एकता स्थापित करने, धर्म को अधिक उदार, एवं रूढ़िमुक्त बनाने, सामन्ती नैतिक मूल्यों के स्थान पर पवित्रतावादी मध्यवर्गीय नैतिक मूल्य स्थापित करने, नारी का उद्धार करने आदि का प्रयत्न कर रहा था। वह पश्चिम की बौद्धिकता से प्रभावित होकर स्वर्ग, नरक, ईश्वर आदि की तर्क सम्मत व्याख्यायें प्रस्तुत करने में व्यस्त था। तथापि परम्परागत धार्मिकता एवं पौराणिकता से वह पूरी तरह मुक्त नहीं हो पा रहा था। इस युग के कवि का सौन्दर्य बोध स्थूल था।" [6]

इसके बाद "छायावाद" की प्रवृत्ति का उदय हुआ। आचार्य शुक्ल के अनुसार "बंगला में प्रतीकात्मक अध्यात्मवादी रचनाओं को छायावादी कहा जाता था, अतः उसके अनुकरण पर हिन्दी साहित्य में ऐसी रचनाओं के लिए छायावाद नाम चल पड़ा, किन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि बंगला में छायावादी नाम कभी चला ही नहीं।'

डा० रामकुमार ने भी शुक्ल के समान छायावाद को रहस्यवाद से अभिन्न माना है। इनके शब्दों में , परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में । यही छायावाद है।" श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी के शब्दों में "छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है।" इस प्रका इन्होंने छायावाद को रहस्यवाद से कुछ मिलता जुलता बताया है। [8] पन्त जी ने भी स्वीकार किया है कि "श्री मुकुटधर पाण्डेय की रचनाओं में छायावाद की सूक्ष्म भाव व्यंजना तथा रंगीन कल्पना धीरे-धीरे प्रकट होने लगी थी जो आगे चलकर प्रसाद जी के युग में पुष्पित पल्लवित होकर एक नूतन चमत्कार एवं चेतना का संस्कार धारण कर हिन्दी काव्य के प्रांगण में नवीन युग के अरुणोदय की तरह . . मूर्तिमान हो उठी।" [9] इस प्रकार छायावाद का प्रारम्भ "इन्दु" के प्रकाशन काल {1911} से या मुकुटधर पाण्डेय की रचनाओं के प्रकाशन काल {1909} या प्रसाद की "झरना" पन्त का "पल्लव" निराला की "अनामिका" {प्रथम संस्करण} एवं "परिमल" में संगृहित कविताओं के नियमित प्रकाशन काल {1918} में से किसे माना जाये, यह प्रश्न हमारे सामने आता है। इस सम्बन्ध में पन्त जी के इस कथन से सहमत हुआ जा सकता है कि छायावाद की प्रथम . . . उठान 1916 ई० से 1918 ई० के बीच हुई ।" [10]

केसरी नारायण शुक्ल जी लिखते हैं कि "छायावाद के व्यक्तिवाद, आत्माभिव्यक्ति, कलावाद आदि बुर्जुआई संस्कृति के ही विभिन्न रूप हैं। हमारे समाज की व्यवस्था ही प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर है। आज के समाज के मूल्यांकन का मानदण्ड अधिकार स्थापित मूल्य के आधार पर है जो जनहित की अपेक्षा व्यक्तिगत सफलता की भावना प्रमुख हो गई। पूंजीवादी मितव्ययता द्वारा जिसका आधार ही व्यक्तिगत एकाधिकार है।" [11]

इसकी प्रवृत्तियों में व्यक्तिवाद की प्रधानता, प्रकृति चित्रण, नारी के सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण, रहस्यवाद-अलौकिक प्रेम चित्रण, रहस्य भावना और स्वतंत्रता प्रेम, स्वच्छन्दतावाद, वेदना और निराशा, मानवतावाद, आदर्शवाद, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मक भाषा एवं लाक्षणिक पदावली, गेयता, अलंकार- विधान, आदि मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।

इसी प्रकार छायावाद 19 वीं शताब्दी के दो महायुद्धों के बीच की कविता बन कर रह गया। पन्त जी का कहना है कि छायावाद के बाद प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता के रूप में जो हिन्दी कविता लिखी गई वह छायावाद का ही एक रूपान्तर है। इसके बाद प्रगतिवाद का विकास हुआ। यह वाद छायावाद से भी अधिक विवादास्पद रहा है। प्रगतिवाद के विषय में डा० नगेन्द्र का कहना है कि "प्रगतिवाद साम्यवाद की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है।" [12] सन् 1930 के आस पास भौत्सुकता के आग्रह के आधीन कविता- क्षेत्र में जो नवीन सामाजिक चेतना जागृत हुई थी, वही चेतना सन् 36 के आसपास विकसित होती हुई। प्रगतिवादी काव्य के तत्व छायावादी सामाजिक चेतना में निहित थे, यद्यपि प्रगतिवादी सामाजिक चेतना, नव जागरण, राष्ट्रीय परि-प्रेक्ष्य और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मार्क्सवादी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में ही निर्मित हुई है। सुमित्रा नन्दन पन्त ने "रूपाभ" की भूमिका में वर्तमान की अभिव्यक्ति के लिए प्रगति का समर्थन करते हुए लिखा था कि "इस युग में वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों के प्रति हमारे कल्पना के मूल हिल गये हैं... इसलिए पोषक सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है। हमारा उद्देश्य इस इमारत में धूनियाँ लगाने का कदापि नहीं है जिसका गिरना अवश्यम्भावी है।" [13] प्रगतिवाद के प्रमुख कवि सुमित्रा नन्दन पन्त जी है। इसके अतिरिक्त निराला, दिनकर, नवीन शिवमंगलसिंह "सुमन" "अंचल भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा प्रगतिवाद से सम्बन्धित हैं। इसको औपचारिक रूप से सन् 1943 में तार सप्तक के

प्रकाशित होने से ही इसका समापन काल मान लिया जाता है, किन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि प्रगतिवाद की मूल पहचान, उसकी मार्क्सवादी विचारधारा से है। तार सप्तक के सभी कवि मार्क्सवादी होने का दावा करते थे। इस प्रकार "नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, रांगेय राघव, महेन्द्र भटनागर, शमशेर , राजीव सक्सेना , धूमिल, कुमार विमल, लीलाधर जुगड़ी, रघुवीर सहाय आदि कवियों की कविता भी प्रगतिवादी कविता है।" [14] वैसे कविता के क्षेत्र में प्रगतिवाद के साथ ही चली आ रही प्रयोग - प्रवृत्ति यूरोपीय चिन्तन के आधार पर अपेक्षाकृत अधिक बढ़ावा मिला । यही प्रयोग की प्रवृत्ति प्रगतिवाद के क्षीण होते-होते इतनी बढ़ी कि आगे चलकर इसी प्रवृत्ति के आधार पर कविता को प्रयोगवाद की संज्ञा से अभिहित किया गया।

प्रयोगवाद प्रगतिवाद की एक सहजात काव्यधारा है। छायावादोत्तर काल में प्रगतिवाद के समानान्तर हिन्दी कविता में व्यक्तिवाद की परिणति घोर अहमवादी, स्वार्थ प्रेरित, असामयिक, उच्छृंखल और असंतुलित मनोवृत्ति के रूप में हुई । " [15] कविता की इस विद्रूप प्रवृति का अभी तक नामकरण नहीं हो पाया है। इसी प्रकार इसको अनेक नामों की संज्ञा दी गई है । जैसे प्रयोगवाद, प्रतीकवाद , प्रपद्यवाद, रूपवाद और नई कविता आदि। प्रपद्यवाद को पहले "नकेनवाद" की संज्ञा दी गई। नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार व नरेश मेहता ने मिलकर अपने नामों के प्रथम अक्षर से "नकेनवाद" का अविष्कार किया।

इसके बाद "नयी कविता" का उदय हुआ। कुछ विद्वानों ने "प्रयोगवाद" और नई कविता को भिन्न-भिन्न माना है, परन्तु ये दोनों एक ही कविताधारा के विकास की दो अवस्थायें हैं। सन् 1943 से सन् 1953 तक कविता में जो नवीन प्रयोग हुए, नयी कविता उन्हीं का परिणाम है। प्रयोगवाद उस कविता की आरम्भिक अवस्था है और नयी कविता उसकी विकसित अवस्था।

सन् 1943 ई० में जब "तार सप्तक" का सम्पादन हुआ तो उसकी विवृत्ति और भूमिका तथा संगृहीत कवियों के वक्तव्यों में "प्रयोग" और "प्रयोगशीलता" शब्दों के अतिशय प्रयोग को देखकर इन कवियों की कविताओं को "प्रयोगवाद" की संज्ञा दे दी गई।[16] सन् 1950 ई० में दूसरा सप्तक छपा। इसमें संगृहीत कवियों ने "प्रयोगवाद" के नाम का विरोध किया। इसके बाद तीसरा सप्तक (सन् 1953 ई०) "नयी के नाम को लेकर उदित हुआ। इस प्रकार सन् 1943 ई० से सन् 1960 ई० के बीच की हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्ति को प्रयोगवादी कविता या नयी कविता कहा गया। इसकी मुख्य प्रवृत्तियां, घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद, अतिनग्न यथार्थवाद, निराशावाद, अति बौद्धिकता, वैज्ञानिक युग बोध और नये मूल्यों का चित्रण, रीति काव्य की आवृ..., उपमानों की नवीनता, छन्द आदि। सन् 1960 तक आते-आते "नई कविता" में एक नये प्रकार की रूढ़ि तथा पैटर्न स्थिर हो गया।[17] इस प्रकार नयी कविता के रूढ़ हो जाने पर हिन्दी कविता में 1960 के बाद नयी दिशाओं में खोज आरम्भ होने लगी। जितने काव्यान्दोलन इस दशक में चले इतने सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में नहीं चले हैं। इस प्रकार इस दशक कविता को आन्दोलनों की कविता भी कहा जा सकता है।

"साठ के बाद की कविता में एक स्वर उन कवियों का है जिन्होंने "नयी कविता" के संस्कार अर्जित किये किन्तु जिनका स्वर नयी कविता से भिन्न है। इन्हें नयी कविता के परवर्ती कवि कहा जा सकता है।" 18 जिनमें, विश्वदेव नारायण शाही, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, और कैलाश वाजपेयी मुख्य हैं। साठोत्तरी कविता की मुख्य प्रवृत्ति राजनैतिक, निषेध एवं अस्वीकार, विद्रोह एवं आक्रोश आदि हैं। साठोत्तरी कविता ने खड़ी बोली के काव्य भाषा रूप को बहुत बदल दिया है। इस कविता में प्रयुक्त उपमानों, बिम्बों प्रतीकों आदि की प्रकृति पूर्व वृत्ति कविता से बहुत अलग है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कविता का विकास भारतेन्दु युग से आरम्भ हुआ और साठोत्तरी कविता तक लगातार विकसित होता रहा और आज भी हो रहा है।

आधुनिक हिन्दी कविता में रघुवीर सहाय का योगदान :-

किसी भी भाषा के लिए रघुवीर सहाय जैसे व्यक्तित्व का होना बहुत बड़े गौरव की बात है, जिनको हम दिसम्बर सन् 1990ई० में खो दिया। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि वे आज के युग के सबसे बड़े कवियों में से थे। हिन्दी में दुर्भाग्य से हमेशा कवि, कहानीकार और केवल "कहानीकार" का बेकार का झगड़ा वर्षों से चला आ रहा है वरना यह पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि रघुवीर सहाय अप्रतिम "कहानीकार" भी थे। जहाँ तक पत्रकारिता का प्रश्न है, वे एक श्रेष्ठ सम्पादक थे। उन्होंने "दिनमान" के वर्षों में पूरे हिन्दी मानस को प्रभावित किया था। ऐसा महान कार्य करने के लिए जैसा साहस, कल्पनाशीलता और यथार्थ की समझ सम्पादक में होनी चाहिए वह दुर्भाग्य से उनमें देखने को नहीं मिलती। एक अनुवाद के रूप में रघुवीर सहाय पर पूरा भरोसा किया जा सकता था। हमारे समकालीन समाज

के बारे में उनकी तरह गहराई से सोचने वाली दूसरी अकेली प्रतिभा भी किसी में दिखलाई नहीं पडती । यथार्थ सहाय जैसा व्यक्ति ही हमें समझा सकता था कि "यथार्थ यथास्थिति नहीं है" ।

"आत्महत्या के विरुद्ध" जैसा युगान्तरकारी कविता-संग्रह देने के बाद कोई कवि अपने को गहरा और पैना कर पाये यह असम्भव ही है। अक्सर कवि एक बड़े विस्फोट के बाद उसके मोह से चिपककर कविता लिखते जाते हैं । लेकिन "हंसो हंसो जल्दी हंसो" या "कुछ पते कुछ चिट्ठियां" का कवि "आत्महत्या के विरुद्ध" के विस्फोट की राख से नहाया हुआ कवि नहीं है। वह इस अर्थ में एक नया कवि है कि वह खुद पर मुग्ध होकर इसके संसार में जाने से रुक नहीं रहा है। उसकी तीव्रता और बेचैनी कम नहीं है। यह बात उनके लेखन के बारे में और उनकी कविता के बारे में भी सच है।

सामाजिक क्षेत्र में योगदान :-

भारतेन्दु युग संक्रान्ति काल था। इस युग में हमें नवीन और प्राचीन का आकर्षक द्वन्द्व देखने को मिलता था। रघुवीर सहाय उस पीढ़ी के सदस्य थे जो आजादी की लड़ाई के समाप्त होने के बाद या उसी के दौरान सजग और रचनाशील हुई थी। इसलिए यह भी स्वाभाविक ही था कि उनकी संवेदनशीलता के बहुत से अन्दरूनी सूत्र इस दौर की खूबियां लिये हो। मसलन, एक तरह की स्वचेतना और एक व्यक्ति, एक नागरिक होने का एहसास जो उनमें भरपूर था, शायद उसी दौर की देन था। लेकिन आज यह बात स्पष्ट हो गई है कि आजादी के बाद जो नई काव्यधारा उभर कर सामने आई उसमें कई तरह के मध्यवर्गीय तत्व शामिल थे, जो अपने-अपने कारणों से एक जगह मिल गये थे। लेकिन प्रबल यह इच्छा नहीं सामाजिक शक्तियों का वह नया संतुलन सिद्ध हुआ और बाद के दिनों में धीरे-धीरे व्यवस्थित होता चला गया। पिछले तीस वर्षों में यह भी स्पष्ट होता

हो गया कि स्वतंत्रता संघर्ष और उसके बाद के समझौते की विरासत की तरह सामने आये, इन मध्यवर्गीय तत्वों में जनतांत्रिक सारवस्तु और जीवनी शक्ति एक जैसी नहीं है। रघुवीर सहाय के बारे में आज यह शायद अलग से प्रमाणित करना नहीं होगा कि वे इस दौर में सामने आई विरल प्रतिभाओं में थे जिनका रचनात्मक व्यक्तित्व जनतांत्रिक प्रेरणाओं और अनुरोधों के ज्यादा मौलिक, विकासमान और वास्तविक अंशों को आत्मसात करते हुए बना था। वे उस दौर के उन सबसे अधिक संवेदनशील, आधुनिक, विवेकशील और प्रबुद्ध मध्यवर्गीय तत्वों में थे, जिनमें राष्ट्रीय नवजागरण की विकासशील जीवित और श्रेष्ठ परम्पराओं का खोजपूर्ण और रचनाशील उपयोग करके उन्हें आगे विकसित करने की योग्यता और इच्छा इतनी थी कि उसे हम आसानी से कुचल नहीं सकते।

रघुवीर सहाय की एक कविता इस प्रकार है --

"पर मैंने जाना कि यह समाज
विद्रोही वीरों का दीवाना है विरोध का नहीं" [19]

उन्होंने समाज को किसी के विरोध का नहीं बल्कि विद्रोह करने वाले वीरों का दीवाना कहा है।

धूमिल की एक कविता में समाज के आश्वासनों, साजिशों पर समाजवाद के आवरण डालकर खूबसूरत धोखा देना चाहते हैं, परन्तु अब यह किसी से छिपा नहीं,

"मगर मैं जानता हूं कि मेरे देश का समाजवाद
माल गोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर "आग" लिखा है
और उनमें बालू, और पानी भरा है।" [20]

धूमिल ने "समाजवाद" को माल गोदाम में लटकती हुई बाल्टी की तरह बताया है, जिस पर "आग" लिखा है और उसमें बालू और पानी भरा हुआ है।

देश की आर्थिक विषमता के बारे में दास गुप्त जी कहते हैं कि "भारत जैसे देशों के लिए पहले तो इतनी पूंजी पाना सम्भव ही नहीं है, दूसरे इस निवेश से यहां दोहरे कारणों से बेरोजगारी बढ़ती जायेगी। एक परम्परागत उद्योगतंत्र के समाप्त होते जाने के कारण, और दूसरे पूंजी की रोजगार के अर्थ में तेजी से घटती जा रही सीमांत उपयोगिता के कारण। बहुत से लोगों को यह बात इसलिए दिखाई नहीं देती, क्योंकि वे पाते हैं कि उनके परिचित समाज में उन वस्तुओं का इस्तेमाल बढ़ रहा है।जो विकास का मानव समझी जाने लगी है। दांतों के लिए अधिक उपयोगी और सस्ते नीम बबूल की दातून छोड़कर कॉलिनास का इस्तेमाल करते ही आदमी विकास के दायरे में आ जाता है, भले ही रहन-सहन की मूल सुविधाएं वह तेजी से खोता जा रहा हो। लेकिन इस परिचित दायरे के बाहर एक दुनिया और है। कॉलिनास इस दुनिया की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जिन्दगी को उजाड़ रहा है। विकास का यह चक्र असल में "गरीबी" का चक्र है और तब तक जारी रहेगा जब तक हम उपभोक्ता समाज की दृष्टि के भुलावे में पड़े रहते हैं।[21]

रघुवीर सहाय "भारतीय समाजवादी आन्दोलन की उपलब्धियों तत्कालीन स्थिति तथा उसकी सम्भावनाओं" पर प्रायः विचार करते रहते थे। भारतीय समाजवादी आन्दोलन राष्ट्रीयता, लोकतंत्र तथा समाजवाद के सिद्धान्तों पर आधारित था। एक नई समतायुक्त सामाजिक

सांस्कृतिक व्यवस्था और एक नये मनुष्य का निर्माण इनका लक्ष्य था। दल और राजनीति तो उपादान मात्र थे। भारतीय समाजवादी दृष्टिकोण में भारत एक राष्ट्र के रूप में और भारतीय जन एक मनुष्य के रूप में सम्पूर्ण मानवता से भी इतनी ही गहराई से जुड़े माने गये जितना भारतीय राष्ट्रीयता से। डा० राम मनोहर लोहिया की मृत्यु के बाद भारतीय समाजवादी आन्दोलन विचारधारा और कांग्रेस के धुंधलेपन, दूरगामी और तात्कालिक लक्ष्यों में विभेद कर पाने की क्षमता के अभाव तथा नेताओं की आपसी छीना-झपटी के कारण लगातार बिखराव की ओर बढ़ता जा रहा था। वह बैसाखियों के सहारे, आत्म-विश्वास के अभाव में, जिन्दा रहने का निरूपाय प्रयास कर रहा था। राजनीतिक दृष्टि के इस धुंधलेपन के काल में "दिनमान" के माध्यम से रघुवीर जी ने बिना किसी दलगत विवाद में पड़े भी, भारतीय समाजवादी आन्दोलन और विशेष रूप से डा० राम मनोहर लोहिया के दार्शनिक- राजनीतिक सिद्धान्तों की मूलभूत स्थापनाओं के संदर्भ में एक नव समाजवादी विश्लेषण प्रदान किया। इस प्रकार रघुवीर सहाय का सामाजिक क्षेत्र में योगदान बहुत ही महत्व रखता है।

राजनीति क्षेत्र में योगदान :-

रघुवीर सहाय ने "राजनीति और साहित्य" का नया रिश्ता कायम किया। " राजनीति और साहित्य का जो रिश्ता रघुवीर सहाय के माध्यम से सामने आया, वह विचारों, निष्ठाओं, मूल्यों का रिश्ता अधिक है। पार्टी, शास्त्र, कर्मकाण्ड या पंडो पुरोहितों की अर्चना। उपासना से जुड़ा रिश्ता वह नहीं है। इसकी तह में उसकी वह उत्कट लोकतांत्रिक स्वाधीनता की छटपटाहट है जो न केवल अपनी अभिव्यक्ति

की समझ और अभिव्यक्ति को बराबर सम्मान देती है। इसमें जिरह है, बहस है, असहमति है, लेकिन हिंसा, ताकत का प्रदर्शन या बेरुखी नहीं है। यही कारण है कि विचारधाराओं के तमगे बांटने वाले उन्हें किसी खास "वाद" के तमगे से विभूषित नहीं कर पाते हैं। जीवन, विचार और रचना में स्वतंत्रता, स्वतंत्र सत्ता बनाये रखते हुए अन्य सत्ताओं के साथ सह जीवन की यह कठिन यात्रा थी।

राजनीति के क्षेत्र में लोहिया, जयप्रकाश और नरेन्द्रदेव के विचारों का रघुवीर सहाय पर अधिक प्रभाव था। रघुवीर सहाय राजनीति चिंतक, कार्यकर्ता व नेता नहीं थे। लेकिन वे समाज में एक संवेदनशील व्यक्ति होने के नाते राजनीतिक कार्यों से जुड़े हुए थे। रघुवीर सहाय राजनीति को राज्य से बांधकर देखने के विरुद्ध थे। राजनीति को वे जीवन के सभी क्षेत्रों और समाज के व्यापकतम समुदाय में प्रत्येक व्यक्ति से सम्बद्ध मानते थे।

स्वतंत्रता के पहले और उसके बाद में भारत के राजनीतिक रंगमंच पर राष्ट्रीय कांग्रेस का वर्चस्व रहा है। बड़े किसानों से लेकर बड़े पूंजीपतियों तक सभी सामाजिक वर्ग जो औपनिवेशिक काल में अपने निजी हितों पर दबाव के दौर में गुजर रहे थे, कांग्रेस का ही समर्थन करते थे। इस तरह से कांग्रेस किसी निश्चित विचारधारा पर आधारित दल न होकर अनेक वर्गों का मिला-जुला संगठन था। स्वतंत्रता के बाद सिद्धान्ततः एक राजनीतिक दल बन गया फिर भी उसके सदस्यों में उद्देश्य और विचारधारा को लेकर कोई समानता नहीं थी। कांग्रेस एक ऐसा बरगद का पेड़ था, जिसके नीचे धूप से बचने के लिए कोई

भी राजनीतिक मुसाफिर शरण ले सकता था।

रघुवीर सहाय उस पीढ़ी के सदस्य थे जो आजादी की लड़ाई के खत्म होने के बाद सजग और रचनाशील हुई थी। इस प्रकार यह स्वाभाविक ही था कि उसकी संवेदनशीलता के बहुत से अन्दरूनी सूत्र उसी दौर की खूबियां लिये हो।

रघुवीर सहाय की एक राजनैतिक उपलब्धि इस दृष्टि में भी है - जैसे -

बीस वर्ष
खो गये भरमें उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जन्मी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गई अपने ही देश में [22]

धूमिल की एक राजनीतिक कविता इस प्रकार है --

"मगर उस चालाक आदमी ने मेरी किसी बात का उत्तर
नहीं दिया और हंसता रहा-हंसता रहा-हंसता रहा
फिर जल्दी से हाथ छुड़ाकर
"जनता के हित" में स्थानांतरित
हो गया।" [23]

यहां पर राजनीतिज्ञ किसी बात का उत्तर देने के लिए प्रस्तुत नहीं है। वह केवल हंसना जानता है और जनता के हित की दुहाई आठों याम उसके होठों पर रहती है।

रघुवीर सहाय भी एक राजनीतिक मनुष्य की हंसी का वर्णन इस प्रकार करते हैं --

"जब मिलो तिवारी से --हँसो - क्योंकि तुम भी तिवारी हो
जब मिलो शर्मा से --हँसो - क्योंकि वह भी तिवारी है
जब मिलो मुसद्दी से
खिसियाओ
जात पांत से परे
रिश्ता अटूट है
राष्ट्रीय झेंप का। [24]

रघुवीर सहाय कहते हैं कि वे आलोचक, जिनके लिए राजसत्ता ही राजनीति का एकमात्र ध्येय और केन्द्र है, और वे राजनेता जीवन के सभी प्रसंगों को राजनीतिक प्रचार एवं उपयोग का नुक्ता मात्र मानते आये हैं, उस प्रखर ताप को कभी सह नहीं पाये, जो रघुवीर जी ने राजनीति और साहित्य के समन्वय से पैदा करना चाहा था - और किया था।

वे कहते हैं कि मैं कवि हूं, मैं राजनीति में हिस्सा भी लेता हूं इसलिए भी करता हूं। आज का जो समय है वह तमाम राजनीतिक व्यवस्थाओं के टूटने का समय रहा है, ऐसे समय पर सतही तौर पर यह मान लेना कि कविता और राजनीति का सम्बन्ध है, बहुत बड़ा होगा। वह साहित्य के मोर्चे को राजनीति के मोर्चे से एकदम अलग मानते हैं और साहित्य को किसी तरह भी सामाजिक परिवर्तन में सहायक नहीं मानते।

रघुवीर सहाय हमेशा ही राजनीतिक व्यक्तियों का विरोध करते थे। क्योंकि वर्तमान राजनीति भ्रष्टाचारी, पाखण्डियों और

बेईमानों की राजनीति है।

स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में योगदान :-

रघुवीर सहाय ने अपनी अधिकतर कविताओं में स्त्रियाँ और बच्चों को माध्यम बनाया है। इनकी कविताओं में दुखियारी औरतों के प्रसंग उभारे गये हैं, जो इसलिए नहीं कि औरत कविता का आलम्बन है बल्कि इसलिए कि वह सामाजिक सत्य की तरह अनिवार है। उसे लेकर ही कविता का सम्पूर्ण समाज बनता है। इनकी कविताओं में जहां औरत बैठी है वहां उस स्त्री को पीडा सहित समझने की कोशिश लगातार रही है। जैसे "सीढ़ियों पर धूप में" की "पढ़िए गीता" बनिये सीता" वाली कविता में गृहस्थी में जुतने के लिए अभिशप्त गरीबन औरत की जो तस्वीर खड़ी कीगेई वह अपनी टोन में अस्तित्व वादी अधिक है। लेकिन अगले वर्षों में एक स्थाई चिन्ता के रूप में स्त्री रघुवीर सहाय की कविता में जबर्दस्त ढंग से आती है।

इनकी कविता में गरीब औरतों का जिक्र भी किया गया है। यहां पर एक गरीब लड़की, कुपोषित। उसके "बाढ़" के मारे जाने का दुख कवि का भी है और लड़की का भी। लड़की नहीं बता सकती, क्योंकि वह बताया भी नहीं जा सकता। जैसे ==

एक लड़की जिसकी बाढ़ मारी गई है
डर के मारे नहीं बताती मुझको वह
अपना दुख [25]

मंगलेश डबराल की कविताओं में भी स्त्रियां प्रायः "सिसकती और सुबकती" ही होती है। यह उनके दुखीः जीवन का स्थायी भाव है जो मंगलेश लगभग अपनी सभी कविताओं में पकड़ते हैं। स्त्री के दुखों का भी अन्त नहीं है --

सारा दिन काम करने के बाद
एक स्त्री याद करती है
अगली दिन के काम [26]
अ

समाज में स्त्री के इस कर्म की पहचान नहीं है। मंगलेश इसे बारम्बार रेखांकित करते हैं। साथ चलने वाले अत्याचार से बेखबर इस स्त्री की "बेखबरी" को मंगलेश कहते हैं जोर देकर यह उसकी रक्षा का रक्षणीयता का भाव है।

"लोग भूल गये हैं" में स्त्री को केन्द्रित करने वाली कई कवितायें, स्त्री के महाबिम्ब को व्यापक करने वाली है। स्त्री, नींद्र औरत का सीना, नन्हीं लड़की " मुआवजा", संघर्ष" में स्त्रीजाति को एक नयी तस्वीर खड़ी होती है।वे स्त्रियों की आन्तरिक विपत्ति को देखने की कोशिश करते हैं । उनकी स्त्रियां भयभीत है। उनका वह वातावरण भयानक है, जिसमें वे बड़ी या स्वस्थ या औरत नहीं बन पा रही है।

हम रोटी और फल बचायेंगे
यह उसके सीने में एक दिन उदय होगा [27]
हर स्त्री के
गर्भ में रहते है
उसके आने वाले क्लेश [28]

"औरत का सीना" कविता में वे कहते हैं कि --

वह नफरत नहीं था, वासना नहीं था
वह जो था अन्त में आदर था

वह था उसका सीना आँखों के सामने
उसकी अकेली असहाय
और गैर बराबर औरत
का वह सर्वस्व था मेरे पास [29]

समकालीन कवियों ने रघुवीर सहाय के ही वृत्त में चक्कर लगाये हैं, तो यह तर्कसंगत और इतिहास सम्मत नहीं ठहरेगा। सभी नये कवि रघुवीर सहाय के ऋणी हैं क्योंकि उनके काव्य विवेक को कारण ही अपनी रचना को संवारा है उसे सिखाया है। स्त्री के महा बिम्ब की सर्जना करके समकालीन कवियों ने एक ही वक्त में रघुवीर सहाय से भी जोड़ा है और अलग भी किया है।

फिर भी स्त्री की उक्त रचनात्मक खोज ही वह विषय बन सकता है जिसके कारण समकालीन युवा कवियों को ठीक-ठीक रघुवीर सहाय से अलगाया जा सकता है और उनके कहीं अधिक जटिल संघर्ष को देखा जा सकता है।

रघुवीर सहाय की एक कविता "मेरा घर" में उन्होंने स्त्री को , बीबी, मां, बच्चे सभी रूपों में देखा है।

मेरी कविता में मां
मेरी कविता में बीबी बच्चे
मेरी कविता में गौरैया वसन्त की [30]

मंगलेश डबराल की एक कविता "मकान" (1975) में मंगलेश के घर, परिवार, और स्त्री की समग्र संरचना स्पष्ट होती है।

यह मकान सारा कुछ छिपाये हुए है
अपने अंधकार में औरत
औरत का स्वप्न
और का बच्चा
औरत की मौत [31]

मकान में जो "घर" है उसमें औरत है और उसका बच्चा है। शेष मृत्यु छिपी है उसमें । यानी इस घर का , इस मकान का कोई भविष्य नहीं है। कोई विकास सम्भव नहीं है। मंगलेश की कविताओं मे यह भविष्य-हीनता दुर्भाग्य की तरह फैली है।

समकालीन कविता में दुःख का भाव है, दुर्भाग्य का अहसास प्रबल है जबकि रघुवीर सहाय की कविता में दुखं का भाव नहीं है, दुःख की पहचान है।

इनकी कविता में करुणा की खोज है, जबकिइन कवियों में करुणार्द्र दया, एवं त्राहि-त्राहि का भाव है। रघुवीर सहाय की कविता में कितना भी दुःख दर्शन हो वह सायास भावरहित और एक खास तरह की आत्मकठोरता लिये होता है।

रघुवीर सहाय की "स्त्री" की अवतारणा "स्त्री" के होने को एक "जाति" के रूप में स्वीकृत करती है । यही उनकी एक महत्वपूर्ण देन है।

रघुवीर सहाय ने प्रेम के स्वरूप का चित्रण भी अलग ढंग से किया है। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और छायावादी युग में व्यक्तिगत प्रेम का वर्णन नहीं किया गया है बल्कि प्रेम े को भक्ति का ही एक

रूप माना है। हरिवंश राय बच्चन अपने प्रेम के अनुभाव को सीधे नहीं करता है -- वे अपनी एक कविता में कहते हैं कि --

"तुम्हें जो कुछ करना हो
किसी और नाम पर करना कराना
क्योंकि अब मैंने

जीवन को थाहकर
यह जान लिया है
कि प्यार ईश्वर को ही किया जा सकता है
और ईश्वर ही करा भी सकता है
और शायद ईश्वर ही कर भी सकता है
हां, यह भी जाना
कि कभी ईश्वर मनुष्य
और मनुष्य ईश्वर बनाता है।" [32]

रघुवीर सहाय ने अपने "प्रेम" को व्यक्तिगत रूप में भी व्यक्त किया है। "जब मैं तुम्हें " कविता में --

तुम उसका क्या करती हो मेरी लाड़ली
अपनी व्यथा के संकोच से मुक्त होकर
जब मैं तुम्हें प्यार करता हूं। [33]

यदि आप एक से सच्चा प्यार कर सकते हैं तो दो से भी कर सकते हैं। [34]

रघुवीर सहाय की एक कविता "मेरी बेटी" में उन्होंने अपनी बेटी से "प्रेम" का अनुभव किया है। रघुवीर सहाय अपने परिवार से अत्यन्त प्रेम करते थे।

> दुबली थकी हारी एक छोकरी काम पर जाती थी
> दूर से मैंने उसे आते देखा
> पर जितनी देर में मैंने पहचाना वह मेरी ही बेटी थी
> उतनी ही देर में कितनी बदल गई।" [35]

मंगलेश डबराल की एक कविता "प्रेम करती स्त्री" में इस स्त्री के अन्तर्मन में प्रवेश करने की विकलता इस महाप्रतीक को गहनता देती है।

> प्रेम करती स्त्री
> ठगी जाती है रोज
> उसे पता नहीं चलता बाहर क्या हो रहा है
> कौन ठग रहा है कौन है खलनायक [36]

यहां पर उन्होंने एक स्त्री के छले जाने और उसके साथ कपट करने वाले लोगों के प्रति विरोध किया है। यह दुनिया और स्त्री के बीच का आत्यन्तिक सम्बन्ध है। क्रूरता और प्रवंचना से भरा हुआ। उनके यहां प्रेम सम्बन्ध अश्रुपूर्ण है। इनकी कविताओं में प्रेमी जवान युवा और बूढ़े दोनों ही लोग हैं।

रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में अपने परिवार के प्रति भी प्रेम प्रकट किया है। उनकी एक कविता "परिवार" में -

यह सब मेरे लड़के
जहां कहीं भी हों परदेस में
अपनी लड़ाइयां लड़ते हैं
बार–बार लौटकर मुझको बताते नहीं ।
लड़कियां बाप की एवज़ी करती हैं
सबको खुश रखती हैं
जो वह रख नहीं सका।[37]

इस प्रकार वे लड़के की तुलना में लड़की से ज्यादा प्रेम भाव रखते थे।

एक अनुवादक के रूप में भी रघुवीर सहाय पर सबसे ज्यादा भरोसा किया जा सकता है। हमारे समकालीन समाज के बारे में उसकी तरह गहराई से सोचने वाली दूसरी अकेली प्रतिभा भी कोई नहीं दिखलाई पड़ती। यथार्थ को भेदकर देखने की उत्कट ललक उनमें मौजूद थी। रघुवीर सहाय जैसा व्यक्ति ही हमें समझा सकता था कि "यथार्थ यथा स्थिति नहीं" है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में भी रघुवीर सहाय एक बहुत बड़ा योगदान है। रघुवीर सहाय के संपादक रूप में "दिनमान" के जरिये हिन्दी पत्रकारिता को जिस शिखर पर पहुंचाया था उसकी चर्चा अब वैसी ही लगती है। जिस तरह आज की राजनीति में गांधी और तिलक की चर्चा ।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कविता में रघुवीर सहाय का बहुत बड़ा योगदान रहा ।

संदर्भ

1. डा० हरदयाल - आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प पृ० 16
2. दिनकर - आधुनिक बोध - पृ० 36-37
3. डा० हरदयाल - आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प पृ० 17
4. दिनकर - आधुनिक बोध - पृ० 37
5. रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग 1 - पृ० 191
6. डा० हरदयाल - आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प पृ० 23
7. डा० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य का इतिहास युग और प्रवृत्तियाँ - पृ० 495
8. डा० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य का इतिहास युग और प्रवृत्तियाँ - पृ० 496
9. डा० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास दशम भाग - पृ०5
10. डा हरदयाल - आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प पृ० 26
11. डा० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य का इतिहास - युग और प्रवृत्तियाँ - पृ० 500
12. डा० नगेन्द्र - आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ पृ० 106
13. सुमित्रा नन्दन पन्त -"रूपाभ" - 1 जुलाई सन् 1938
14. डा० हरदयाल - आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प पृ० 37
15. डा० शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य का इतिहास-युग और प्रवृत्तियाँ - पृ० 545

16. डा० नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ० 129
17. डा० गिरिजा कुमार माथुर - नयी कविता सीमायें और सम्भावनाएं पृ० 120
18. डा० हरदयाल - आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प पृ० 44
19. रघुवीर सहाय - हंसो हंसो जल्दी हंसो - पृ० 30
20. धूमिल - संसद से सड़क तक - पृ० 140
21. दिनमान - 16 अगस्त 1980
22. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 18
23. धूमिल - संसद से सड़क तक - पृ० 18
24. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 69
25. रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ० 29
26. सुधीश पचौरी - कविता का अन्त - पृ० 59
27. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 21
28. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 42
29. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 43
30. रघुवीर सहाय - लोग भूल गये हैं - पृ० 28
31. सुधीश पचौरी - कविता का अन्त - पृ० 61
32. कटती प्रतिमाओं की दीवार - हरिवंश राय बच्चन - पृ० 111
33. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 98
34. रघुवीर सहाय - सीढ़ियों पर धूप में - पृ० 11
35. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियां - पृ० 36
36. सुधीश पचौरी - कविता का अन्त - पृ० 61
37. रघुवीर सहाय - कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - पृ० 34

"सप्तम अध्याय"

उपसंहार

रघुवीर सहाय का काव्य के क्षेत्र में आगमन "दूसरा सप्तक" से हुआ। उन्होंने "नयी कविता" में अपना एक विशिष्ट स्थान ग्रहण किया। नयी नयी कविता को रघुवीर सहाय ने एक नया मुहावरा प्रदान किया। इसके बाद साठोत्तरी दौर में पहुंचते-पहुंचते उनमें नयी प्रवृत्तियों का विकास हुआ। उनकी अधिकतर कवितायें मुक्त छन्द में लिखी गई हैं। रघुवीर सहाय के काव्य-संग्रहों "सीढ़ियों पर धूप में", "आत्महत्या के विरुद्ध", "हँसो हँसो, जल्दी हँसो", "लोग भूल गये हैं", "कुछ पते कुछ चिट्ठियां", में "राजनीतिक कविताओं का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। वे कहते थे कि राजनीति से अलग रहना मेरे बस में नहीं है।" नयी कविता" के दौर में उनकी कविता बहुत ही महत्व रखती थी।

प्रथम अध्याय में "प्रयोगवाद" "नयी कविता" और "साठोत्तरी कविता" का प्रवृत्तिगत विश्लेषण करते हुए उनकी भाषा शैली पर भी प्रकाश डाला है। उनकी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, व्यंग्यात्मकता, नवीनता का आग्रह, व्यक्तिवादी चेतना, विद्रोही,भावना, राजनीति से लगाव, सपाटबयानी, मोहभंग आदि है।

दूसरे अध्याय में उनका साहित्यिक परिचय देते हुए उनके जीवन की अन्य घटनाओं को स्पष्ट किया है। इसके बाद रघुवीर सहाय का रचनाकार के रूप में महत्व स्पष्ट किया है। उन्होंने काव्य के क्षेत्र में बहुत ही प्रसिद्धि प्राप्त की। "नयी कविता" के वे जाने माने कवियों

म स एक थ। कहानी क क्षेत्र में भी उनकी कई कहानियाँ चर्चित रही हैं, जैसे रास्ता इधर से है, जो आदमी हम बना रहे हैं।

निबंधकार के रूप में रघुवीर सहाय राजनीतिक निबंधों के लिखने वाले लेखकों में श्रेष्ठ समझे जाते थे। रघुवीर सहाय एक पत्रकार भी थे। उनकी पत्रकारिता निश्चय ही एक अपवाद थी। सबसे महत्वपूर्ण पत्रकारिता उनकी "दिनमान" पत्रिका में दिखाई पडती है। उन्होंने "दिनमान" को जो स्वरूप दिया था, वह इस कदर व्यक्ति सापेक्ष था कि रघुवीर सहाय के बाद वह एक महीने भी नहीं चल सका। इस प्रकार उनकी पत्रकारिता को आज भी याद किया जाता है।

इसके बाद उनकी कविताओं में "कथ्य" को स्पष्ट किया है। "हिन्दी-शब्द सागर" में "कथ्य" के विभिन्न अर्थ दिये हैं - कहने योग्य या कथनीय। कोई भी साहित्यकार अपने विशाल अनुभव से जगत में चुनकर जो कुछ किसी भी रचना में प्रस्तुत करता है, दूसरे शब्दों में जिसे वह कथनीय समझता है, वही "कथ्य" होता है।

साहित्य के क्षेत्र में "कथ्य" की सीमा बहुत ही व्यापक है। कुछ विद्वानों ने साहित्य की वस्तु की व्यापकता को रेखांकित करते हुए कहा है कि "ऐसा न कोई शब्द है, न अर्थ, न न्याय, न कला जो काव्य का अंग न बन सके।" निष्कर्ष रूप से कथ्य, काव्य की वह विशिष्ट वस्तु है जिसे कवि ने अपनी रचना में व्यक्त किया है।

रघुवीर सहाय के काव्यों में "कथ्य" पूंजीवादी वर्ग से सम्बन्धित मजदूर वर्ग से सम्बन्धित, स्त्रियों एवं बच्चों से सम्बन्धित तथा राजनीतिक

क्रिया-कलापों से सम्बन्धित है।

"सीढ़ियों पर धूप में" में उनकी कवितायें व्यक्तिगत रूप लिए हुए हैं। इस संग्रह में स्त्रियों के बारे में भी अनेक कवितायें हैं जो स्त्रियों की दशा का वर्णन करती है। उनकी स्त्री-सम्बन्धी कविताओं से स्पष्ट है कि वे स्त्रियों के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध थे; और स्त्री को एक स्वाधीन व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहते थे।

"आत्महत्या के विरुद्ध" संग्रह की उनकी कविताएं राजनेताओं, भ्रष्टाचारियों, आतंक फैलाने वाले व्यक्तियों एवं झूठे विश्वासों और खोखले आश्वासनों का विरोध करने वाली हैं। जैसे --

अत्याचार समाचार बन बह गया इंसान का
अपना छपा नहीं
दस बरस मुझे भी जड़ हो गये हुए
अब रह गया सिर्फ उस औरत का ख्याल

रघुवीर सहाय् की कविताओं की प्रवृत्ति विशिष्ट थी। उनकी कविता की मुख्य प्रकृति, वैयक्तिक, सामाजिक और राजनैतिक है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और धूमिल की कविताओं के साथ रघुवीर सहाय की कविताओं की तुलना करके उनकी विशिष्टता को पहचाना गया है। धूमिल की राजनीतिक कविताओं और रघुवीर सहाय की राजनीतिक कविताओं में काफी अन्तर है। रघुवीर सहाय ने अपनी कविता में स्त्रियों को भी धूमिल से भिन्न नयी दृष्टि से देखा है। अपनी एक कविता में धूमिल ने "संसद" को एक तेली की घानी कहा है, उसको एक मिलावटी

सभा का दर्जा दिया है, जिसमें सभी तरह के मनुष्य रह सकते हैं। रघुवीर सहाय ने "आत्महत्या के विरुद्ध" कविता-संग्रह में संसद को एक मन्दिर के रूप में चित्रित किया है और कहा है कि संसद में हम किसी भी व्यक्ति को देशद्रोही नहीं कह सकते ।

पंचम अध्याय में रघुवीर सहाय के "शिल्प विधान" की विशेषताओं की खोज की गयी है। शिल्प का अर्थ ढंग, विधि, रीति अथवा विधान से होता है। कला या काव्य के संदर्भ में "शिल्प" का सम्बन्ध अभिव्यक्ति की प्रणाली से है। मोहन अवस्थी ने काव्य शिल्प की सैद्धान्तिक व्याख्या करते हुए कहा है कि --" काव्य-विधान काव्य का विज्ञान है। " कविता करने की विधि से लेकर कविता सम्बन्धी गुण-दोषों का विधिवत ज्ञान उसके भीतर आ जाता है और उस ज्ञान का आत्म प्रकाश काव्य-शिल्प होता है। कैलाश वाजपेयी के अनुसार काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढांचा तैयार किया जाता है, वे सब काव्य के शिल्प तत्व माने जाते हैं। शिल्पविधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा-जोखा है, जिसके आधार पर रचना मूर्त हो गई है। इस प्रकार अनेक विद्वानों की परिभाषा के बाद स्पष्ट हो जाता है कि "काव्य शिल्प वस्तुतः काव्य की रचनात्मक प्रक्रिया का सर्जन प्रक्रिया का ही एक नाम है"। रघुवीर सहाय की कविताओं की भाषा बोलचाल की भाषा के निकट की भाषा है। उनकी भाषा, उनके प्रसंग, उनकी अभिव्यक्ति हमेशा मनुष्य के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चली है। उनके हर संग्रह की कविता ने हिन्दी पाठक में अधिक आत्मीयता और उत्कटता जगाई है।

रघुवीर सहाय की कवितायें केवल पुरानी कविताओं की ही नहीं बल्कि समकालीन कविताओं की बनावट का भी हमेशा विरोध करती रही है। यह कथन बिल्कुल सत्य है कि "नयी कविता" के अनेक कवियों

ने अपने-अपने ढंग से इस दिशा में कोशिशें की है। लेकिन इनकी कविताओं के सामने उनकी कवितायें बनावटी-सी प्रतीत होती हैं। इन्होंने अपने काव्य में केवल हिन्दी के ही शब्दों का प्रयोग नहीं किया है, बल्कि उर्दू, अंग्रेजी तथा अन्य हिन्दीतर भाषाओं और बोलियों के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इसके कारण इनकी भाषा अत्यन्त सरल और स्वाभाविक बन पड़ी है।

इनकी कविताओं में बिम्ब एवं प्रतीक भी दिखलाई पड़ते हैं । इन्होंने चित्र बिम्ब, ध्वनि बिम्ब, और यौन बिम्बों का भी प्रयोग किया है।

इनकी अधिकतर कवितायें मुक्त छन्द में लिखी गई हैं। परन्तु अन्तिम काव्य-संग्रह "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" तक आते-आते ये निपट गद्य का प्रयोग करने लगे थे। जैसे उनकी एक कविता -- "युद्ध विराम" में -

"जाने किस तरह की थकान थी , रोग की थी या विचार की थी, या दोनों के एक साथ एक टकराव की थी, कि बहुत सवेरे जाग पड़ने के बाद फिर सोने के स्वप्न की। उसमें बहुत दिन बाद एक कबूतर आया। कंकरीट का जंगल इतना मानवताविहीन नहीं है हमारे यहां जैसा यूरोप में है।"

वे कहते भी हैं कि संभव है लोगों को यह कविता न लगे --

" न सही यह कविता
यह मेरे हाथ की छटपटाहट ही सही"

उन्होंने कविता को अपने हाथ की छटपटाहट भी कहा है। इस प्रकार उनकी काव्य भाषा अत्यन्त सरल दिखलाई पड़ती है। कहीं-कहीं पर उन्होंने अलंकारों का भी प्रयोग किया है।

छठे अध्याय में रघुवीर सहाय के आधुनिक हिन्दी कविता को योगदान को स्पष्ट किया है। किसी भी भाषा के लिए रघुवीर सहाय जैसे व्यक्तित्व का होना बहुत बड़े गौरव की बात है, जिनको हमने 30 दिसम्बर 1990 को खो दिया। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि वे आज के युग के सबसे बड़े कवियों में से थे। हिन्दी में दुर्भाग्य से कवि, कहानीकार और केवल कहानीकार का व्यर्थ और नकली का झगड़ा बरसों से चला आ रहा है, वरना यह पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए थी कि रघुवीर सहाय हमारी भाषा के अप्रतिम कहानीकार भी थे। जहाँ तक पत्रकारिता का प्रश्न है, वे एक श्रेष्ठ सम्पादक थे। उन्होंने "दिनमान" के वर्षों में पूरे हिन्दी मानस को झकझोर दिया था।

"हँसो, हँसो, जल्दी हँसो", "लोग भूल गये हैं", "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ", या कवि "आत्महत्या के विरुद्ध" के विस्फोट की राख से नहाया हुआ कवि नहीं है। वह इस अर्थ में एक नये कवि थे। उनकी तीव्रता और बेचैनी कम नहीं है। यह बात उनकी कविता के बारे में और साथ - ही -साथ उनके लेखन के बारे में भी सच है।

रघुवीर सहाय का राजनीतिक कविता के क्षेत्र में भी एक अप्रतिम योगदान है। इस प्रकार रघुवीर सहाय "नयी कविता" के जाने माने विद्वान थे। आज हिन्दी जगत में उनके नाम से सभी लोग परिचित हैं।

"परिशिष्ठ"

"सहायक ग्रंथ सूची"

हिन्दी ग्रंथ :-

1. अज्ञेय काव्य की संस्तुति में डा० विजेंद्र नाराण सिन्हा
   परिमल प्रकाशन – इलाहाबाद
   प्रथम संस्करण; 1984

2. अज्ञेय – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
   नेशनल पब्लिशिंग हाउस
   23, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

3. अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिनदी साहित्य – डा० श्याम सुन्दर मिश्र
   प्र० – विद्या प्रकाशन मन्दिर
   दरियागंज – दिल्ली – 6
   प्र॰सं॰ – 1971

4. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां – डा० नामवर सिंह
   प्रकाशक – लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
   संस्करण 1968

5. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां – डा० नगेन्द्र, प्रथम संस्करण – 1980
   प्रकाशक – नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
   23, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

6. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रतीकवाद – डा० चन्द्रकला त्रिपाठी
प्र० - मंगल प्रकाशन गोविन्द राजियों का रास्ता
जयपुर
प्र० सं० - 1966

7. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान – डा० केदारनाथ सिंह
भारतीय ज्ञानपीठ – दिल्ली-6

8. आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प – डा० हरदयाल
प्रथम संस्करण – 1978
प्रकाशक – सरस्वती प्रेस, 2/83 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2

9. आत्महत्या के विरुद्ध – रघुवीर सहाय
प्रकाशक = नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज दिल्ली-2.

10. आधुनिक कविता के नये मूल्य – डा० महेन्द्र कार्तिकेय
प्रथम संस्करण सन् 1981
प्रकाशक – विद्या प्रकाशन मन्दिर, दरियागंज, नई दिल्ली-2

11. आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प – डा० मोहन अवस्थी
हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय प्रयाग
प्रथम संस्करण – सन् 1962

12. आस्था के चरण – डा० नगेन्द्र
प्रथम संस्करण 1980
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23 दरियागंज, दिल्ली -2

13. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - डा० कैलाश वाजपेयी
आत्माराम एण्ड संस - दिल्ली
प्रथम संस्करण सन् 1965

14. आंबे हुए सुखी - रघुवीर सहाय
प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली-2

15. कुआनो नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन - दिल्ली , प्रथम संस्करण - 1976

16. कटती प्रतिमाओं की दीवार - सं - हरिवंश राय बच्चन
प्रथम संस्करण - 1968
राजकमल प्रकाशन - दिल्ली

17. कविता और कविता - डा० इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली

18. काव्य मीमांसा - अनुवाद - केदारनाथ शर्मा
प्रकाशक - चौखम्बा विद्या भवन - वाराणसी

19. कविता का अन्त - सुधीश पचौरी , प्रथम संस्करण -1990
प्रकाशक - दयानंद मार्ग- दरियागंज- दिल्ली

20. काव्यालंकार - भामह
प्रकाशक - राष्ट्रभाषा परिषद, पटना , बिहार
प्रथम संस्करण - 1962

21. कविता यात्रा - रत्नाकर से रघुवीर सहाय
डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण-1976,
प्रकाशक, मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया, दिल्ली

22. कविता की रचना यात्रा - डा० राजकुमार शर्मा
प्रकाशक- लोकलोक प्रकाशन, प्रथम संस्करण -1984
156, श्याम पार्क , साहिबाबाद, यू० पी०

23. कविता के नये प्रतिमान - डा० नामवर सिंह
प्रथम संस्करण , 1968
प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन प्रा० लिमिटेड
नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली - 6

24. काव्य प्रदीप - डा० रामबोहरी शुक्ल, प्रथम संस्थकरण 1969
प्रकाशक -हिन्दी भवन जालन्धर, इलाहाबाद

25. कुछ पते कुछ चिट्ठियां - रघुवीर सहाय
प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नेताजी सुभाष मार्ग , नई दिल्ली-2

26. गरूड़ किसने देखा है - डा० श्रीकान्त वर्मा , प्रथम संस्करण -1987
प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन प्रा० लिमिटेड
1-बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली -2

27. चिन्ता - अज्ञेय
प्र० - राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट
दिल्ली 1970

28. चौथा सप्तक - अज्ञेय
प्रकाशक - सरस्वती विहार, 21, दयानंद मार्ग, दिल्ली -2

29. छायावादोत्तर काव्य - डा० सिद्धेश्वर प्रसाद
प्रथम संस्करण - 1967,
प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
चंद्रलोक जवाहर नगर, दिल्ली-6

30. जाति प्रथा - डा० राममनोहर लोहिया, प्रथम संस्करण -1964
प्रकाशक - नवहिन्द प्रकाशन -हैदराबाद

31. ठेले पर हिमाल - धर्मवीर भारती
प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
संस्करण - 1976

32. तीन आधुनिक हंगारी नाटक - सं - रघुवीर सहाय
प्रकाशक - कौमुदी प्रकाशन, सी 3 प्रेस एंक्लेव, साकेत-दिल्ली-17

33. तार सप्तक - अज्ञेय - प्रकाशक - 3620/21, नेताजी सुभाष मार्ग
दिल्ली-6

34. तीसरा सप्तक - अज्ञेय - अज्ञेय
प्रकाशक - नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली - 6

35. दूसरा सप्तक - सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
9, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-27

36. दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में - कुमार कृष्ण
प्रथम संस्करण - 1987
प्रकाशक - साहित्य निधि, 29/59 ए, विश्वास नगर, दिल्ली-32

37. द्रीना नदी का पुल - इवो आंद्रिच
अनुवादक - रघुवीर सहाय
साहित्य अकादमी- रवीन्द्र भवन, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली-110001

38. दिल्ली मेरा परदेस - रघुवीर सहाय
प्रकाशक - दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली-110035

39. नई कविता और सर्वेश्वर - डा० रमेश ऋषि कल्प, प्रथम संस्करण -1979
प्रकाशक - रीना राय शाखा प्रकाशन,
453, पाकेट-2, पश्चिम विहार, दिल्ली- (1963)

40. नयी कविता का आत्म संघर्ष एक अन्य निबन्ध - मुक्ति बोध
द्वितीय संस्करण -1977
प्रकाशक - विश्वभारती प्रकाशन - धनवटे चेम्बसे, नागपुर - 12

41. नयी कविता निष्कर्ष और समापन - आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी
प्र० - वाणी प्रकाशन दिल्ली

42. नयी कविता का वैचारिक आधार - डा० सुधीश पचौरी
प्रकाशक - राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
2138 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2

43. नयी कविता स्वरूप एवं समस्यायें - डा० जगदीश गुप्त
प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ
3620/21, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-6

44. नया हिन्दी काव्य - डा० शिवकुमार मिश्र
प्रकाशक = अनुसंधान प्रकाशन - प्रथम संस्करण - 1962
कानपुर

45. नयी कविता के प्रेरणा और प्रयोजन - डा० विजय द्विवेदी
प्रथम संस्करण - 1978
प्रकाशक- प्रगति प्रकाशन, आगरा

46. नयी कविता सीमायें और सम्भावनायें - डा० गिरिजा कुमार माथुर
प्रथम संस्करण - 1966
प्रकाशक- अक्षर प्रकाशन, दिल्ली

47. नयी कविता: रचना प्रक्रिया - डा० ओमप्रकाश अवस्थी
प्रथम संस्करण - 1983
प्रकाशक - राष्ट्रभाषा संस्थान, सी 8/174 यमुना विहार, दिल्ली-53

48. नयी कविता संवेदना और शिल्प - डा० मंजुला पुरोहित
प्रथम संस्करण 1973
प्रकाशक -पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर -3

49. नयी कविता के बाद - डा० ओम प्रकाश अवस्थी
प्रथम संस्करण - 1974
प्रकाशक - पुस्तक संस्थान नेहरू नगर, कानपुर

50. नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर - डा० संतोष तिवारी
प्रकाशक - जवाहर पुस्तकालय मथुरा

51. नये साहित्य का तर्कशास्त्र - डा० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
प्रथम संस्करण - 1975
प्रकाशक - दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया लिमिटेड दिल्ली

52. नयी कविता की भाषा - डा० हरिप्रसाद पाण्डेय
प्रथम संस्करण - 1989
प्रकाशक - वोहरा प्रकाशन चौड़ा रास्ता जयपुर-302003

53. नयी कविता मूल्य मीमांसा - डा० वैजनाथ सिंहल
प्रथम संस्करण - 1981,
प्रकाशन - मंथन पब्लिकेशन-रोहतक

54. नकेन-2 - नलिन विलोचन शर्मा
प्रथम संस्करण - 1956,
प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, पटना

55. बिरजीस कदर का कुनबा - अनुवादक रघुवीर [illegible]
प्रकाशक - साहित्य अकादमी प्रकाशन, रविन्द्र भवन, फिरोजशाह रोड
नई दिल्ली-110001

56. बावरी अहेरी - अज्ञेय
द्वितीय संस्करण - 1972
प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ
3620/21, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-6

57. भंवर लहरे और तरंग - रघुवीर सहाय
प्रकाशक - देवदार प्रकाशन
59, सुभाष पार्क एक्सटेंशन, दिल्ली-32

58. भारतीय सामाजिक चिन्तन- लीलाराम गुर्जर
प्रथम संस्करण -1986
प्रकाशक - पंचशील प्रकाशन-जयपुर - 302003

59. भाषा और संवेदना - डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी
प्रकाशक - लोक भारती प्रकाशन
15 ए महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद

60. भारत में समाजवादी आन्दोलन - प्रकाश शास्त्री
प्रकाशक - लोकालोक प्रकाशन, 156 श्याम पर्क ﴾ यू० पी०﴿

61. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल - डा० पारस नाथ मिश्र
प्रकाशक - लोक भारती प्रकाशन
15-ए महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद

62. मानव मूल्य और साहित्य - डा० धर्मवीर भारती
प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी,

63. मुक्तिबोध रचनावली – भाग 5– सं. – नेमिचन्द्र जैन
प्रथम संस्करण – 1986
प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
नेताजी सुभाष मार्ग , नई दिल्ली–2

64. माया–दर्पण – श्रीकान्त वर्मा
प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण – 1967

65. यथार्थ यथास्थिति नहीं – रघुवीर सहाय
प्रकाशक – वाणी प्रकाशन
61–एफ कमला नगर , दिल्ली –67

66. राजनैतिक सिद्धान्तों का इतिहास – डा० योगेन्द्र नागपाल
प्रकाशक – प्रगति प्रकाशन मास्को
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड
5–ई रानी झांसी रोड, नई दिल्ली – 110055

67. राख और हीरे – रघुवीर सहाय
प्रकाशक – साहित्य अकादमी
रविन्द्र भवन – फिरोजशाह रोड– नई दिल्ली – 110001

68. रघुवीर सहाय का कवि कर्म – डा० सुरेश शर्मा
प्र० – पीपुल्स लिटरेसी
517 , मटिया महल , दिल्ली – 6
प्र. सं. – 1981

69. रस मीमांसा – रामचन्द्र शुक्ल
प्र० – नागरी प्रचारिणी सभा काशी
च० सं – संवत 2023

70. लिखने का कारण – रघुवीर सहाय
प्रथम संस्करण –
प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन एण्ड संन्स
कश्मीरी गेट, दिल्ली

71. लोकसभा में लोहिया – भाग 8
प्रकाशक – राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास
बेगम बाजार, हैदराबाद–12, प्र० व० 1973

72. लोग भूल गये हैं – रघुवीर सहाय
प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, एफ–5, सैक्टर
नोएडा–201301

73. लम्बी कविता का रचना विधान – डा० नरेन्द्र मोहन
प्रकाशक – दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया लिमिटेड – दिल्ली
प्रथम संस्करण –1977

74. वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे – रघुवीर सहाय
प्रकाशक – नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दरियागंज, दिल्ली–2

75. व्यवहारिक हिन्दी अंग्रेजी कोश – सम्पादक– महेश चतुर्वेदी, भोलानाथतिवा

76. विवेक के रंग - डा० देवी शंकर अवस्थी
प्रथम संस्करण - 1965
प्रकाशक - नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-2

77. शुद्ध कविता की खोज की कविता - रामधारी सिंह दिनकर
प्रकाशक - उदयाचन्द प्रकाशन , पटना

78. साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य - डा० रघुवंश
प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली
द्वितीय संस्करण - 1968

79. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर- रामचन्द्र वर्मा
प्र काशक - नागरी प्रचारिणी सभा काशी

80. संसद से सड़क तक - धूमिल
प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०
8-नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली -6

81. सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र - धूमिल

प्रकाशक - वाणी प्रकाशन, 61, एफ कमला नगर, दिल्ली ,
प्रथम संस्करण - 1984

82. साठोत्तरी हिन्दी कविता परिवर्तित दिशायें - डा० विजय कुमार
दयानन्द मार्ग, दरियागंज , नई दिल्ली-2, प्रथम संस्करण -1986

83. सीढ़ियों पर धूप में – रघुवीर सहाय
प्र० भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

84. हिन्दी साहित्य कोश भाग -2 – धीरेन्द्र वर्मा
प्रकाशक – ज्ञान मण्डल वाराणसी
प्रथम संस्करण – 2020 वि०

85. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिप्रेक्ष्य – अज्ञेय
प्रकाशक – राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली

86. हिन्दीसमीक्षा स्वरूप और संदर्भ – डा० रामदरश मिश्र
प्रकाशक – दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया लिमिटेड
दिल्ली, मद्रास, बम्बई, कलकत्ता प्रथम संस्करण 1974

87. हिन्दी नवलेखन – डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी
प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ काशी , प्रथम संस्करण सन् 1960

88. हिन्दी कविता की समकालीन चेतना – डा० सुखबीर सिंह
प्र० – तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
1980

89. हिन्दी विश्वकोश – भाग 14
प्र० – बी० आर पब्लिकेशन कारपोरेशन
दिल्ली – 52

90. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डा० शिवकुमार शर्मा
प्र० - अशोक प्रकाशन नई सड़क
दिल्ली - 6

91. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास - डा० नगेन्द्र
प्रकाशक - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्रथम संस्करण

92. हँसो हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय
प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली-2

पत्र एवं पत्रिकायें :-
============

1. अवन्तिका - सं. - कृष्ण बिहारी मिश्र
प्रकाशन वर्ष - 1952
संपादक - लक्ष्मीनारायण सुधांशु, अवधि- मासिक
स्थान - पटना {नया टोला}

2. अन्तर्दृष्टि - सं. - विनोद दास
लखनऊ - 1991

3. आजकल - सम्पादक मंडल- कुंवर किशोर सेठ, अनन्त मराल शास्त्री, डा० नगेन्द्र, अवधि - मासिक
प्रकाशन वर्ष- 1945 से आज तक - स्थान- दिल्ली

4. आलोचना – सम्पादक – शिवदान सिंह चौहान
प्रकाशन वर्ष – 1931 से आज तक
अवधि – त्रिमासिक, राजकमल प्रकाशन दिल्ली

5. कल्पना – संपादक – मधुसूदन चतुर्वेदी, वृन्दावन बिहारी मिश्र
प्रकाशन वर्ष – 1949
हैदराबाद

6. चिंतना – संपादक– अज्ञेय, पटना

7. जनसत्ता – 11.1.92 , 29.2.1991

8. दस्तावेज – चन्द्रकला त्रिपाठी
सं – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
बेतियाहाता गोरखपुर (उ०प्र०)

9. दैनिक हिन्दुस्तान – 19 सितम्बर 1981

10. धर्मयुग – प्रधान संपादक -- इलाचन्द्र जोशी, धर्मवीर भारती,
अवधि – साप्ताहिक, स्थान–टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रेस, बम्बई

11. नयी कविता – संपादक – रामस्वरूप चतुर्वेदी, जगदीश गुप्त
अवधि अर्धवार्षिक – स्थान–इलाहाबाद

12. नया पथ - संपादक मंडल - शिव शर्मा, राजीव सक्सेना
प्रकाशन वर्ष - 1953 से 1958,
अवधि - मासिक

13. पाटल - सम्पादक - शिवचन्द्र शर्मा - रामदयालु पाण्डेय
प्रकाशन वर्ष - 1952 से 1955
अवधि मासिक

14. प्रतीक - संपादक - भारत भूषण अग्रवाल - अज्ञेय
अवधि - द्विमासिक- दिल्ली

15. प्रतिपक्ष - प्रधान संपादक - जार्ज फर्नाण्डीज, कार्यकारी सम्पादक
शंभूनाथ सिंह, अंक 1, जनवरी 1991
स्थान-कौशल्या पार्क, दिल्ली

16. मधुमती -
प्रकाशन - सितम्बर 1986

17. युग चेतना - संपादक मण्डल - देवराज सिंह, कुंवर नारायण सिंह
अवधि - मासिक - स्थान- गोलागंज, लखनऊ

18. राष्ट्र भारती - संपादक - गोपाल कृष्ण नेने.
अवधि - मासिक - स्थान - पूणे

19. रविवार्ता - नवभारत टाइम्स - 1 जनवरी 1991
नई दिल्ली .

20. समालोचक - संपादक - रामविलास शर्मा, राजनाथ शर्मा
अवधि - मासिक - आगरा

21. साहित्य संदेश - संपादक - बाबू, गुलाब राय
अवधि - मासिक- आगरा

अंग्रेजी ग्रंथ :-

1. आक्सफोर्ड डिक्सनरी ऑफ करन्ट इंगलिश

2. इलूशियन एण्ड रियालटी - क्रिस्टोफर काड्वेल
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस - दिल्ली

3. इलेक्टिड एस्सेज - आलेन टेटे

4. ऑन दा आर्ट ऑफ पोयट्री - अरस्तू - एरिस्टोले
आधुनिक कविता के नये मूल्य से उद्धृत

5. लिटरेचर एण्ड साईंस - एल्डस हक्सले
आधुनिक कविता के नये मूल्य से उद्धृत

6. पोयटिक इमेज - सी० डी० लुविस
एलन एण्ड अनविन - लन्दन
जोनाथनकेप प्रेस, लन्दन

7. दा वैल रफ अर्न स्टडीज इन दि स्ट्रक्चर ऑफ पोयट्री - क्लिंथ बुक- आधुनिक कविता के नये मूल्य से उद्धृत

8. दा वो एण्ड लायर - आक्टोपिया पाज आधुनिक कविता के नये मूल्य से उद्धृत